ॐ

श्रीगोस्वामी तुलसीदासकृत

कवितावली

(सटीक)

टीकाकार—

देवनारायण द्विवेदी

विनयपत्रिका, देशकी बात, दहेज, किसान-सुख-साधन,
कर्त्तव्याघात आदिके लेखक—

प्रकाशक—

एस० बी० सिंह,

काशी-पुस्तक-भण्डार,

चौक, बनारस।

श्रावण १९९९ [मूल्य २) सजिल्द २॥)

[illegible] सुन्दर अनूठी पुस्तक

नारी-धर्म-शिक्षा

ऊपरके पदमें रसके चारो अंग स्पष्ट हैं। गोस्वामीजीका एक नमूना हास्यरसका भी देखिए। विन्ध्यगिरिपर रहनेवाले ऋषिलोग स्त्रियोंके बिना दुखी और अपने जीवनमें नीरसताका अनुभव कर रहे थे। उधर भगवान रामचन्द्रने एक पाषाणखण्ड-को अपने चरणस्पर्शसे सुन्दरी (अहल्या) के रूपमें परिणत कर दिया था। इससे ऋषियोंके हृदयमें आशाका संचार होना स्वाभाविक था। पर्वतपर शिलाखण्डोंकी कमी तो थी नहीं, फिर वे चन्द्रमुखी क्यों न बनेंगे इसीका वर्णन गोस्वामी तुलसीदासने कितने अच्छे ढंगसे किया है:—

विन्ध्य के वासी उदासी तपोव्रतधारी महा, बिनु नारि दुखारे।
गौतम तीय तरो 'तुलसी' सो कथा सुनि भे मुनि-बृंद दुखारे॥
ह्वैहैं सिला सब चन्द्रमुखी, परसे पद मंजुल कंज तिहारे।
कीन्हीं भली रघुनायक जू, करुना करि कानन को पगु धारे॥

इसी प्रकार लंकाकाण्डमें वीररस और सुन्दरकाण्डमें लंकादहनका वर्णन करते हुए भयानक रसका कविने अच्छा प्रदर्शन किया है। वीभत्सरसका निम्नलिखित पद अनूठा है:—

ओझरी की झोरी काँधे, आँतनि की सेल्ही बाँधे,
मूँड़ के कमंडलु, खपर किये कोरि कै।
जोगिनी झुटुंग झुंड झुंड बनी तापसी सी,
तीर तीर बैठीं सो समर सरि खोरि कै॥
सोनित सों सानि सानि गूदा खात सतुआ से,
प्रेत एक पियत बहोरि घोरि घोरि कै।
'तुलसी' बैताल भूत साथ लिये भूतनाथ,
हेरि हेरि हँसत हैं हाथ हाथ जोरि कै॥



कवितावली

बालकाण्ड

दुर्मिल सवैया

अवधेस के द्वारे सकारे गई, सुत गोद कै भूपति लै निकसे।
अवलोकि हौं सोच-विमोचन को ठगि सी रही, जे न ठगे धिक से॥
तुलसी मनरंजन रंजित-अंजन नैन सु-खंजन-जातक से।
सजनी ससि में समसील उभै नवनील सरोरुहसे विकसे॥१॥

शब्दार्थ—सकारे = सवेरे। अवलोकि = देखकर। हौं = मैं। सोच-विमोचन = शोकको दूर करनेवाले। सु-खंजन-जातक = सुन्दर खंजन पक्षीका बच्चा। समसील = समान। सरोरुह = कमल।

भावार्थ—(अयोध्याकी एक स्त्री अपनी सखीसे कहती है) हे सखी, मैं आज सबेरे राजा दशरथके द्वारपर गयी थी। देखा,

राजा अपने पुत्र रामचन्द्रको गोदमें लेकर बाहर निकले । शोकको दूर करनेवाले राज-पुत्रको देखकर मैं मुग्ध-सी हो गयी । जो उन्हें देखकर मुग्ध न हो उसे धिक्कार है । तुलसीदास कहते हैं कि वे सुन्दर खंजन पक्षीके बच्चेकी-सी काजल लगी हुई, मनको आनन्दित करनेवाली आंखें ऐसी मालूम होती हैं मानो चन्द्रमामें एक ही तरहके दो नये नीले कमल खिले हों ।

विशेष

अलंकार—धर्मलुप्तोपमा और गम्योत्प्रेक्षा ।

इस सवैयामें नाम, रूप, लीला, धाम इन चारोंको प्रतापवान कहा है । इसमें रूप-माधुरी गुण है ।

पग नूपुर औ पहुँची कर-कंजनि, मंजु बनी मनिमाल हिये ।
नवनील कलेवर पीत झँगा झलकैं, पुलकैं नृप गोद लिये ॥
अरविंद सो आनन, रूप-मरंद अनंदित लोचन-भृंग पिये ।
मन मों न बस्यो अस बालक जो तुलसी जग में फल कौन जिये ॥२॥

शब्दार्थ—नूपुर = पायजेब घुँघरू । मंजु = सुन्दर । कलेवर = शरीर । झँगा = झीने कपड़ेका ढीला कुरता, झिंगुली । अरविंद = कमल । मरन्द = मकरन्द, पराग ।

भावार्थ—पैरोंमें नूपुर, कर-कमलोंमें पहुँची तथा हृदयपर मणिमाला सुशोभित है । नवीन नीले कमलके समान शरीरपर पीली झिंगुली झलक रही है । राजा उन्हें गोदमें लिये हुए हर्षसे रोमांचित हो रहे हैं । राजाके नेत्र रूपी भौंरे रामजीके मुखरूपी कमलके रूप रूपी परागको पीकर आनन्दित हो रहे हैं । तुलसी-

दासजी कहते हैं कि यदि ऐसा बाल-रूप मनमें न बसा तो संसार-में जीवित रहनेसे क्या लाभ ?

विशेष

अलंकार—उपमा और रूपक (तीसरे चरणमें)।

एक टीकाकारका मत है कि 'उपर्युक्त दोनों छन्द अन्नप्राशन-के समयके हैं क्योंकि सर्व-प्रथम उसी दिन बालकको द्वार दर्शन कराया जाता है।' किन्तु इन छन्दोंमें इस बातकी झलक नहीं दिखायी पड़ती कि रामजी पहले पहल महलसे बाहर लाये गये हैं और ठीक अन्नप्राशनका ही समय है। हाँ, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि ये दोनों छन्द उस समयके हैं जब रामजी छः मासके या कुछ अधिक अवस्थाके हो चुके थे।

तनकी दुति स्याम सरोरुह, लोचन कंजकी मंजुलताई हरैं।
अति सुन्दर सोहत धूरि भरे, छवि भूरि अनंगकी दूरि धरैं॥
दमकैं दँतियाँ दुति दामिनि ज्यों, किलकैं कल बाल-विनोद करैं।
अवधेस के बालक चारि सदा तुलसी-मन-मन्दिर में विहरैं॥३॥

शब्दार्थ—दुति (द्युति) = कान्ति। भूरि = अधिक। कंज = कमल। अनंग = कामदेव। दामिनि = बिजली। कल = सुन्दर।

भावार्थ—उनके शरीरकी कान्ति नीले कमलके समान है। उनके नेत्र कमलकी सुन्दरताको मात करनेवाले हैं। धूलसे लिपटे हुए श्री रामजीके सुन्दर शरीरकी शोभा कामदेवकी अत्यधिक सुन्दरताको भी एक कोनेमें कर देती है। छोटे छोटे दाँतोंकी कान्ति बिजलीके समान चमकती है, वे सुन्दर बाल-विनोदमें

किलकारी मारते हैं। महाराज दशरथके ऐसे चारो बालक तुलसीदासके मन-रूपी मन्दिरमें सदा विहार करें।

विशेष

अलंकार—'तनकी दुति स्याम सरोरुह' में वाचक लुप्तोपमा है, 'लोचन कंजकी मंजुलताई हरैं' तथा 'छबि भूरि अनंगकी दूरि करैं' में नेत्र उपमेयसे कंज उपमानका तथा शरीर-शोभासे कामदेवका निरादर किया गया है, इसलिये इनमें प्रतीपालंकार है। 'दमकैं दँतियाँ दुति दामिनि ज्यों' में पूर्णोपमालंकार है।

कबहूँ ससि माँगत आरि करैं, कबहूँ प्रतिबिम्ब निहारि डरैं।
कबहूँ करताल बजाइ कै नाचत, मातु सबै मन मोद भरैं॥
कबहूँ रिसिआइ कहैं हठि कै, पुनि लेत सोई जेहि लागि अरैं।
अवधेस के बालक चारि सदा तुलसी-मन-मन्दिर में बिहरैं॥४॥

शब्दार्थ—आरि = हठ। प्रतिबिम्ब = छाया। करताल = ताली। रिसिआइ = क्रुद्ध होकर।

भावार्थ—कभी चन्द्रमा माँगनेका हठ करते हैं, कभी अपनी ही छाया देखकर डरते हैं। कभी ताली बजाकर नाचते हैं जिसको देखकर माताओंका चित्त प्रसन्न हो जाता है। कभी क्रुद्ध होकर रूठ कर बैठते हैं और फिर जिस वस्तुके लिये अड़ जाते हैं उसे लेकर ही छोड़ते हैं। महाराज दशरथके ऐसे चारो बालक तुलसीदासके मन-रूपी मन्दिरमें सदा विहार करें।

विशेष

अलंकार—स्वभावोक्ति। 'मन-मन्दिरमें' रूपक।

'पुनि लेत······अरैं'—पद्म रामायणमें लिखा है कि एकवार रामजीने चन्द्रका वच्चा मँगानेके लिये हठ किया था। दशरथने वहुतसे वच्चे मँगा दिये, किन्तु आपने नहीं लिया। अन्तमें वसिष्ठजीने कहा कि यह अंजनीपुत्रको माँग रहे हैं। तव हनुमानजी वुलाये गये। फिर क्या था, रामजी प्रसन्न हो गये।

वर दंतकी पंगति कुन्दकली, अधराधर-पल्लव खोलन की।
चपला चमकै घन वीच, जगै छवि मोतिन माल अमोलन की॥
घुँघरारी लटैं लटकैं मुख ऊपर, कुण्डल लोल कपोलन की।
निवछावरि प्रान करै तुलसी, वलि जाउँ लला इन वोलन की॥५॥

शब्दार्थ—कुन्द = पुष्प विशेष। अधराधर = दोनों ओठ। घन = वादल। लोल = चंचल।

भावार्थ—कुन्दकी कलीके समान सुन्दर दाँतोंकी पंक्तिपर (हँसते समय) नवीन लाल पत्तोंके समान दोनों ओठोंके खोलनेकी सुन्दरतापर, वादलोंमें विजलीके समान चमकती हुई वहुमूल्य मोतियोंकी मालाके सौन्दर्यपर, मुखपर लटकती हुई घुँघराली लटोंकी शोभापर, गालोंपर हिलते हुए कुंडलोंकी मनोहरतापर तथा (तोतली) वोलीके माधुर्यपर तुलसीदास वलि जाता है और अपने प्राणको निछावर करता है।

अलंकार—रूपक।

अधर दन्त, मोतिन माल (उर), मुखके ऊपर घुँघरारी लटैं और कपोलोंपर मकराकृत कुण्डल इत्यादि चार अंगोंकी छविके साथ रामललाकी तोतली वोलीपर गोस्वामीजी वलि जाते हैं

और अपने प्राणको निछावर करते हैं। ठीक ही है, प्राण भी तो पाँच हैं, प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान।

पद-कंजनि मंजु वनी पनहीं, धनुहीं सर पंकज पानि लिये।
लरिका सँग खेलत डोलत हैं, सरजू-तट चौहट हाट हिये॥
तुलसी अस वालक सों नहिं नेह कहा जप जोग समाधि किये?
नर ते खर सूकर स्वान समान, कहौ जगमें फल कौन जिये॥६॥

शब्दार्थ—चौहट = चौराहा। हाट = वाजार। खर = गधा। ते = वे। स्वान = कुत्ता।

भावार्थ—रामजीके पद-पद्मोंमें जूते सुशोभित हैं और वह अपने कर-कमलोंमें छोटासा धनुप-वाण लिये हुए हैं। वह वालकोंके साथ सरयूके किनारे, चौमुहानीपर, वाजारमें तथा (भक्तोंके) हृदयमें खेलते फिरते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि जिसने ऐसे वालकसे स्नेह नहीं किया उसका जप, योग, समाधि करना व्यर्थ है। वे मनुष्य गधे, सूअर और कुत्तेके समान हैं। भला कहिये तो सही, उनके संसारमें जीवित रहनेसे क्या लाभ?

विशेष

अलंकार—रूपक, उपमा और स्वभावोक्ति।

सरजू वर तीरहिं तीर फिरैं, रघुवीर सखा अरु वीर सवै।
धनुहीं कर तीर, निषंग कसे कटि, पीत दुकूल नवीन फवै॥
तुलसी तेहि औसर लावनिता दस, चारि, नौ, तीनि, इकीस सवै।
मति भारति पंगु भई जो निहारि, विचारि फिरी उपमा न पवै॥७॥

शब्दार्थ—सखा = मित्र। वीर = भाई। सवै (सवय) =

समान अवस्थावाले। निषंग = तरकस। दुकूल = रेशमी वस्त्र। फबै = शोभित है। दस = दस गुण माधुरीके (रूप, लावण्य, सौन्दर्य, माधुर्य, सौकुमार्य, नवयौवन, सुगन्ध, सुवेश, भाग्य, स्वच्छता) चार = चार गुण प्रतापके (ऐश्वर्य, तेज, वीर्य, बल)। नौ = नौ गुण ऐश्वर्यके (अदभ्रता, नियतात्मता, वशीकरण, वाग्मित्व, सर्वज्ञता, संहनन, स्थिरता, धैर्य, वदान्यता)। तीनि = सहज या प्रकृतिके तीन गुण (सौम्यता, रमण, व्यापकता)। इकीस = यश या कीर्त्तिके २१ गुण (सुशीलता, वात्सल्य, सुलभता, गम्भीरता, क्षमा, दया, करुणा, आर्द्रव, उदारता, आर्य सर्व पूजनीयता, शरण्यत्व, सौहार्द, चातुर्य, प्रीतिपालकत्त्व, कृतज्ञता, ज्ञान, नीति, लोकप्रियता, कुलीनता, अनुराग, निर्वहणता)। भारति = सरस्वती। पवै = पाती।

भावार्थ—रामचन्द्रजी अपने सखाओं और सब भाइयोंको साथ लेकर सरयूके किनारे किनारे घूमते हैं। उनके हाथोंमें धनुष-बाण हैं, कमरमें तरकस बँधा है और नवीन पीताम्बर शरीरपर सुशोभित है। तुलसीदास कहते हैं कि उस समय माधुर्यके दस गुण, प्रतापके चार गुण, ऐश्वर्यके नौ गुण, सहज या प्रकृतिके तीन गुण तथा यश या कीर्त्तिके इकीस गुण (जो कि शब्दार्थमें लिखे जा चुके हैं) ये सब उनके सौन्दर्यमें दिखायी पड़ते हैं। उनकी शोभाको देखकर सरस्वतीकी बुद्धि पंगु या लँगड़ी हो गयी, उसकी बुद्धि विचार-क्षेत्रमें विचरण करती रही—अर्थात् ढूँढ़ती ही रह गयी, पर उसे कोई उपमा न मिली।

विशेष

१—अलंकार—अतिशयोक्ति।

२—'दस चारि नौ तीनि इकीस सबै'—इसका अर्थ कुछ लोग 'चौदहो भुवनों, नवो खंड, तीनों लोकोंसे बढ़कर' लेते हैं। कई टीकाकारोंने 'दस' का अर्थ दसों दिग्पाल, 'चारि' का चारों चतुर्व्यूहियों (कृष्ण, बलराम, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध) या भगवानके चार रूप, 'नौ' का नौ अवतार (रामके अतिरिक्त), 'तीनि' का त्रिदेव, 'इकीसका' बढ़कर या श्रेष्ठ लिखा है; किन्तु ये दोनों ही अर्थ ठीक नहीं जँचते।

कवित्त

छोनी में के छोनी पति छाजै जिन्हैं छत्र छाया
छोनी छोनी छाये छिति आये निमिराजके।
प्रबल प्रचंड बरिबंड बर बेप बपु
बरबे को बोले बयदेही बरकाज के॥
बोले बंदी बिरुद बजाइ बर बाजनेऊ
बाजे बाजे बीर बाहु धुनत समाज के।
तुलसी मुदित मन पुर नर-नारि जेते,
बार बार हेरैं मुख औध-मृगराज के॥८॥

शब्दार्थ—छोनी = पृथिवी। छाजै = सुशोभित है। छोनी छोनी = कई अक्षौहिणी। निमिराज = राजा जनक। प्रचंड = प्रतापी। बरिबंड = बलवान। बपु = शरीर। बिरुद = यश। बाजे बाजे = बाज बाज, कोई कोई। बाहु धुनत = ताल ठोंकते हैं। हेरैं = देखते हैं। औध-मृगराज = अयोध्याके सिंह श्री रामजी।

भावार्थ—राजा जनकके यहाँ आये हुए संसारके राजे जिन-

के सिरपर राजछत्र सुशोभित है अपनी अक्षौहिणीकी अक्षौहिणी सेना सहित जगह जगह डेरा डाले हुए हैं। सीताजीके स्वयंवरमें वरण किये जानेके लिए बुलाये गये राजे बड़े प्रतापी, बलवान, सुन्दर वेषधारी तथा रूपवान हैं। वन्दीगण (भाट) बाजे बजाकर उन राजाओंका यश वर्णन करते हैं जिसे सुनकर कई राजे उत्साहसे ताल ठोंकते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि जनकपुरके जितने स्त्री-पुरुष हैं वे सब प्रसन्न मनसे बार-बार रामजीका मुख देखते हैं—तृप्ति नहीं होती।

विशेष

१—अलंकार—वृत्यनुप्रास और यमक।

२—'छोनी' ग्रंथोंमें अक्षौहिणीका परिमाण कई तरहका मिलता है; किन्तु अधिक प्रामाणिक संख्या इस प्रकार है:—२१८७० हाथी, इतने ही रथ, ६५६१० घोड़े और १०९३५० पैदल। अर्थात् जिस सेनामें हाथी, घोड़े, रथ और पदाती मिलकर २१८७०० हों उसे एक अक्षौहिणी कहते हैं।

सीयके स्वयम्बर, समाज जहाँ राजनि को,
राजनि के राजा महाराजा जानै नाम को ?
पवन, पुरंदर, कृसानु, भानु, धनद से,
गुन के निधान रूपधाम सोम काम को ?
बान बलवान जातुधानप सरीखे सूर,
जिन्हके गुमान सदा सालिम सँग्राम को।
तहाँ दसरत्थ के, समर्थ नाथ तुलसी के,
चपरि चढ़ायो चाप चन्द्रमा ललाम को ॥९॥

शब्दार्थ—पुरन्दर = इन्द्र । कृसानु = अग्नि । सोम = चन्द्रमा । जातुधानप = रावण । सालिम = दृढ़ । चपरि = शीघ्रतासे । चन्द्रमा ललाम = शिवजी ।

भावार्थ—सीताजीके स्वयंवरमें जहाँ राजाओंका समाज है और राजाओंके भी राजे-महाराजे हैं, उन सबका नाम कौन जान सकता है ? वे (बलमें) पवन, (ऐश्वर्यमें) इन्द्र, (तेज और प्रतापमें) अग्नि और सूर्य तथा (धनमें) कुबेरके समान हैं । वे गुणोंके घर अत्यन्त रूपवान हैं; उनके रूपके सामने चन्द्रमा और कामदेव तुच्छ हैं । वहाँ बाणासुर और रावण-सरीखे वीर हैं, जिन्हें युद्धमें सदैव दृढ़ रहनेका अभिमान है । ऐसी सभामें दशरथके लाड़ले और तुलसीदासके समर्थ स्वामी श्रीरामजीने, शिवजीके धनुषको आनन-फानन चढ़ा दिया ।

विशेष

अलंकार—उपमा और काकुवक्रोक्ति ।

मयनमहन पुरदहन गहन जानि,
आनि कै सबै को सार धनुष गढ़ायो है ।
जनक-सदसि जेते भले भले भूमिपाल,
किये बलहीन, बल आपनो बढ़ायो है ॥
कुलिस कठोर कूर्मपीठि तें कठिन अति,
हठि न पिनाक काहू चपरि चढ़ायो है ।
तुलसी सो राम के सरोज-पानि परसत ही,
टूट्यो मानों बारे तें पुरारि ही पढ़ायो है ॥१०॥

शब्दार्थ—मयन-महन = कामदेवको मथन करनेवाले अर्थात्

शिवजी। पुरदहन = त्रिपुरासुरको जलाना। आनि कै = लाकर। सारु = सार। सदसि = सभा। पिनाक = धनुप। वारे तें = लड़कपनसे।

भावार्थ—शिवजीने त्रिपुरासुरको भस्म करना कठिन समझकर सब पदार्थोंका सार लाकर जिस धनुपको बनवाया था, जिस धनुपने जनक-सभामें सब अच्छे अच्छे राजाओंको बलहीन करके अपना बल बढ़ाया था, जो वज्रसे अधिक कठोर और कच्छपकी पीठसे कड़ा था, जिसे बलपूर्वक शीघ्रतासे किसीने नहीं चढ़ाया था, वह धनुप रामजीके कर-कमलोंसे छूते ही टूट गया। तुलसीदास कहते हैं कि मानो शिवजीने उस धनुपको लड़कपनहींसे सिखा रखा था कि रामजीके छूते ही टूट जाना।

विशेष

अलंकार—द्वितीय विभावना 'सरोजपानि परसत ही' में।

छप्पय।

डिगति उर्वि अति गुर्वि, सर्व पव्वै समुद्र सर।
व्याल बधिर तेहि काल, विकल दिगपाल चराचर॥
दिग्गयन्द लरखरत, परत दसकंठ मुक्खभर।
सुर विमान हिमभानु, भानु संघटित परस्पर॥
चौंके विरंचि संकर सहित, कोल कमठ अहि कलमल्यौ।
ब्रह्मांड खंड कियो चंड धुनि, जबहिं राम शिव धनु दल्यौ॥११॥

शब्दार्थ—उर्वि = पृथिवी। गुर्वि = भारी। पव्वै = पहाड़। हिमभानु = चन्द्रमा। कोल = वाराह, सूअर।

भावार्थ—ज्यों ही रामजीने धनुषको तोड़ा त्यों ही उसकी भयङ्कर आवाजने ब्रह्मांडको विदीर्ण कर दिया। अत्यन्त भारी पृथिवी एवं (उसपर स्थित) सब पहाड़, समुद्र और तालाब हिलने लगे। उस समय शेषनाग बहरे हो गये। दिशाओंके रक्षक दिग्पाल और चर तथा अचर प्राणी व्याकुल हो गये, दिग्गज लड़खड़ाने लगे, रावण मुँहके बल गिर पड़ा। देवताओंके विमान (जो कि सीता-स्वयंवर देखनेके लिये आकाशमें स्थित थे), चन्द्रमा और सूर्य आपसमें टकराने लगे। (ऊपर ब्रह्मलोकमें) ब्रह्मा (पृथिवीपर कैलाशमें) शिवजीके सहित चौंक उठे; (पातालमें) वाराह, कच्छप और शेषनाग कुलबुलाने लगे।

विशेष

१—अलंकार—अतिशयोक्ति।

२—'दिग्गयन्द'—दिशाओंके हाथी। लिखा है:—

ऐरावतः पुंडरीको वामनः कुमुदोऽञ्जनः।
पुष्पदन्तः सार्वभौमः सुप्रतीकश्च दिग्गजाः॥

—अमर

घनाक्षरी

[illegible] घनश्याम राम रूप सिसु,
[illegible] प्रेमपथ पालि री।
[illegible] पिनाक तोर्‌यो,
[illegible] डालि री॥
[illegible], सिया को, [illegible], नैन, तुलसी को,
[illegible] कालि री।

कौसिला की कोखि पर तोखि तन वारिये री,
राम दसरत्थ की बलैया लीजै आलि री ॥१२॥

शब्दार्थ—लोचनाभिराम = नेत्रोंको सुख देनेवाले। मंड-लीक-मंडली = राजाओंकी सभा। दाप = अभिमान। दालि = दलन करके। भावतो = मनचाहा।

भावार्थ—(वात्सल्य रसवाली) एक सखी दूसरेसे कहती है—ऐ सखी, बादलके समान साँवले, नेत्रोंको सुख देनेवाले रामजीके स्वरूप रूपी शिशुको प्रेम रूपी दूध पिलाकर पुष्ट कर। राजा दशरथके पुत्रने राज-सभाके प्रताप और घमंडको चूरकर खेलवाड़में ही धनुपको तोड़ डाला। मैंने तुमसे कल ही कहा था कि जनककी, सीताकी, हमारी तुम्हारी तथा तुलसीदास कहते हैं कि सबकी मनोभिलापा पूरी होगी। इसलिये हमें प्रसन्न होकर कौसिल्याकी कोखपर अपने शरीरको निछावर कर देना चाहिये और महाराज दशरथकी बलैया लेनी चाहिये।

विशेष

अलंकार—रूपक (पहले चरणमें) और अनुमान।

दूब दधि रोचना कनक-थार भरि भरि,
आरती सँवारि बर नारि चलीं गावतीं।
लीन्हें जयमाल कर-कंज सोहैं जानकी के,
'पहिराओ राघोजू को' सखियाँ सिखावतीं॥
तुलसी मुदित मन जनक-नगर जन,
झाँकती झरोखे लागीं सोभा रानी पावतीं।

मनहुँ चकोरी चारु बैठीं निज निज नीड़,
चन्द की किरन पीवैं, पलकैं न लावतीं ॥१३॥

शब्दार्थ—रोचना = रोली। कनक = सोना। चारु = सुंदर। नीड़ = घोंसला।

भावार्थ—सुन्दरी स्त्रियाँ सोनेके थालमें दूब, दही और रोली भर-भरकर आरती सजाकर गाती हुई चलीं। जानकीके कर-कमल जयमाला लिये हुए सुशोभित हो रहे हैं। सखियाँ उन्हें सिखला रही हैं कि (यह जयमाला) श्री रामचन्द्रजीको पहनाओ। तुलसीदास कहते हैं कि उस समय जनकपुरवासी प्रसन्न-चित्त थे और झरोखोंसे झाँकती हुई (सुनयना इत्यादि) रानियाँ ऐसी सुशोभित हो रही थीं मानो सुन्दर चकोरियाँ अपने-अपने घोंसलोंमें बैठी हुई अपलक नेत्रोंसे चन्द्र-किरण पान कर रही हों।

विशेष

अलंकार—चौथे चरणमें उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा। कर-कमलमें रूपक।

नगर निसान बर बाजैं, ब्योम दुंदुभी,
बिमान चढ़ि गान कै कै सुर-नारि नाचहीं।
जयजय तिहूँ पुर, जयमाल राम-उर,
बरषैं सुमन सुर, रूरे रूप राचहीं॥
जनक को पन जयो, सबको भावतो भयो,
तुलसी मुदित रोम-रोम मोद माचहीं।
साँवरो किसोर, गोरी सोभापर तृन तोरी,
जोरी जियो जुग-जुग नारीजन जाँचहीं ॥१४॥

शब्दार्थ—निसान = बाजे। व्योम = आकाश। दुन्दुभी = नगाड़ा। राचहीं = अनुरक्त होते हैं। रूरे = सुंदर। तृन तोरी = तृण तोड़कर इसलिये फेंका जाता है जिसमें बच्चेको नजर न लगे।

भावार्थ—जनकपुरमें सुन्दर बाजे बज रहे हैं और आकाशमें नगाड़े। देवताओंकी स्त्रियाँ विमानोंपर चढ़-चढ़कर गा-गाकर नाच रही हैं। रामजीके गलेमें जयमाल पड़ते ही तीनों लोकमें जय-जयकार होने लगा। देवतालोग पुष्प-वर्षा करने लगे और रामजीके सुन्दर रूपपर मोहित हो गये। जनकजीके प्रणकी विजय हुई, सबके मनकी इच्छा पूरी हुई। तुलसीदास कहते हैं कि इससे लोगोंका रोम-रोम प्रसन्न हो रहा है। सखियाँ साँवले राम और गौरवर्ण सीताकी शोभापर तृण तोड़कर (जिसमें उन्हें नजर न लगे) ईश्वरसे प्रार्थना करती हैं कि यह जोड़ी युग-युग जिये।

भले भूप कहत भले भदेस भूपनि सों,
'लोक लखि बोलिए, पुनीत रीतिमारखी'।
जगदम्बा जानकी, जगत पितु रामभद्र,
जानि, जिय जोवो, जो न लागै मुंह कारखी॥
देखे हैं अनेक व्याह, सुने हैं पुरान वेद,
बूझे हैं सुजान-साधु नर-नारि पारखी।
ऐसे सम समधी समाज ना विराजमान,
राम-से न वर, दुलही न सिय सारखी॥१५॥

शब्दार्थ—भदेस = दुष्ट। रीतिमारखी = ऋषियोंकी बतायी हुई रीति। रामभद्र = रामचन्द्र। जोवो = देखो।

भावार्थ—अच्छे राजा दुष्ट राजाओंसे अच्छी बातें कहते हैं कि संसारको देखकर ऋषियोंकी बतलायी हुई पवित्र रीतिको कहना उचित है। जानकीको संसारकी माता और रामचन्द्रको संसारका पिता समझकर हृदयमें देखो जिससे तुमलोगोंके मुँहमें कालिख न लगे—कलंकित न होना पड़े। हमने बहुतसे ब्याह देखे हैं, वेद-पुराण सुने हैं, और ज्ञानी महात्माओं तथा अनुभवी स्त्री-पुरुषोंसे पूछा है। सबसे यही ज्ञात हुआ है कि कहीं भी दशरथ और जनककी तरह समान गुण और स्वभाव-वाले समधी और रामचन्द्र सरीखे वर तथा सीता सरीखी दुलही नहीं है।

बानी, बिधि, गौरी, हर, सेसहू, गनेस कही,
सही भरी लोमस भुसुंडि बहु बारिखो।
चारि दस भुवन निहारि नर-नारि सब,
नारद को परदा न नारद सो पारिखो॥
तिन कही जगमें जगमगति जोरी एक,
दूजो को कहैया औ सुनैया चष चारिखो।
रमा, रमा-रमन, सुजान हनुमान कही,
सीय-सी न तीय न पुरुष राम सारिखो॥१९॥

शब्दार्थ—बानी = सरस्वती। सही भरी = समर्थन किया। पारिखो = पारखी, परखनेवाले। चष चारिखो = नेत्रोंसे देखने-वाले (चख-चारी), विवेकवान।

भावार्थ—सरस्वती, ब्रह्मा, पार्वती, शिव, शेषनाग और गणेशजीने कहा है, अधिक अवस्थावाले लोमस और काक-

भुसुंडिने भी इसका समर्थन किया है; चौदहो भुवनके सब स्त्री-पुरुषोंको देखकर नारदने, जिनके लिए कहीं भी परदा नहीं है अर्थात् जिनकी सब जगह अबाध गति है और जिनके समान दूसरा कोई पारखी नहीं है, कहा है कि संसाभरमें बस एक ही जोड़ी (राम-जानकीकी) प्रकाशमान है। दूसरी जोड़ीको सर्वश्रेष्ठ कहने और सुननेवाला कौन है जो आँखोंसे देखता हो अर्थात् विवेकवान हो ? लक्ष्मी, विष्णु और चतुर हनुमानजीने भी यही कहा है कि न तो सीताके समान दूसरी स्त्री है और न रामजीके समान कोई पुरुष ।

विशेष

१—अलंकार—अतिशयोक्ति ।

दूलह श्री रघुनाथ बने, दुलही सिय सुन्दर मन्दिर माहीं ।
गावति गीत सबै मिलि सुन्दरि, वेद जुवा जुरि विप्र पढ़ाहीं ॥
राम को रूप निहारति जानकी कंकन के नग की परछाहीं ।
यातें सबै सुधि भूलि गई, कर टेकि रही पल टारति नाहीं ॥१७॥

शब्दार्थ—जुवा जुरि = युवक मिलकर । कर टेकि रही = हाथको स्थिर रखकर ।

भावार्थ—महलमें श्री रामजी दूल्हा और जानकीजी दुलहिनके वेषमें हैं। सब स्त्रियाँ मंगल गीत गाने लगीं और युवक ब्राह्मण मिलकर वेदध्वनि करने लगे। जानकीजी अपने हाथके कंकणके नगमें श्री रामजीकी परछाहींको देखने लगीं। इससे उन्हें सब सुध भूल गयी, उन्होंने अपने हाथको स्थिर रखा और पलकोंको नहीं गिराया ।

२

विशेष

१—अलंकार—प्रथम हेतु।

२—'जुआ जुरि'—इसका अर्थ कई टीकाकारोंने 'जुआ खेलनेके समय' माना है। वैवाहिक कार्य समाप्त होनेपर सब स्त्रियाँ वर-वधूको कोहबरमें ले जाकर लहकौर खिलानेके बाद उनसे जुआ खेलाती हैं। इसी परिपाटीको लक्ष्य करके उक्त अर्थ किया गया है। किन्तु इस अर्थसे वैवाहिक कार्य समाप्त हो जानेके बाद ब्राह्मणोंकी वेद-ध्वनि निरर्थक हो जाती है। इसलिये यह अर्थ संगत नहीं जँचता।

कवित्त

भूप मंडली प्रचंड चंडीस-कोदंड खंड्यो,
चंड बाहुदंड जाको ताही सों कहतु हौं।
कठिन कुठार धार धारिवेकी धीरताहि,
वीरता विदित ताकी देखिए चहतु हौं॥
तुलसी समाज राज तजि सो बिराजै आजु,
गाज्यो मृगराज गजराज ज्यों गहतु हौं।
छोनी में न छाँड्यो छप्यौ छोनिपको छौना छोटो,
छोनिप-छपन बाँको बिरुद बहतु हौं॥१८॥

शब्दार्थ—चंडीस = शिवजी। कोदंड = धनुष। कुठार = फरसा। धारिबे = सहन करने। छप्यौ = छिपा। छोनिप = राजा। छौना = बच्चा। छपन = मारनेका।

भावार्थ—परशुरामजीने सभामें आकर कहा, राजाओंकी

मण्डलीमें जिस बलवानने शिव-धनुषको तोड़ा है, जिसकी भुजाओं-में बल है उसीसे मैं कहता हूँ। मैं उसकी प्रसिद्ध वीरता और अपने कठोर फरसेकी धारको सहन करनेकी धीरताको देखना चाहता हूँ। तुलसीदास कहते हैं कि वह (वीर) आज राजाओं-के समाजसे अलग खड़ा हो जाय, उसे मैं उसी तरह पकड़ूँगा जैसे सिंह गरजकर हाथीको। मैंने पृथिवीमें राजाओंके छोटे बच्चोंको भी जीता नहीं छोड़ा, यह छिपा नहीं है; मैं क्षत्रियोंके मारनेका बाँका यश धारण किये हुए हूँ।

विशेष

अलंकार—वृत्त्यनुप्रास।

निपट निदरि बोले वचन कुठारपानि,
मानि त्रास औनिपन मानौ मौनता गही।
रोपे मापे लखन अकनि अनखौहीं बातैं,
तुलसी विनीत बानी बिहँसि ऐसो कही॥
"सुजस तिहारो भरो भुवननि भृगुनाथ!
प्रगट प्रताप आपु कहौ सो सबै सही।
टूट्यौ सो न जुरैगो सरासन महेसजू को,
रावरी पिनाकमें सरीकता कहा रही॥१९॥

शब्दार्थ—निपट = अत्यन्त। निदरि = अपमान-जनक। कुठारपानि = परशुराम। औनिपन = राजाओंने। मापे = बुरा मानकर। अनखौहीं = खिझानेवाली। रावरी = आपकी। सरीकता (शरीक) = साझा।

भावार्थ—परशुरामजीने अत्यन्त अपमानजनक बात कही।

उसे सुनकर राजालोग ऐसे भयभीत हो गये मानो वे मौनव्रत धारण किये हों। तुलसीदासजी कहते हैं कि उनकी खिझानेवाली बातें सुनकर लक्ष्मणजी क्रुद्ध हो उठे; परन्तु हँसकर नम्र वचन इस प्रकार बोले—हे परशुरामजी, आपका सुयश सभी लोकोंमें व्याप्त है, आपका प्रताप प्रकट है, आप जो कुछ कहते हैं सब सही है। परन्तु शिवजीका जो धनुष टूट गया है वह अब जुड़ नहीं सकता। क्या इस धनुषमें आपका साझा था ?

विशेष

अलंकार—अनुक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा।

सवैया

गर्भ के अर्भक काटन को पटु-धार कुठार कराल है जाको।
सोई हौं बूझत राजसभा 'धनु को दल्यौ'? हौं दलिहौं बल ताको॥
लघु आनन उत्तर देत बड़ो, लरिहै मरिहै करिहै कछु साको।
गोरो गरूर गुमान भरो कहौ कौसिक छोटो सो ढोटो है काको॥२०॥

शब्दार्थ—अर्भक = बच्चा। पटु = कुशल, चतुर। हौं बूझत = मैं पूछता हूँ। साको = यश, निशान। कौसिक = विश्वामित्र। ढोटो = लड़का। काको = किसका।

भावार्थ—परशुरामजी कहते हैं—गर्भके बच्चोंको भी काटनेमें कुशल धारवाला भयंकर फरसा जिसके पास है वही मैं राजसभा-से पूछता हूँ कि धनुषको किसने तोड़ा? मैं उसके बलको चूर्ण कर डालूँगा। हे विश्वामित्रजी, कहिये यह छोटी मुँह बड़ी बात करनेवाला लड़का लड़कर मरेगा या (मुझे जीतकर) कुछ निशान करेगा? गोरे रंगवाला अभिमानसे भरा हुआ यह छोटासा बालक किसका है?

विशेष

अलंकार—कारणनिबन्धना अप्रस्तुतप्रेक्षा तथा लोकोक्ति।

कवित्त

मख राखिबेके काज राजा मेरे संग दये,
जीते जातुधान जे जितैया बिबुधेस के।
गौतम की तीय तारी, मेटे अघ भूरि भारी,
लोचन-अतिथि भए जनक जनेस के॥
चंड बाहुदंड बल चंडीस-कोदंड खंड्यो,
ब्याही जानकी, जीते नरेस देस-देस के।
साँवरे-गोरे सरीर, धीर महाबीर दोऊ,
नाम राम-लखन, कुमार कोसलेस के॥२१॥

शब्दार्थ—मख = यज्ञ। बिबुधेस = देवताओंके ईश, इन्द्र। जनेस = राजा।

भावार्थ—विश्वामित्रने कहा,—महाराज दशरथने यज्ञकी रखवाली करनेके लिए इन्हें मेरे साथ कर दिया है। इन्होंने उन राक्षसों (मारीच सुबाहु आदि) को जीता है जो इन्द्रको भी जीतनेवाले थे। इन्होंने गौतमकी स्त्रीका, उसके बड़े भारी पापको नष्ट करके, उद्धार किया और ये यहाँ राजा जनकके नेत्रोंके अतिथि हुए अर्थात् ऐसे अतिथि हैं जिन्हें जनकजी आँखकी पुतलीके समान समझते हैं। यहाँ इन्होंने अपने प्रचंड भुजबलसे शिव-धनुषको तोड़ा है और देश देशान्तरके राजाओंको जीतकर जानकीजीको ब्याहा है। ये साँवरे और गोरे शरीरवाले दोनों

बड़े ही वीर और धीर हैं; इनका नाम राम और लक्ष्मण है और ये महाराज दशरथके पुत्र हैं।

विशेष

१—अलंकार—पर्यायोक्ति।

२—यहाँ 'जीते जातुधानमें जितैया बिबुधेसके' कहकर युद्ध-वीरताका परिचय दिया है, 'गौतमकी तीय तारी' कहकर ईश्वरत्व दिखलाया है और जनकके 'लोचन-अतिथि' कहकर परब्रह्मरूप सूचित किया है।

३—'गौतमकी तीय तारी'—अहल्याकी सुन्दरतापर मुग्ध होकर इन्द्रने एक दिन गौतम ऋषिकी अनुपस्थितिमें उनका रूप धारण कर उनकी कुटीमें घुसकर अहल्याके साथ सम्भोग किया। ज्यों ही इन्द्र कुटीसे बाहर निकलकर जाने लगे त्यों ही वहाँ गौतम ऋषि आ गये। ऋषि अपने योगबलसे इन्द्रकी नीचताका हाल जान गये। उन्होंने इन्द्रको शाप दिया कि तेरे शरीरमें सहस्र भग हो जायँ और अहल्याको शाप दिया कि तू पत्थर हो जा। इसपर अहल्याने अपनी निर्दोषिता प्रमाणित करके क्षमा माँगी। गौतमजीने कहा कि जब रामचन्द्रजी इस मार्गसे आवेंगे तो उनके चरणोंके स्पर्शसे तेरा उद्धार होगा। वह शिला-रूपिणी अहल्या रामजीके चरणसे स्पर्श होते ही शाप-मुक्त होकर अपने असली स्वरूपमें हो गयी और गौतमके पास चली गयी।

सवैया

काल कराल नृपालनके धनुभंग सुने फरसा लिए धाए।
लक्खन राम बिलोकि सप्रेम, महा रिसि ते फिरि आंखि दिखाए॥

धीर-सिरोमनि वीर बड़े, विनयी, विजयी रघुनाथ सुहाए।
लायक हे भृगुनायक सो धनुसायक सौंपि सुभाय सिधाए ॥२२॥

शब्दार्थ—कराल = भयंकर। बिलोकि = देखकर। लायक हे = योग्य थे।

भावार्थ—धनुषका टूटना सुनकर राजाओंके लिए भयंकर काल-रूप परशुरामजी फरसा लेकर दौड़े। पहले तो राम और लक्ष्मणको देखकर प्रेमसे भर गये, किन्तु उसके बाद ही उन्होंने क्रोधसे आंखें दिखलायीं। परन्तु धीर-शिरोमणि, महान वीर, नम्र और विजयी श्री रामजी उन्हें भले मालूम हुए। परशुरामजी योग्य थे, यही कारण है कि वह अपना धनुष बाण सहजहीमें रामजीको सौंपकर (वहांसे) चले गये।

अयोध्याकाण्ड

सवैया

कीर के कागर ज्यौं नृपचीर विभूषन, उप्पम अंगनि पाई।
औध तजी मगवास के रूख ज्यौं पंथ के साथी ज्यौं लोग-लुगाई॥
संग सुबंधु, पुनीत प्रिया मनो धर्म-क्रिया धरि देह सुहाई।
राजिवलोचन राम चले तजि बापको राज बटाऊ की नाई ॥१॥

शब्दार्थ—कीर = तोता। कागर = (कागज) पंख। मगबास = रास्तेका निवास । लोग-लुगाई = पुरुष-स्त्री । पुनीत = पवित्र, पतिव्रता। बटाऊ = बटोही, राही।

भावार्थ—(वन-यात्राके समय) श्री रामजीने राजसी वस्त्रों और आभूषणोंको इस प्रकार त्याग दिया जिस प्रकार सुग्गा अपने पंख गिरा देता है। उन्होंने अयोध्याको इस प्रकार छोड़ दिया जैसे लोग रास्तेके निवासके वृक्षको छोड़कर चल देते हैं और वहांके स्त्री-पुरुषोंको इस प्रकार त्याग दिया जैसे लोग रास्ते-के साथियोंको छोड़ देते हैं। उनके साथमें भाई लक्ष्मण और पतिव्रता सीताजी इस प्रकार शोभा दे रही हैं मानो धर्म और क्रिया शरीर धारण कर सुशोभित हो रहे हों। कमलके समान नेत्रवाले श्री रामजी अपने पिताके राज्यको छोड़कर पथिककी भांति चल पड़े।

विशेष

अलंकार—उपमा, उत्प्रेक्षा।

कागर-कीर ज्यौं भूपन-चीर सरीर लस्यौ तजि नीर ज्यौं काई।
मातु-पिता प्रिय लोग सबै सनमानि सुभाय सनेह सगाई॥
संग सुभामिनि भाइ भलो, दिन द्वै जनु औध हुते पहुनाई।
राजिवलोचन राम चले तजि बापको राज बटाऊ की नाई॥२॥

शब्दार्थ—नीर = जल। चीर = वस्त्र। सगाई = सम्बन्धी। सुभामिनि = सुन्दर स्त्री।

भावार्थ—सुग्गोंके पंखके समान वस्त्राभूषण त्याग देनेपर रामजीका शरीर ऐसा सुशोभित हुआ जैसे काई हटा देनेसे जल

सुशोभित होता है। माता-पिता, प्रिय-जन तथा स्नेही-सम्बन्धियों-का स्वाभाविक स्वभावसे सम्मान करके साथमें सुन्दर स्त्री और अच्छे भाई लक्ष्मणको लेकर कमल-नेत्र श्री रामजी अपने पिताके राज्यको छोड़कर बटोहीकी तरह चल पड़े मानो वह अयोध्यामें दो दिनके मेहमान थे।

विशेष

अलंकार—उपमा, उत्प्रेक्षा।

घनाक्षरी

सिथिल सनेह कहै कौसिला सुमित्रा जू सों,
मैं न लखी सौति, सखी! भगिनि ज्यौं सेई है।
कहैं मोहिं मैया, कहौं, 'मैं न मैया भरतकी,
बलैया लैहौं, भैया! तेरी मैया कैकेयी है'॥
तुलसी सरल भाय रघुराय माय मानी,
काय-मन-बानी हूँ न जानी कै मतेई है।
बाम विधि मेरो सुख सिरिस सुमन सम,
ताको छल-छुरी कोह-कुलिस लै टेई है॥३॥

शब्दार्थ—मतेई = विमाता। कोह-कुलिस = क्रोधरूपी वज्र। टेई है = तेज किया है।

भावार्थ—कौशिल्याजी (कैकेईके प्रति) प्रेमसे शिथिल होकर सुमित्राजीसे कहती हैं—हे सखी! मैंने कैकेयीके साथ कभी सौतकासा व्यवहार नहीं किया, सदा बहनकी भांति सम्मान किया है। (जब) रामचन्द्र मुझे माँ कहते थे (तब) मैं उनसे कहती थी कि भैया, मैं तुम्हारी बलैया लेती हूँ, मैं तुम्हारी माँ नहीं हूँ; मैं तो भरतकी माँ हूँ; तुम्हारी माँ कैकेयी हैं। तुलसीदास

कहते हैं कि सरल स्वभाववाले रामचन्द्र कैकेयीको ही माँ मानते थे, उन्होंने तन-मन-वचनसे भी कभी उन्हें विमाता करके नहीं जाना। किन्तु विधाता मेरे प्रतिकूल हैं और मेरा सुख सिरिसके फूलके समान (कोमल) है। उसको काटनेके लिए कैकेयीने अपनी छल-रूपी छुरीको क्रोध-रूपी वज्रपर रगड़कर तेज किया है।

विशेष

अलंकार—उपमा और रूपक।

'कीजै कहा जीजी जू!' सुमित्रा परि पायँ कहै,
तुलसी सहावै विधि सोई सहियुत है।
रावरो सुभाव रामजन्म ही तें जानियतु,
भरतकी मातु को कि ऐसो चहियतु है? ॥
जाई राजघर, ब्याहि आई राज घर माँह,
राजपूत पाए हूँ न सुख लहियतु है।
देह सुधागेह ताहि मृगहू मलीन कियो,
ताहु पर बाहु बिनु राहु गहियतु है" ॥४॥

शब्दार्थ—जीजी = बड़ी बहन। जाई = पैदा हुई। सुधा गेह = अमृतका घर, चन्द्रमा।

भावार्थ—सुमित्राजी कौशल्याजीके पैरोंपर गिरकर कहती हैं कि हे बहन, क्या किया जाय, जो ब्रह्मा सहावे उसे सहना ही पड़ेगा। आपका स्वभाव तो इसीसे प्रकट होता है कि राम सरीखा पुत्र आपके पेटसे पैदा हुआ है। क्या भरतको माँको ऐसा करना चाहिये था? आप राजाके घरमें पैदा हुई राजाके

घरमें व्याह कर आयीं, आपको राजपुत्र भी मिला, किन्तु इतने-पर भी आपको सुख नहीं मिल रहा है। चन्द्रमाका शरीर अमृतका घर है किन्तु उसे मृगने कलंकित किया है; उसपर भी बिना हाथोंवाला राहु उसे ग्रसता है।

विशेष

अलंकार—दृष्टान्त।

सवैया

नाम अजामिल से खल कोटि अपार नदी भव बूड़त काढ़े।
जो सुमिरे गिरि-मेरु सिला-कन होत अजाखुर बारिधि बाढ़े॥
तुलसी जेहिके पद-पंकज तें प्रगटी तटिनी जो हरै अघ गाढ़े।
सो प्रभु स्वै सरिता तरिबे कहँ माँगत नाव करारे ह्वै ठाढ़े॥५॥

शब्दार्थ—कोटि = करोड़ों। भव = संसार। काढ़े = उबार लिया। तटिनी = नदी। अजा = बकरी। स्वै = सोई, वही।

भावार्थ—जिस रामनामने अजामिल सरीखे करोड़ों पापियों-को संसार रूपी अपार नदीमें डूबनेसे उबार लिया, जिसका स्मरण करनेसे सुमेरु पर्वत पत्थरका कण और बढ़ा हुआ समुद्र बकरीके खुरके समान हो जाता है। तुलसीदास कहते हैं कि जिसके चरण-कमलोंसे उत्पन्न हुई गंगाजी बड़े-से-बड़े पापोंको नष्ट कर देती हैं, वह रामजी उसी गंगाजीको पार करनेके लिये किनारेपर खड़े होकर नाव माँग रहे हैं।

विशेष

अलंकार—रूपक और उपमा।

'अजामिल'—इस नामका एक घोर पापी ब्राह्मण था। वह अपने नारायण नामक पुत्रको बहुत चाहता था। मरते समय उसने नारायण पुत्रको पुकारा। पुत्रके बहाने भगवानका नाम निकलते ही यमदूत भाग गये और वह बैकुंठमें चला गया।

एहि घाटतें थोरिक दूरि अहै कटि लौं जल-थाह दिखाइहौं जू।
परसे पगधूरि तरै तरनी, घरनी घर क्यों समुझाइहौं जू॥
तुलसी अवलंब न और कछू, लरिका केहि भांति जिआइहौं जू।
वरु मारिए मोहिं, विना पग धोए हौं नाथ न नाव चढ़ाइहौं जू॥६॥

शब्दार्थ—कटि = कमर। तरनी = नाव। घरनी = स्त्री। वरु = वल्कि।

भावार्थ—(केवट रामजीसे कहता है) इस घाटसे थोड़ी ही दूरीपर कमरभर पानी है, उसे मैं दिखला दूँगा। (वहांसे आप स्वयं पार हो जाइये) आपके पैरोंकी धूलको स्पर्श करते ही मेरी नाव तर जायगी; फिर मैं घरमें अपनी स्त्रीको क्या कहकर समझाऊँगा? तुलसीदास कहते हैं कि मेरी (नाविककी) जीविकाका और कोई सहारा नहीं है; मैं अपने लड़कोंका पालन कैसे करूँगा? इसलिये हे नाथ! चाहे आप मुझे मारिये, किन्तु मैं विना पैर धोये आपको नावपर (कदापि) न चढ़ाऊँगा।

रावरे दोप न पायँनको, पगधूरिको भूरि प्रभाउ महा है।
पाहन तें वन-वाहन काठको कोमल है, जल खाइ रहा है॥
पावन पायँ पखारि कै नाव चढ़ाइहौं, आयसु होत कहा है।
तुलसी सुनि केवटके वर वैन हँसे प्रभु जानकी ओर हहा है॥७॥

शब्दार्थ—यन-बाहन = जलकी सवारी अर्थात् नाव। आयसु = आज्ञा।

भावार्थ—केवट कहता है कि हे रामजी! आपके पैरोंका दोष नहीं है बल्कि यह आपके पैरोंकी धूलका बहुत बड़ा प्रभाव है। पत्थरसे लकड़ीकी नाव कोमल है तिसपर वह (रात दिन) पानी खा रही है। (इसलिए) मैं आपके पैरोंको धोकर नावपर चढ़ाऊँगा, कहिये क्या आज्ञा हो रही है? तुलसीदास कहते हैं कि केवटकी चतुरतापूर्ण बात सुनकर रामजी महारानी जानकीकी ओर देखकर ठठाकर हँसे।

विशेष

'जानकी ओर'—जानकीजी आह्लादिनी शक्ति हैं। वही बद्ध मुक्त जीवकी व्यवस्था करनेवाली हैं। उनकी आज्ञाके बिना कोई भी प्राणी संसार-सागरसे पार नहीं हो सकता। इसीसे रामजी उनकी ओर देखकर हँसे। हँसनेका दूसरा आशय यह भी हो सकता है कि जनकपुरमें जानकीजी भी रामजीके चरण-रजसे भयभीत होकर उसका स्पर्श नहीं कर रही थीं। इसीसे रामजीने हँसकर उस बातकी याद दिलायी और सूचित किया कि देखो, यह केवट तुम्हारे हाथसे सेवाका अधिकार छीन रहा है।

घनाक्षरी

'पात भरी सहरी, सकल सुत बारे बारे,
केवटकी जाति कछु वेद न पढ़ाइहौं।
सब परिवार मेरो याही लागि, राजा जू,
हौं दीन वित्त-हीन कैसे दूसरी गढ़ाइहौं॥

गौतम की घरनी ज्यौं तरनी तरैगी मेरी,
प्रभु सों निषाद ह्वै कै बाद न बढ़ाइहौं।
तुलसीके ईस राम रावरी सौं, साँची कहौं,
विना पग धोए नाथ नाव न चढ़ाइहौं ॥ ८ ॥

शब्दार्थ—वारे वारे = छोटे छोटे । वित्तहीन = धनहीन, गरीब । सौं = शपथ ।

भावार्थ—मेरी गृहस्थी कची है, मेरे सब लड़के छोटे छोटे हैं, केवटकी जाति है कुछ वेद वो पढ़ाऊँगा नहीं । हे राजन्! मेरा सब परिवार केवल इसीके लिए है अर्थात् इसीसे जीता है । मैं दीन और धनहीन हूँ दूसरी नाव कैसे गढ़ाऊँगा? मैं निषाद होकर प्रभुसे विवाद नहीं बढ़ाऊँगा, केवल इतना ही कहूँगा कि मेरी नाव गौतमकी स्त्री अहल्याकी तरह तर जायगी । हे रामजी मैं आपकी शपथ-पूर्वक सच कहता हूँ कि विना पैर धोये नावपर, न चढ़ाऊँगा नाथ!

विशेष

'पाव भरी सहरी'—इसका अर्थ वहुतसे टीकाकारोंने 'पत्ते भर मछली मेरी कमाई है' या 'पत्तलभर मछली मारता हूँ यही मेरी आजीविका है' लिखा है; किन्तु यह अर्थ ठीक नहीं जँचता क्योंकि 'सहरी' शब्द 'सफरी' का अपभ्रंश नहीं है, इसलिये इसका अर्थ 'मछली' नहीं हो सकता ।

जिनको पुनीत वारि, धारे सिर पै पुरारि,
त्रिपथगामिनि-जसु वेद कहै गाइ कै ।
जिनको जोगीन्द्र मुनिवृन्द देव देह भरि,
करत विराग जप-जोग मन लाइ कै ॥

तुलसी जिनकी धूरि परसि अहल्या तरी,
गौतम सिधारे गृह गौनो-सो लिवाइ कै।
तेई पायँ पाइकै चढ़ाइ नाव धोए बिनु,
ख्वैहौं न पठावनी कै ह्वैहौं न हँसाइ कै॥ ९॥

शब्दार्थ—पुरारि = शिवजी। त्रिपथगामिनि = आकाश, पाताल और मृत्युलोकमें बहनेवाली, गंगाजी। पठावनी कै = भेजकर, पार उतारकर, मजदूरी।

भावार्थ—जिनके चरणोंसे निकले हुए जलको शिवजी अपने मस्तकपर धारण किये हैं उस गंगाजीके यश वेद गाते हैं। जिन चरणोंको पानेके लिये बड़े बड़े योगी, मुनिगण और देवता जन्म-भर मन लगाकर वैराग्य, जप और योग करते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि जिन चरणोंकी धूलका स्पर्श कर अहल्या तर गयी और गौतम ऋषि गौनेकी स्त्रीकी तरह उसे लेकर अपने घर गये, उन चरणोंको पाकर बिना धोये नावपर चढ़ा उस पार भेजकर मैं अपनी मजदूरी नहीं खोऊँगा, अपनी हँसी न कराऊँगा।

विशेष

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

प्रभु रुख पाइ कै बोलाइ बाल घरनिहिं,
बंदि कै चरन चहूँ दिसि बैठे घेरि घेरि।
छोटो सो कठौता भरि आनि पानि गंगाजू को,
धोइ पायँ पीयत पुनीत वारि फेरि फेरि॥
तुलसी सराहैं ताको भाग सानुराग सुर,
बरषैं सुमन जय जय कहैं टेरि टेरि।

विबुध-सनेह-सानी वानी असमानी सुनी,
हँसे राघौ जानकी-लषन तन हेरि हेरि ॥१०॥

शब्दार्थ—कठौता = लकड़ीका वर्त्तन । आनि = लाकर । फेरि फेरि = बारम्बार । टेरि टेरि = पुकार पुकारकर । विबुध = देवता । असयानी = अचतुर, निश्छल ।

भावार्थ—(केवटने) प्रभुका रुख पाकर स्त्री बच्चोंको बुलाया और सबके सब रामजीके चरणोंकी वन्दना करके चारो ओरसे घेरकर बैठ गये । छोटीसी कठवतमें गंगाजल भरकर ले आये और पैर धोकर वह पवित्र जल बारम्बार पीने लगे । तुलसीदास कहते हैं कि उस समय देवतालोग प्रेम-पूर्वक उस केवटके भाग्यकी सराहना करने लगे और चिल्ला चिल्लाकर जय-जयकार करते हुए पुष्प-वर्षा करने लगे । देवताओंकी प्रेमसे भरी निश्छल वाणी सुनकर रामजी लक्ष्मण और जानकीकी ओर देखकर हँसने लगे ।

अलंकार—सम्बन्धातिशयोक्ति ।

सवैया

पुर तें निकसी रघुवीर-वधू, धरि धीर दये मग में डग द्वै ।
झलकीं भरि भाल कनी जल की, पुट सूखि गए मधुराधर वै ॥
फिरि बूझति हैं "चलनो अब केतिक, पर्नकुटी करिहौ कित ह्वै ?"
तियकी लखि आतुरता पियकी अँखियाँ अति चारु चलीं जल च्वै ।११।†

† छक्कनलालकी छपायी हुई प्रतिमें इसके आगे यह सवैया और है:-

जलज-नयन, जलजानन, जटा है सिर,
जोबन उमंग अंग उदित उदार हैं ।
साँवरे गोरे के बीच भामिनी सुदामिनी सी,
मुनिपट धरे, उर फूलनि के हार हैं ॥
करनि सरासन सिलीमुख, निषंग कटि,
अति ही अनूप काहू भूप के कुमार हैं ।
तुलसी बिलोकि कै तिलोक के तिलक तीनि,
रहे नरनारि ज्यों चितेरे चित्रसार हैं ॥ १४ ॥

शब्दार्थ—जलज = कमल । जलजानन = कमलके समान मुख । सुदामिनी = बिजली । सिलीमुख = बाण । निषंग = तरकस । चितेरे = चित्रकार । चित्रसार = चित्रशाला ।

भावार्थ—(ग्रामवासी मार्गमें राम, जानकी और लक्ष्मणको देखकर आपसमें कहते हैं) इनलोगोंके नेत्र और मुख कमलके समान हैं । इनके सिरपर जटा है और प्रत्येक अंगसे यौवनका उत्साह प्रकट हो रहा है । साँवरे (रामजी) और गोरे (लक्ष्मण

जल सूखि गये रसनाधर मंजुल कंज से लोचन चारु चुवैं ।
करुनानिधि कंत तुरन्त कह्यो कि 'दुरंत महावन है इत वै' ?
सरसीरुह-लोचन मोचत नीर चितै रघुनायक सीय पै ह्वै ।
"अबहीं वन, भामिनि ! पूछति हौ तजि कोसलराज पुरी दिन द्वै ॥

यह सवैया विक्रम सम्वत् १८५५ की एक हस्त-लिखित प्रतिमें भी मिली है । किन्तु नागरी-प्रचारिणी-सभा द्वारा प्रकाशित प्रतिमें नहीं है ।

जीके बीचमें वह स्त्री (सीताजी) बिजलीके समान सुशोभित हो रही है। ये मुनिके वस्त्र (वल्कल आदि) धारण किये हुए हैं और इनके हृदयपर फूलोंकी माला है । हाथोंमें धनुषवाण तथा कमरमें तरकसकी शोभा उपमा-रहित है; ये किसी राजाके कुमार हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि तीनों लोकोंमें श्रेष्ठ इस मूर्ति-त्रयको देखकर स्त्री-पुरुष उनकी ओर देखकर इस प्रकार मुग्ध दृष्टिसे टकटकी लगाये हुए हैं जैसे चित्रकार (मनोहर कला-पूर्ण) चित्रशालापर ।

विशेष

अलंकार—धर्मलुप्तोपमा। माधुर्यगुण।

'चितेरे'—का अर्थ कुछ विद्वानोंने 'चित्र' लिखा है; किन्तु वास्तवमें इसका अर्थ है 'चित्रकार'। महाकवि बिहारीलालजीने भी अपनी सतसईके एक दोहेमें इस शब्दका प्रयोग चित्रकारके ही लिए किया है:—

भये न केते जगत के, चतुर चितेरे कूर।

और फिर यदि 'चितेरे' का अर्थ 'चित्र' माना जायगा तो 'सँपेरे' का अर्थ भी 'साँप' मानना पड़ेगा।

आगे सोहैं साँवरो कुवँर, गोरो पाछे पाछे,
आगे मुनि-वेष धरे लाजत अनंग हैं।
बान बिसिपासन, बसन बन ही के कटि,
कसे हैं बनाइ नीके राजत निषंग हैं॥
नाथ निग्निनाथ मुखी पाथनाथ-नंदिनी-सी,
तुलसी बिलोके चित लाइ लेत संग हैं।

आनँद उमंग मन, जोवन उमंग तन,
रूपकी उमंग उमँगत अंग-अंग हैं ॥ १५ ॥

शब्दार्थ—लाजत = लज्जित करते। बिसिपासन = धनुष। नीके = अच्छी तरह। पाथनाथ-नन्दिनी = लक्ष्मी।

भावार्थ—आगे आगे साँवले (रामजी) राजकुमार और पीछे पीछे गौर (लक्ष्मणजी) राजकुमार बड़े अच्छे मालूम हो रहे हैं। ये मुनिका वेश धारण किये हुए हैं और कामदेवकी सुन्दरताको लज्जित करते हैं। ये हाथोंमें धनुष-बाण लिये हैं और कमरमें वल्कल वस्त्र अच्छी तरह बनाकर कसे हैं; (साथ-हो) तरकस भी सुशोभित है। इनके साथमें लक्ष्मीके समान एक चन्द्र-वदनी (सीताजी) हैं। तुलसीदास कहते हैं कि ये देखते ही चित्तको खींच लेते हैं। इनके मनमें आनन्दकी उमंग और शरीरपर यौवनकी उमंग है। सुन्दरताकी उमंग तो अंग-अंगसे फूटी पड़ती है।

विशेष

अलंकार—उपमेय लुप्तोपमा।

कवित्त

सुन्दर वदन, सरसीरुह सुहाए नैन,
मंजुल प्रसून माथे मुकुट जटनि के।
अंसनि सरासन लसत, सुचि कर सर,
तून कटि, मुनिपट लूटक पटनि के॥
नारि सुकुमारि संग जाके अंग उबटि कै,
बिधि बिरचे बरूथ बिद्युत-छटनि के।

गोरे को वदन देखे सोनो न सलोनो लागै,
साँवरे विलोके गर्व घटत घटनि के ॥ १६ ॥

शब्दार्थ—अंसनि = कन्धों। सुचि = पवित्र। तून = तूणीर, तरकस। लूटक = लूटनेवाले। उबटि कै = उबटनद्वारा मैल छुड़ाकर। वरूथ = समूह। घटनि = घटाओं।

भावार्थ—उसके मुख सुन्दर और नेत्र कमलके समान सुहावने हैं। सिरपर जटाओंके मुकुटमें सुन्दर पुष्प गुथे हुए हैं; कन्धोंपर धनुष और पवित्र हाथोंमें बाण शोभित हैं। कमरमें तरकस है। वल्कल वस्त्र तो (बहुमूल्य) वस्त्रोंकी शोभाको भी मात करनेवाले हैं। साथमें कोमलांगी स्त्री है जिसके अंगोंमें उबटन लगाकर ब्रह्माने बिजलीकी छटाओंका निर्माण किया है। गौरवर्ण लक्ष्मणजीको देखनेसे सुवर्ण रंग भी सुन्दर नहीं प्रतीत होता और श्यामवर्ण श्री रामचन्द्रजीको देखनेसे बादलकी घटाओंका गर्व घट जाता है।

विशेष

अलंकार—रूपक (नयन-कमल)। प्रतीप (चौथे चरणमें)।

वल्कल वसन, धनुबान पानि तून कटि,
रूप के निधान, घन-दामिनी-बरन हैं।
तुलसी सुतीय संग सहज सुहाए अंग,
नवल कँवल हू तें कोमल चरन हैं ॥
औरै सो बसंत, औरै रति, औरै रतिपति,
मूरति बिलोके तन-मन के हरन हैं।

तापस बेषै बनाइ, पथिक पथै सुहाइ,
चले लोक-लोचननि सुफल करन हैं ॥ १७ ॥

शब्दार्थ—पानि = हाथ। घन-दामिनी-बरन = बादल और बिजलीके रंगके। नवल = नवीन। कँवल = कमल। औरै = दूसरे। रतिपति = कामदेव। बिलोके = देखनेसे।

भावार्थ—वल्कल वस्त्र पहने, हाथमें धनुष-बाण लिये, कमरमें तरकस बांधे, सुन्दरताके घर दोनों भाई बादल और बिजलीके रंगके हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि साथमें सुंदरी स्त्रीके अंग स्वभावतः सुशोभित हैं; उनके चरण नवीन कमलसे भी अधिक कोमल हैं। ये दूसरे वसन्त (लक्ष्मण जी) दूसरी रति (सीताजी) और दूसरे कामदेव (रामजी) हैं। स्वरूपको देखते ही वे तन और मनको हरनेवाले हैं। ये तपस्वीका वेष बनाकर पवित्र रूपसे मार्गमें सुशोभित होकर तीनों लोकोंके वासियोंके नेत्रोंको सुफल करनेके लिए चले हैं।

सवैया

बनिता बनी स्यामल गौर के बीच, बिलोकहु री सखी! मोहि-सी ह्वै।
मग जोग न, कोमल क्यों चलि हैं? सकुचाति मही पद-पंकज छ्वै॥
तुलसी सुनि ग्राम-बधू बिथकीं, पुलकीं तन औ चले लोचन च्वै।
सब भांति मनोहर मोहन रूप, अनूप हैं भूपके बालक द्वै ॥१८॥

शब्दार्थ—बनिता = स्त्री। ह्वै = होकर। मही = पृथिवी। बिथकीं = विशेष थकीं, स्तब्ध हो गयीं।

भावार्थ—(एक स्त्री अपनी सखीसे कहती है) हे सखी!

साँवले और गोरेके बीचमें वह स्त्री कैसी शोभा दे रही है, जरा मेरी ही भांति ध्यानसे देखो। ये रास्ता चलने योग्य नहीं हैं, ये सुकुमार हैं क्योंकर चलेंगे ? इनके चरण-कमलोंको छूकर पृथिवी संकुचित हो रही है। तुलसीदासजी कहते हैं कि स्त्रीकी ये बातें सुनकर गाँवकी स्त्रियाँ स्तब्ध हो गयीं, उनके शरीरमें रोमांच हो आया और आँखोंसे आँसू गिरने लगे और वे कहने लगीं कि राजाके ये दोनों लड़के सब प्रकारसे मनको हरनेवाले, मोहन रूप और अनुपमेय हैं।

साँवरे गोरे सलोने सुभाय, मनोहरता जिति मैन लियो है।
बान कमान निषंग कसे, सिर सोहैं जटा, मुनि बेष कियो है॥
संग लिये बिधु-बैनी बधू, रतिको जेहि रंचक रूप दियो है।
पाँयन तौ पनहीं न, पयादेहि क्यों चलिहैं? सकुचात हियो है॥१९॥

शब्दार्थ—मैन = कामदेव। कमान = धनुष। बिधु-बैनी = चन्द्रमुखी, सीताजी। रंचक = थोड़ासा। हियो = हृदय।

भावार्थ—साँवरे और गोरे शरीरवालोंने स्वभावतः सुन्दरतामें कामदेवको जीत लिया है। ये धनुष-बाण और तरकस लिये हुए हैं, सिरपर जटा सुशोभित है और मुनियोंका वेष धारण किये हुए हैं। ये अपने साथमें चन्द्रमुखी स्त्रीको लिये हुए हैं जिसने रतिको थोड़ासा रूप दिया है। उनके पैरोंमें जूता नहीं है। मेरा हृदय सकुचा रहा है कि ये पैदल कैसे चलेंगे ?

रानी मैं जानी अजानी महा, पबि पाहन हूँ तें कठोर हियो है।
राजहु काज अकाज न जान्यो, कह्यो तियको जिन कान कियो है॥

ऐसी मनोहर मूरति ये, बिछुरे कैसे प्रीतम लोग जियो हैं।
आँखिनमें सखि! राखिबे जोग, इन्हैं किमि कै वनवास दियो है? ।२०

शब्दार्थ—अजानी = नासमझ। पवि = वज्र। पाहन = पत्थर। रांजहु = राजाने भी।

भावार्थ—हे सखी, मैं समझ गयी कि रानी (कैकेयी) बिलकुल नासमझ है और उसका हृदय वज्र और पत्थरसे भी अधिक कठोर है। राजाने भी भले बुरेका विचार नहीं किया जिन्होंने स्त्रीके कहनेपर ध्यान दिया। ये ऐसी मनोहर मूर्त्तियाँ हैं कि इनके बिछुड़नेपर प्रेमीलोग किस तरह जीवित हैं? ये आँखोंमें रखने योग्य हैं, इन्हें वनवास कैसे दिया है?

सीस जटा उर बाहु विसाल, विलोचन लाल, तिरीछी सी भौंहैं।
तून सरासन बान धरे, तुलसी बन-मारग में सुठि सोहैं॥
सादर बारहिं बार सुभाय चितै तुम त्यों हमरो मन मोहैं।
पूछति ग्राम-बधू सिय सों 'कहो साँवरे-से, सखि रावरे को हैं' ॥२१॥

शब्दार्थ—सुठि = सुन्दर। रावरे = आपके। को = कौन।

भावार्थ—गाँवकी स्त्रियाँ सीताजीसे पूछती हैं कि हे सखी, जिनके सिरपर जटा है, छाती और भुजाएँ विशाल हैं, नेत्र लाल हैं, भौंहें टेढ़ी हैं, जो तरकस, धनुष और बाण धारण किये हुए जंगलके रास्तेमें अत्यन्त सुशोभित हैं, आदर-पूर्वक स्वभावतः बारम्बार देखनेसे हमारा मन मोहित करते हैं—उसी तरह तुम भी (मोहित करनेवाली हो), कहिये तो सही वे साँवले-से (रामजी) आपके कौन हैं?

सुनि सुंदर बैन सुधारस-साने, सयानी हैं जानकी जानी भली।
तिरछे करि नैन, दै सैन तिन्हैं समुझाइ कछू मुसुकाइ चली॥
तुलसी तेहि औसर सोहैं सबै अवलोकत लोचन लाहु अली।
अनुराग-तड़ागमें भानु-उदै बिगसीं मनो मंजुल कंज-कली॥२२॥

शब्दार्थ—सयानी = चतुर। सैन = इशारा। तड़ाग = तालाब। भानु = सूर्य। बिगसीं = खिल गयीं।

भावार्थ—अमृत-रससे सने हुए सुन्दर वचन सुनकर सीताजीने अच्छी तरह समझ लिया कि ये स्त्रियाँ चतुर हैं। इसलिए वह तिरछी निगाहोंसे देखकर उन्हें इशारेसे समझाकर कुछ मुसकुरा पड़ीं। तुलसीदासजी कहते हैं कि उस समय सब सखियाँ उनको देखकर अपने नेत्रोंको सफल करती हुई ऐसी सुशोभित हुईं मानों प्रेम-रूपी तालाबमें (राम रूपी) सूर्यके उदय होनेसे सुन्दर कमलकी कलियाँ खिल उठी हों।

धरि धीर कहैं 'चलु देखिय जाइ जहाँ सजनी रजनी रहि हैं।
कहिहै जग पोच, न सोच कछू, फल लोचन आपन तौ लहिहैं॥
सुख पाइहैं कान सुने बतियाँ, कल आपुसमें कछु पै कहिहैं।'
तुलसी अति प्रेम लगीं पलकैं, पुलकीं लखि राम हिये महि हैं॥२३॥

शब्दार्थ—रजनी = रात। जाइ = चलकर। पोच = नीच, बुरा। कल = सुन्दर। पै = किन्तु। महि = में।

भावार्थ—वे स्त्रियाँ धैर्य धारण करके आपसमें कहती हैं कि हे सखी, चलो, हमलोग वहाँ चलकर देखें, जहाँ ये रातमें रहेंगे। इसके लिए संसार हमें नीच कहेगा, किन्तु कोई चिन्ता

नहीं, ये आँखें तो सफल हो जायँगी। इनकी बातें सुनकर कानोंको सुख मिलेगा; भले ही ये हमलोगोंसे बातें न करें, किन्तु आपसमें तो कुछ कहेंगे ही। तुलसीदासजी कहते हैं कि अत्यन्त प्रेमके कारण उनकी आंखें बन्द हो गयीं और रामजीको अपने हृदयमें समझकर वे पुलकित हो उठीं।

पद कोमल, स्यामल गौर कलेवर, राजत कोटि मनोज लजाए।
कर बान सरासन, सीस जटा, सरसीरुह लोचन सोन सोहाए॥
जिन देखे सखी सतभायहु तें तुलसी तिन तौ मन फेरि न पाये।
यहि मारग आजु किसोर बधू बिधु-बैनी समेत सुभाय सिधाये॥२४॥

शब्दार्थ—सोन (शोण) = लाल। बिधु = चन्द्रमा। बैनी = मुखी।

भावार्थ—(गाँवकी स्त्रियाँ आपसमें कहती हैं) राम लक्ष्मणके पैर कोमल हैं, शरीर (क्रमशः) साँवला और गोरा है; वे करोड़ों कामदेवकी शोभाको लज्जित करनेवाले हैं। उनके हाथमें धनुषबाण, सिरपर जटा और नेत्र लाल कमलके समान सुहावने हैं। तुलसीदास कहते हैं कि हे सखी, जिनलोगोंने स्वभावतः भी उनकी ओर देखा, उन्हें अपना मन वापस नहीं मिला या वे अपने मनको उनकी ओरसे लौटा नहीं सके। आज इस रास्तेसे किशोरावस्थावाले राजकुमार चन्द्रमुखी बहू (सीताजी) के सहित स्वभावतः गये हैं।

मुख पंकज, कंज बिलोचन मंजु, मनोज-सरासन-सी बनी भौंहैं।
कमनीय कलेवर, कोमल, स्यामल गौर-किसोर, जटा सिर सोहैं॥

तुलसी कटि तून, धरे धनु बान, अचानक दीठि परी तिरछौंहैं।
केहि भांति कहौं, सजनी! तोहि सों, मृदु मूरति द्वै निबसीं मनमोहैं।२४।

शब्दार्थ—बिलोचन = नेत्र। कमनीय = सुन्दर। दीठि = दृष्टि। निबसीं = बस गयीं।

भावार्थ—(एक स्त्री अपनी सखीसे कहती है) उनके मुख कमलके समान हैं, और आंखें कमलकी तरह सुन्दर हैं। भौंहें कामदेवके धनुषके समान टेढ़ी हैं। उनका साँवला और गोरा शरीर सुन्दर और कोमल है। वे किशोरावस्थाके हैं। उनके सिरपर जटा शोभा दे रही है। तुलसीदासजी कहते हैं कि उनकी कमरमें तरकस है और वे धनुष-बाण लिये हुए हैं। हे सखी! अचानक उनपर मेरी तिरछी दृष्टि पड़ गयी। उसी समयसे दोनों कोमल मूर्त्तियाँ मेरे मनमें बस गयी हैं। तुमसे क्या कहूँ (कि मेरी क्या दशा है)।

प्रेमसों पीछे तिरीछे प्रियाहि चितै चित दै, चले लै चित चोरे।
स्याम सरीर पसेउ लसै, हुलसै तुलसी छवि सो मन मोरे॥
लोचन लोल चलैं भृकुटी, कल काम-कमानहु सों तृन तोरे।
राजत राम कुरंगके संग, निषंग कसे, धनु सों सर जोरे॥२६॥

शब्दार्थ—पसेउ = पसीना। हुलसै = उल्लास पैदा करती है। लोल = चंचल। कल = सुन्दर। तृन तोरे = निछावर होता है। कुरंग = हरिन।

भावार्थ—रामजी प्रेमपूर्वक पीछेकी ओर तिरछी निगाहोंसे सीताजीको देखकर, उन्हें अपना चित्त देकर और उनका चित्त

(स्वयं) चुराकर चल पड़े। तुलसीदासजी कहते हैं कि उनके साँवले शरीरपर पसीना सुशोभित है। वह शोभा मेरे मनमें आनन्द पैदा करती है। उनके नेत्र और भौंहें चंचल हैं जिन-पर सुन्दर कामदेवका धनुष भी निछावर हो जाता है। रामजी कमरमें तरकस कसे धनुषपर बाण चढ़ाये हरिनके साथ (दौड़ते हुए) सुशोभित हैं।

सर चारिक चारु बनाइ कसे कटि, पानि सरासन सायक लै।
बन खेलत राम फिरैं मृगया, तुलसी छवि सो बरनै किमि कै॥
अवलोकि अलौकिक रूप मृगी मृग चौंकि चकैं चितवैं चित दै।
न डगैं न भगैं जिय जानि सिलीमुख पंच धरे रतिनायक है॥२७॥

शब्दार्थ—चारिक = चार। पानि = हाथ। मृगया = अहेर, शिकार। चकैं = चकित होते हैं। चितवैं = देखते हैं। सिली-मुख = बाण। पंच = पाँच। रतिनायक = कामदेव।

भावार्थ—रामजी चार सुन्दर बाण कमरमें अच्छी तरह-से कसे और हाथमें धनुष-बाण लिये हुए वनमें अहेर खेलते फिरते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि मैं उस छविका वर्णन किस प्रकार करूँ? उनके उस अलौकिक रूपको देखकर हरिन और हरिनी चौंक पड़ती हैं और मन लगाकर उनकी ओर देखने लगती हैं। वे रामजीको पाँच बाण धारण किये हुए देख, कामदेव समझकर न तो विचलित होते हैं और न भागते ही हैं।

बिंध्य के बासी उदासी तपोब्रतधारी महा, बिनु नारि दुखारे।
गौतम-तीय तरी, तुलसी सो कथा सुनिये मुनिबृन्द सुखारे॥

ह्वैहैं सिला सब चन्द्रमुखी परसे पद-मंजुल-कंज विहारे।
कीन्हीं भली, रघुनायकजू करुना करि कानन को पगु धारे ॥२८॥

शब्दार्थ—उदासी = संसारसे उदासीन रहनेवाले। गौतम-तीय = अहल्या। ह्वैहैं = हो जायँगे। चन्द्रमुखी = स्त्री।

भावार्थ—विन्ध्याचल पर्वतके रहनेवाले बड़े बड़े उदासी और तपस्वी विना स्त्रीके बहुत दुखी थे। तुलसीदासजी कहते हैं कि गौतमकी स्त्री अहल्याके तरनेकी बात सुनकर मुनिलोग (जो कि विना स्त्रीके बहुत दुखी थे) सुखी हुए और कहने लगे कि हे रामजी! आपके चरणोंके स्पर्शसे यहांके सब पाषाण-खंड स्त्री बन जायँगे। हे रघुनाथजी, आपने इस वनमें पधारनेकी कृपा करके बहुत ही अच्छा किया।

अरण्यकाण्ड

मत्तगयंद सवैया

पंचवटी वर पर्नकुटी-तर बैठे हैं राम सुभाय सुहाए।
सोहै प्रिया, प्रिय बंधु लसै, तुलसी सब अंग घने छवि छाए॥
देखि मृगा, मृगनैनी कहे प्रिय बैन, ते प्रीतम के मन भाए।
हेम-कुरंग के संग सरासन-सायक लै रघुनायक धाए॥ १॥

शब्दार्थ—वर=श्रेष्ठ, सुन्दर । पर्नकुटी=पत्तोंसे बनी झोपड़ी । हेम-कुरंग=सोनेका हरिण ।

भावार्थ—स्वभावसे ही सुन्दर श्री रामजी सुन्दर पंचवटी रूपी पर्णकुटीके नीचे बैठे हैं । उनके साथ जानकीजी तथा प्यारे भाई लक्ष्मण सुशोभित हैं जिनके अंग अंगमें अगाध सुन्दरता छायी हुई है । हरिणको देखकर सीताजीने कहा (कि इस हरिणको मारिये) । उनका प्रिय वचन श्रीरामजीको जँच गया । फिर क्या था, वह धनुष-बाण लेकर सोनेके मृगके पीछे दौड़ पड़े ।

विशेष

'पंचवटी'—पाँच प्रकारके वृक्ष-विशेषको कहते हैं । लिखा है:—

अश्वत्थ विल्ववृक्षं च वटधात्री अशोककम् ।
वटीपंचकमित्युक्तं स्थापयेत् पंचदिक्षु च ॥
अश्वत्थं स्थापयेत् प्राचि विल्वमुत्तर भागतः ।
वटं पश्चिमभागे तु धात्रीं दक्षिणतस्तथा ॥
अशोकं वहिदिक् स्थाप्यं तपस्यार्थं सुरेश्वरि ।
मध्ये वेदीं चतुर्हस्तां सुन्दरीं सुमनोहरम् ॥



किष्किंधाकांड

मनहरण कवित्त

जब अंगदादिन की मति-गति मंद भई,
पवन के पूत को न कूदिबे को पलु गो।
साहसी ह्वै सैल पर सहसा सकेल आइ,
चितवत चहूँ ओर, औरन को कलु गो॥
तुलसी रसातल को निकसि सलिल आयो,
कोल कलमल्यो अहि कमठ को बलु गो।
चारिहू चरन को चपेट चांपे चिपटि गो,
उचके उचकि चारि अंगुल अचलु गो॥१॥

शब्दार्थ—मति-गति मंद भई=बुद्धि और बलने जबाव दे दिया। पूत=पुत्र। न पलु गो=पलभर भी नहीं लगा। कलु गो=सुख चला गया। कलमल्यो=व्याकुल हुआ। चांपे=दबानेसे। उचकि गो=ऊपर उठ गया।

भावार्थ—जब अंगद इत्यादि वीरोंकी बुद्धि और शक्तिने (समुद्र लाँघनेके लिये) जबाव दे दिया तब हनुमानजीको समुद्रके लाँघनेमें पलभर भी देर नहीं लगी। वह खेलवाड़हीमें साहस पूर्वक एकाएक पर्वतपर चढ़कर चारो ओर देखने लगे। उन्होंने जिन लोगोंकी ओर देखा, उनका विकराल रूप देखकर उन लोगोंका सुख नष्ट हो गया। तुलसीदासजी कहते

हैं कि (पर्वतपर चढ़नेसे पर्वत पृथिवीमें धँस गया जिससे) रसातलका पानी ऊपर निकल आया। वराह व्याकुल हो गये और शेषनाग तथा कच्छपका बल नष्ट हो गया। हनुमानजीके चारो पैरोंके दबावसे पहाड़ चिपटा हो गया और उछलनेसे वह पहाड़ चार अंगुल ऊपरको उठ गया।

सुंदरकाण्ड

कवित्त

बासव बरुन विधि बन तें सुहावनो,
दसाननको कानन बसंत को सिंगारु, सो।
समय पुरानो पात परत, डरत बात,
पालत, लालत रति-मार को बिहारु सो॥
देखे वर वापिका तड़ाग बाग को बनाव,
रागबस भो विरागी पवनकुमारु सो।
सीय की दसा बिलोकि बिटप असोक-तर,
तुलसी बिलोक्यो सो तिलक सोक-सारु सो॥१॥

शब्दार्थ—बासव = इन्द्र। बरुन = जलके देवता। बात = हवा। वापिका = बावली। राग = प्रेम। बिटप = वृक्ष। तर = नीचे।

भावार्थ—इन्द्र, वरुण और ब्रह्माके बनसे भी सुहावना रावणका वन, वसन्तका भी श्रृंगार है (जो वसन्त बनोंका श्रृंगार है)। (पतझड़का) समय आनेपर पुराने पत्तोंको गिरते देख पवनदेव डरते हैं (कि कहीं रावण मुझपर रंज न हो जाय)। वह उसे रति और कामदेवकी विहार-स्थलीके समान उसका लालन-पालन करते हैं। सुन्दर बावली, तालाब और बगीचेकी बनावटको देखकर हनुमान जैसे विरागी भी मुग्ध हो गये। तुलसीदास कहते हैं कि (उस बनमें) अशोक वृक्षके नीचे (बैठी हुई) सीताजीकी (दीन) दशा देखकर हनुमानजीने देखा कि वह तीनों लोकोंके दुःखका घर है।

माली मेघमाल, बनपाल बिकराल भट,
नीके सब काल सींचै सुधासारनीर को।
मेघनाद तें दुलारो प्रान तें पियारो बाग,
अति अनुराग जिय जातुधान धीर को॥
तुलसी सो जानि सुनि, सीय को दरस पाइ,
पैठो बाटिका बजाइ बल रघुबीर को।
विद्यमान देखत दसानन को कानन सो,
तहस-नहस कियो साहसी समीर को॥ २॥

शब्दार्थ—मेघनाद = बादलोंका समूह। सुधासार नीर = अमृतमय जल। जातुधान धीर = रावण। पैठो = घुसा। बजाइ = ललकारकर। साहसी समीरको = हनुमानजी।

भावार्थ—उस बनका माली बादलोंका समूह है जो अमृतमय जलसे उसे हमेशा भली भांति सींचा करता है और भयङ्कर

योद्धा उसके रक्षक हैं। रावणके हृदयमें उस बागके प्रति अत्यन्त अनुराग है; वह उसे मेघनादसे भी दुलारा और प्राणोंसे भी प्यारा है। तुलसीदासजी कहते हैं कि हनुमानजी यह सब जान-सुनकर और जानकीजीका दर्शन पाकर रामजीके बलका डंका बजाते हुए उस बागमें घुस गये। रावणके मौजूद रहते और देखते देखते हनुमानजीने उसके बगीचेको तहस-नहस कर डाला।

वसन बटोरि बोरि बोरि तेल तमीचर,
खोरि खोरि धाइ आइ बाँधत लँगूर हैं।
तैसो कपि कौतुकी डरात ढीलो गात कै-कै,
लात के अघात सहै जी में कहै 'क्रूर हैं' ॥
बाल किलकारी कै-कै तारी दै-दै गारी देत,
पाछे लोग बाजत निसान ढोल तूर हैं।
बालधी बढ़न लागी, ठौर-ठौर दीन्हीं आगि,
बिंध की दवारि, कैधों कोटिसत सूर हैं ॥३॥

शब्दार्थ—बसन = वस्त्र। बटोरि = इकट्ठा करके। तमीचर = राक्षस। खोरि खोरि = गली गली। तूर = तुरही। बालधी = पूँछ। सूर = सूर्य।

भावार्थ—राक्षस गली गलीसे दौड़कर आये और वस्त्र बटोरकर, उसे तेलमें डुबो डुबोकर, ज्यों ज्यों हनुमानजीकी पूँछमें लपेटने लगे त्यों त्यों खेलवाड़ी हनुमानजी अपने शरीरको ढीला कर-करके डरने लगे और पैरोंकी चोट सहने लगे; किन्तु अपने हृदयमें कहने लगे कि ये राक्षस बड़े क्रूर हैं। लड़के ताली बजाकर किलकारी मारते हुए गालियाँ देते हैं और उनके पीछे लोग

नगाड़े, ढोल और तुरही बजाते हैं। (हनुमानजीकी इच्छासे) पूँछ बढ़ने लगी, उसमें जगह जगह आग लगा दी गयी। (उस आगको देखकर) यह नहीं जान पड़ता कि वह विन्ध्याचलकी दावाग्नि है या सौ करोड़ सूर्यकी चमक है।

लाइ-लाइ आगि, भागे बाल-जाल जहाँ तहाँ,
लघु ह्वै निबुकि, गिरि मेरु तें बिसाल भो।
कौतुकी कपीस कूदि कनक-कँगूरा चढ़ि,
रावन-भवन जाइ ठाढ़ो तेहि काल भो॥
तुलसी विराज्यो व्योम वालधी पसारि भारी,
देखे हहरात भट काल तें कराल भो।
तेजको निधान मानों कोटिक कृसानु भानु,
नख विकराल, मुख तैसो रिस-लाल भो॥४॥

शब्दार्थ—लाइ = लगाकर। निबुकि = छूटकर, निकलकर। कनक-कँगूरा = सोनेकी चोटी। व्योम = आकाश। हहरात = हिम्मत हार जाते हैं। निधान = घर। कृसानु = अग्नि। भानु = सूर्य।

भावार्थ—लड़कोंका झुंड (हनुमानजीकी पूँछमें) आग लगाकर इधर उधर भाग गया। हनुमानजी छोटा रूप धारण कर, (बन्धनसे) छूटकर सुमेरु पर्वतके समान विशाल हो गये। कौतुकी हनुमानजी कूदकर सोनेके कँगूरेपर चढ़ गये और वहांसे उसी समय रावणके महलपर जा खड़े हुए। तुलसीदास कहते हैं कि वह अपनी बड़ी पूँछ फैलाकर आकाशमें विराजमान हुए, उस समय वह कालसे भी भयङ्कर हो गये; उन्हें देखकर योद्धा-

गए हिम्मत हार गये। उस समय हनुमानजीका तेज मानो करोड़ों सूर्य और अग्निके समान था। उनके नख बड़े भयङ्कर थे और वैसे ही मुँह भी क्रोधसे लाल हो गया था।

बालधी बिसाल बिकराल ज्वाल-जाल मानौं,
लंक लीलिबे को काल रसना पसारी है।
कैधौं व्योमवीथिका भरे हैं भूरि धूमकेतु,
वीररस वीर तरवारि-सी उघारी है॥
तुलसी सुरेस-चाप, कैधौं दामिनी-कलाप,
कैधौं चली मेरु तें कृसानु-सरि भारी है।
देखे जातुधान जातुधानी अकुलानी कहैं,
कानन उजार्‌यो अब नगर प्रजारी है॥५॥

शब्दार्थ—व्योमवीथिका = आकाशकी गली अर्थात् आकाश-गंगा। भूरि = बहुत। धूमकेतु = पुच्छल तारा। सुरेस-चाप = इन्द्र-धनुष। कलाप = समूह। सरि = नदी। प्रजारी है = प्रकृष्ट रूपसे जलावेगा।

भावार्थ—हनुमानजीकी विशाल पूँछसे निकली हुई भयङ्कर आगकी लपटें ऐसी मालूम होती हैं मानों कालने लंकाको निगलनेके लिए अपनी जिह्वा फैलायी है, अथवा आकाश-गंगामें पुच्छल तारे भरे हुए हैं, अथवा योद्धा वीररसने तलवार निकाली है, अथवा इन्द्र-धनुष है, अथवा बिजलियोंका समूह है, या सुमेरु पर्वतसे आगकी बहुत बड़ी नदी निकली है। तुलसीदासजी कहते हैं कि उसे देखकर राक्षस और राक्षसी घबराकर कहती हैं

कि इस बन्दरने बगीचेको तो बर्बाद ही कर दिया था अब नगर-को भी जलाकर खाक कर देगा।

जहाँ तहाँ बुबुक बिलोकि बुबुकारी देत,
जरत निकेत धाओ धाओ लागि आगि रे।
कहाँ तात, मात, भ्रात, भगिनी, भामिनी, भाभी,
छोटे छोटे छोहरा, अभागे भोरे भागि रे॥
हाथी छोरो, घोरा छोरो, महिष बृषभ छोरो,
छेरी छोरो, सोवै सो जगाओ जागि जागि रे।
तुलसी बिलोकि अकुलानी जातुधानी कहैं,
बार बार कह्यो पिय कपि सों न लागि रे॥६॥

शब्दार्थ—बुबुक = आगकी लपटें। बुबुकारी देत = डाढ़ मारकर रोना, पुक्का फाड़कर रोना। निकेत = घर। छोहरा = लड़का। महिष = भैंसा। बृषभ = बैल। छेरी = बकरी।

भावार्थ—इधर उधर आगकी लपटें देखकर (लंका-वासी) डाढ़ मारकर रोने लगे और चिल्लाकर कहने लगे कि घर जल रहा है, दौड़ो दौड़ो, आग लगी है। माता, पिता, भाई, बहन, स्त्री, भावज और छोटे बच्चे कहाँ हैं, ऐ भोलेभाले लोगो भागो। हाथियोंको छोड़ दो, घोड़ोंको छोड़ दो, भैंसों और बैलोंको छोड़ दो, बकरियोंको छोड़ दो। जो सो गये हों उन्हें जगा दो। जागो रे जागो। तुलसीदास कहते हैं कि यह सब देखकर राक्षसिनियाँ घबरा गयीं और अपने अपने पतिसे कहने लगीं कि हे नाथ मैंने तुमसे बारम्बार कहा कि इस बन्दरसे छेड़छाड़ न करो।

देखि ज्वालजाल, हाहाकार दसकंध सुनि,
कह्यो 'धरो धरो' धाए वीर बलवान हैं।
लिए सूल, सेल, पास, परिघ, प्रचंड दंड,
भाजन सनीर, धीर धरे धनुबान हैं॥
तुलसी समिध सौंज लंक जज्ञकुंड लखि,
जातुधान पुंगीफल, जव तिल धान हैं।
स्रुवा सो लँगूल, बलमूल प्रतिकूल हवि,
स्वाहा महा हांकि-हांकि हुनै हनुमान हैं॥७॥

शब्दार्थ—सूल = त्रिशूल। सेल = बर्छी। पास = फन्दा। परिघ = लोहाँगी। सनीर = जल-सहित। समिध = यज्ञकुंडमें जलानेकी पवित्र लकड़ी। सौंज = सामग्री। पुंगीफल = सुपाड़ी। स्रुवा = घीकी आहुति देनेके लिए काठकी कलछी। प्रतिकूल = विरुद्ध, शत्रु। हवि = हवनकी सामग्री। हुनै = हवन करते हैं।

भावार्थ—आगकी लपटोंको देखकर और हाहाकार सुनकर रावणने कहा,—'पकड़ो पकड़ो'। यह आज्ञा पाकर बलवान योद्धा दौड़ पड़े। कुछ लोग हाथमें त्रिसूल, कुछ लोग बर्छी, कुछ लोग फन्दा, कुछ लोग लोहाँगी, कुछ लोग बड़ा डंडा, कुछ लोग जलसे भरा हुआ बर्त्तन और कुछ योद्धागण धनुषबाण लिये हुए थे। तुलसीदास कहते हैं कि लंका ही मानो यज्ञकुंड है और वहांकी सारी सामग्री ही यज्ञकी लकड़ी है तथा राक्षसगण सुपाड़ी, जव, तिल और धानके समान हैं। हनुमानजीकी पूँछ ही यज्ञकुंडमें हव्य वस्तुओंको छोड़नेके लिए स्रुवा है और बल-

वान शत्रु ही हवि हैं। हनुमानजी जोर जोरसे स्वाहा शब्दका उच्चारण कर इस हविका हवन कर रहे हैं।

गाज्यो कपि गाज ज्यों विराज्यो ज्वाल-जाल-जुत,
भाजे वीर धीर, अकुलाइ उठ्यो रावनो।
'धाओ धाओ धरो' सुनि धाई जातुधान-धारि,
वारिधारा उलदैं जलद ज्यों न सावनो॥
लपट झपट झहराने, हहराने वात,
भहराने भट, पर्‍यो प्रबल परावनो।
ढकनि ढकेलि पेलि सचिव चले लै ठेलि,
'नाथ न चलैगो बल अनल भयावनो'॥८॥

शब्दार्थ—गाज = बिजली। धारि = झुंड। उलदैं = उँड़ेलते हैं, बरसाते हैं। भहराने = गिर गये। परावनो = भगदड़। ढकनि = धक्के। पेलि = जबर्दस्ती। सचिव = मंत्री। अनल = आग।

भावार्थ—जब हनुमानजी आगकी लपटोंके बीचमें विराजमान हुए और बिजलीकी तरह कड़ककर गरजे तो बड़े बड़े धीर योद्धा भाग खड़े हुए और रावण भी घबरा उठा। बोला, 'दौड़ो, दौड़ो, पकड़ो!' यह सुनकर राक्षसोंका समूह दौड़ा और आगपर पानीकी ऐसी धारा गिराने लगा जैसी सावनके बादल भी नहीं उँड़ेलते। आगकी लपटें झपट झपटकर झरझराने लगीं और हवा हरहराने लगी; इससे जोरोंसे भगदड़ मची और बड़े बड़े योद्धा गिर गये। मंत्रीगण धक्कोंसे ढकेलकर जबर्दस्ती रावण-

को वहांसे हटाने लगे और बोले,—हे नाथ, यहाँ बलसे काम नहीं चलेगा, आगने प्रचंड रूप धारण किया है।

बड़ो बिकराल बेष देखि, सुनि सिंहनाद,
उठ्यो मेघनाद, सबिपाद कहै रावनो।
बेग जीत्यो मारुत, प्रताप मारतंड कोटि,
कालऊ करालता बड़ाई जीतो बावनो॥
तुलसी सयाने जातुधान पछिताने मन,
जाको ऐसो दूत सो साहब अबै आवनो।
काहे की कुसल रोषे राम बामदेव हू के,
बिषम बली सों बादि बैर को बढ़ावनो॥ ९॥

शब्दार्थ—मारतंड = सूर्य। बावनो = वामन भगवान। साहब = स्वामी। बामदेव = शिवजी। बादि = व्यर्थ।

भावार्थ—हनुमानजीका अत्यन्त भयङ्कर रूप देखकर तथा सिंहके समान गर्जना सुनकर मेघनाद उठा। रावण दुखी होकर कहने लगा कि इसने (बन्दरने) वेगमें वायुको, प्रतापमें करोड़ों सूर्यको, भयङ्करतामें कालको और बड़ा होनेमें वामन भगवानको भी जीत लिया है। तुलसीदास कहते हैं कि चतुर राक्षस अपने मनमें पछताने लगे और बोले—'जिसका दूत ऐसा है उसका स्वामी अभी आनेवाला है (अर्थात् स्वामीके आनेपर तो न-जानें कौनसी गति होगी)'। रामचन्द्रके क्रुद्ध होनेपर शिवजीकी कुशल कैसी ? अर्थात् रामजीके क्रुद्ध होनेपर शिवजी भी रक्षा न कर सकेंगे। ऐसे भयानक बलवानसे वैरका बढ़ाना व्यर्थ है।

१०

'पानी पानी पानी' सब रानी अकुलानी कहैं,
जाति हैं परानी, गति जानि गज चालि है।
बसन बिसारैं, मनि-भूषन सँभारत न,
आनन सुखाने कहैं 'क्योंहूँ कोऊ पालि है ?'
तुलसी मंदोवै मींजि हाथ, धुनि माथ कहै,
काहू कान कियो न मैं कह्यो केते कालि है।
बापुरो बिभीषन पुकारि बार बार कह्यो,
बानर बड़ो बलाइ घने घर घालि है ॥१०॥

शब्दार्थ—गज = हाथी। गज चालि = गजगामिनी। कान कियो न = ध्यान नहीं दिया। बापुरो = बेचारा। बलाइ = बला, संकट। घने = बहुत। घालि है = नष्ट करेगा।

भावार्थ—रावणकी सब रानियाँ जिनकी चाल हाथीकी चालके समान है—व्याकुल होकर 'पानी, पानी पानी' चिल्लाती हुई भागी जा रही हैं। वे अपने वस्त्रोंकी सुध भूल जाती हैं और रत्न-जटित आभूषणोंको भी सँभालती नहीं हैं। वे सूखे हुए मुखसे कहती हैं—'किसी प्रकार कोई मेरी रक्षा करेगा ?' तुलसीदास कहते हैं कि मन्दोदरी अपना हाथ मींजकर और सिर पीटकर कहती है—मैंने कल कितना कहा परन्तु किसीने भी (मेरी बातपर) ध्यान नहीं दिया। बेचारे विभीषणने भी बार बार पुकारकर कहा कि यह बानर बहुत बड़ी बला है, बहुत-से घरोंको उजाड़ देगा।

'कानन उजार्‌यो तौ उजार्‌यो, न बिगार्‌यो कछू,
बानर बिचारो बांधि आन्यो हठि हार सों।

निपट निडर देखि काहू न लख्यो बिसेखि,
दीन्हों न छुड़ाइ कहि कुल के कुठार सों ॥
छोटे औ बड़ेरे मेरे पूत ऊ अनेरे सब,
साँपनि सों खेलैं, मेलैं गरे छुराधार सों ।'
तुलसी मंदोवै रोइ-रोइ कै बिगोवै आपु,
बार बार कह्यौ मैं पुकार दाढ़ीजार सों ॥११॥

शब्दार्थ—हार = जंगल, बगीचा । निपट = बिलकुल । अनेरे = निकम्मे । मेलैं = डालते हैं, फेरते हैं । बिगोवै = विलाप करती हैं ।

भावार्थ—मन्दोदरी कहती है कि यदि इस बन्दरने अशोक-बाटिकाको उजाड़ दिया था तो उजाड़ दिया था (उजाड़ने देते) किन्तु और कुछ तो नहीं बिगाड़ा था । बेचारे बन्दरको बगीचेसे जबर्दस्ती बाँधकर ले आये । उसको बिलकुल निडर देखकर भी किसीने विशेष ध्यान नहीं दिया और न कुलकलंक मेघनादसे कहकर उसे छुड़ा ही दिया । मेरे छोटे और बड़े सब लड़के निकम्मे हैं । ये सब साँपोंसे खेलते हैं और छुरेकी धारपर अपनी गर्दन फेरते हैं अर्थात् जान बूझकर अपनेको संकटमें डालते हैं । तुलसीदास कहते हैं कि मन्दोदरी अपने आप ही रो-रोकर विलाप करती है और कहती है कि 'मैंने बार बार पुकारकर दाढ़ीजारसे कहा (कि ऐसा न कर; पर उसने मेरी बातपर ध्यान नहीं दिया) ।

रानी अकुलानी सब डाढ़त परानी जाहिं,
सकैं ना बिलोकि बेष केसरी-कुमारको ।

मींजि मींजि हाथ, धुनै माथ दसमाथ-तिय,
तुलसी तिलौ न भयो बाहिर अगार को ॥
सब असबाब डाढ़ो, मैं न काढ़ो, तैं न काढ़ो,
जियकी परी, सँभारै सहन-भँडार को ?
खीझति मंदोवै सविषाद देखि मेघनाद,
बयो लुनियत सब याही दाढ़ीजार को ॥१२॥

शब्दार्थ—डाढ़त = जलती हुई। बिलोकि = देख। अगार (आगार) = घर। सहन-भँडार = बाहरी खजाना। बयो = बोया। लुनियत = काटते हैं।

भावार्थ—सब रानियाँ जलती हुई भागी जा रही हैं, हनुमानजीके भयंकर वेषको देख नहीं सकतीं। तुलसीदास कहते हैं कि रावणकी स्त्रियाँ हाथ मल-मलकर अपना सिर पीटती हैं कि हाय! मकानके भीतरका तिलभर सामान भी बाहर न निकला—सब जल गया। सब असबाब जल गया, न तो मैंने निकाला और न तूने निकाला। सबको अपनी जानके लाले पड़ गये; बाहरी खजानेको कौन सँभालता? मन्दोदरी झल्लाकर दुःखके साथ मेघनादको देखकर कहती है कि यह सब दाढ़ीजार (रावण) का बोया हुआ है जिसको हमलोग काट रहे हैं अर्थात् भोग रहे हैं।

रावनकी रानी जातुधानी बिलखानी कहैं,
'हा हा! कोऊ कहै बीसबाहु दसमाथ सों।
काहे मेघनाद, काहे काहे रे महोदर! तू,
धीरज न देत, लाइ लेत क्यों न हाथ सों ?

काहे अतिकाय, काहे काहे रे अकंपन,
अभागे तिय त्यागे भौंड़े भागे जात साथ सों ?
तुलसी बढ़ाय बादि साल तें बिसाल बाहैं,
याही बल, बालिसो! बिरोध रघुनाथ सों ॥१३॥

शब्दार्थ—बीस बाहु = बीस भुजावाले, अर्थात् जिसे अपने बलका बड़ा घमंड था। दसमाथ = दस सिरवाला, अर्थात् जो अपनेको बड़ा बुद्धिमान लगाता था। महोदर = रावणका लड़का। लाइ लेव क्यों न हाथ सों = अपने हाथका सहारा देकर बचा क्यों नहीं लेते। भौंड़े = मूर्ख। साल = चीड़का पेड़। बालिसो (बालिश) = मूर्ख, गँवार।

भावार्थ—रावणकी रानियाँ बिलखकर कहती हैं कि 'हाय, हाय, कोई बीस भुजावाले और दस सिरवालेसे जाकर कहता (तो बड़ा अच्छा होता) अर्थात् उसके बीस हाथ और दस सिर किस काम आ रहे हैं। क्यों रे मेघनाद, क्यों रे महोदर, तुमलोग धैर्य क्यों नहीं देते, हाथ लगाकर इस विपत्तिसे हम-लोगोंको क्यों नहीं उबार लेते ? क्यों रे अतिकाय, क्यों रे अकम्पन, अरे अभागे मूर्खों तुमलोग स्त्रियोंका साथ छोड़कर भागे क्यों जा रहे हो ? तुलसीदास कहते हैं कि तुमलोगोंने चीड़के पेड़की तरह अपने हाथ व्यर्थ बढ़ा रखे हैं। ऐ मूर्खों, क्या इसी बिरतेपर रामजीसे विरोध किया है ?

हाट, बाट, कोट-ओट, अट्टनि, अगार, पौरि,
खोरि-खोरि दौरि-दौरि दीन्हीं अति आगि है।

आरत पुकारत, सँभारत न कोऊ काहू,
व्याकुल जहाँ सो तहाँ लोग चले भागि रे ॥
बालधी फिरावै बार-बार झहरावै झरै,
बूँदिया सी, लंक पघिलाइ पाग पागि है ।
'तुलसी' बिलोकि अकुलानी जातुधानी कहैं,
'चित्र हू के कपि सों निशाचर न लागि है' ॥१४॥

शब्दार्थ—हाट = बाजार । बाट = रास्ता । कोट = गढ़, किला । ओट = आड़ । अट्टनि = अटारियों, कोठों । पौरि = ड्योढ़ी । झहरावै = झाड़ते हैं ।

भावार्थ—हनुमानजीने बाजार, रास्ते, किलेकी आड़, अटारियों, महलों, ड्योढ़ियों और गली गलीमें दौड़ दौड़कर भयंकर आग लगा दी है । सबलोग आर्त्तनाद करने लगे, कोई किसीको नहीं सँभालता; जो जहाँ था वह वहाँसे व्याकुल होकर भाग चला । हनुमानजी पूँछ घुमाकर झटकारते हैं जिससे बूँदियोंकी तरह चिनगारियाँ झड़ती हैं और सोनेकी लंका पिघलाकर पागमें पागी (चुआयी) जा रही है । तुलसीदास कहते हैं कि यह देखकर राक्षसिनियाँ व्याकुल हो गयीं और कहने लगीं कि बन्दरके चित्रसे भी राक्षसगण कभी न लगेंगे अर्थात् छेड़छाड़ न करेंगे ।

'लागि लागि आगि' भागि भागि चले जहाँ तहाँ,
धीयको न माय, बाप पूत न सँभारहीं ।
छूटे बार, बसन उघारे, धूमधुंध अंध,
कहैं बारे बूढ़े 'बारि बारि' बार-बारहीं ॥

हय हिहिनात भागे जात, घहरात गज,
भारी भीर ठेलि-पेलि रौंदि खौंदि डारहीं।
नाम लै चिलात, बिललात अकुलात अति,
'तात तात! तौंसियत, झौंसियत झारहीं ॥१५॥

शब्दार्थ—धीय = पुत्री। घूम-धुंध-अंध = धुएँके धुंधकारसे अन्धे हो गये। बारे = बालक। बारि = पानी। घहरात = चिग्घाड़ते हैं। रौंदि खौंदि डारहीं = रौंद डालते हैं। तौंसियत = प्यासके मरना। झौंसियत = झुलसना। झार = लपट।

भावार्थ—'आग लगी, आग लगी', कहते हुए सबलोग इधर उधर भाग चले, माता-पिताने अपने पुत्र-पुत्रीको भी नहीं सँभाला। स्त्रियोंके बाल बिखरे हुए हैं और वस्त्र खुल गये हैं, आंखें धुएँके धुन्धकारसे अन्धीसी हो गयी हैं। लड़के और बूढ़े बार बार 'पानी पानी' चिल्लाते हैं। घोड़े हिनहिनाते हुए और हाथी चिग्घारते हुए भागे जा रहे हैं और अपार भीड़को धक्का देते हुए रौंदते जा रहे हैं। सबलोग (अपने स्नेहियोंका) नाम ले लेकर पुकारते हैं और अत्यन्त व्याकुल होकर बिलबिलाते हैं; कहते हैं 'हे तात, हे तात, प्याससे मरे जा रहे हैं और लपटोंसे झुलसे जा रहे हैं।

लपट कराल ज्वालजालमाल दहूँ दिसि,
धूम अकुलाने पहिचानै कौन काहि रे।
पानी को ललात, बिललात, जरे गात जात,
परे पाइमाल जात, 'भ्रात! तू निबाहि रे॥

प्रिया तू पराहि, नाथ नाथ ! तू पराहि, वाप,
वाप! तू पराहि, पूत पूत ! तू पराहि रे ।'
तुलसी विलोकि लोग व्याकुल विहाल कहैं,
लेहि दससीस अव वीस चख चाहि रे ॥१६॥

शब्दार्थ—ज्वालजालामाल = आगकी लपटोंका समूह । दहूँ = दसो । पाइमाल (अरवी) = नष्ट होना । पराहि = भागो । चख = आँख । चाहि = देखो ।

भावार्थ—आगकी भयङ्कर लपटें दसो दिशाओंमें फैल गयीं । धुएँसे सवलोग व्याकुल हो गये । ऐसी दशामें कौन किसको पहचानता है । कोई पानीके लिए व्याकुल है, कोई विलला (चिल्ला) रहा है, किसीका शरीर जला जा रहा है । सवलोग वर्वाद हो रहे हैं और चिल्लाते हैं कि 'भाई मुझे वचाओ । (पति अपनी पत्नीसे कहता है कि) ऐ प्रिये, तू भाग जा । (स्त्री अपने पतिसे कहती है कि) स्वामी, तुम भाग जाओ । इसी प्रकार पुत्र अपने पितासे और पिता अपने पुत्रसे कहता है कि भाग जाओ । तुलसीदासजी कहते हैं कि लोग व्याकुल और वेसुध होकर कहते हैं कि ऐ रावण, अव अपने कियेका फल अपनी वीसों आँखोंसे देख ले ।

वीथिका वजार प्रति, अटनि अगार प्रति,
पँवरि पगार प्रति, वानर विलोकिए ।
अध ऊर्ध्व वानर, विदिसि दिसि वानर है,
मानहु रह्यो है भरि वानर तिलोकिए ॥

मूँदे आंखि हीय में, उघारे आंखि आगे ठाढ़ो,
धाइ जाइ जहाँ तहाँ, और कोऊ को किए ।
लेहु अब लेहु, तब कोऊ न सिखाओ मानो,
सोइ सतराइ जाइ जाहि जाहि रोकिए ॥१७॥

शब्दार्थ—वीथिका = गली । अटनि = अटारी । पँवरि = ड्योढ़ी । पगार (प्राकार) दीवार । अध ऊर्ध्व = नीचे ऊपर । सतराइ = चिढ़ना, बिगड़ना ।

भावार्थ—लंकाकी प्रत्येक गली, प्रत्येक बाजार, प्रत्येक कोठा, प्रत्येक मकान, प्रत्येक द्वार और प्रत्येक दीवारपर वानर ही वानर दिखायी पड़ते हैं। नीचे वन्दर, ऊपर वन्दर और प्रत्येक दिशाओंमें वन्दर हैं, मानो तीनों लोक वानरोंसे ही भर गया है। आंखें मूँदनेपर हृदयमें और खोलनेपर सामने वन्दर खड़ा दिखायी देता है। दौड़कर जहाँ कहीं भी जाते हैं वन्दरके सिवा और कुछ भी दिखायी नहीं देता। राक्षस एक दूसरेसे कहते हैं, लो अब लो, (अपने कियेका फल भोगो) पहले तो किसीने मेरी शिक्षा नहीं मानी, जिसे रोका जाता था वही चिढ़ जाता था।

एक करै धौज, एक कहै काढ़ौ सौंज,
एक औंजि पानी पीकै कहै 'वनत न आवनो'।
एक परे गाढ़े, एक डाढ़त हीं काढ़े एक,
देखत हैं ठाढ़े, कहैं पावक भयावनो ॥
तुलसी कहत एक नीके हाथ लाए कपि,
अजहूँ न छांड़ै वाल गाल को बजावनो ।

धाओ रे, बुझाओ रे कि बावरे हौ रावरे या,
और आगि लागी, न बुझावै सिंधु सावनो ॥१८॥

शब्दार्थ—धौज = दौड़ धूप । सौंज = सामान । औंजि = ऊबकर । गाढ़े = संकटमें । गालको बजावनो = डींग हाँकना, गालका बजाना ।

भावार्थ—कोई दौड़धूप करता है, कोई कहता है कि (घरके भीतरसे) सामान बाहर निकालो, कोई आगकी लपटोंसे ऊबकर पानी पीकर कहता है 'मुझसे आया नहीं जाता'। कोई संकटमें पड़ा है, कोई जलता हुआ निकाला गया है, कोई खड़ा होकर देखता है और कहता है कि आग बड़ी भयंकर है। तुलसीदासजी कहते हैं कि कोई कहता है कि अच्छे हाथसे बन्दरको पकड़ लाये थे ! (किन्तु हत्याकांड हो जानेपर भी) लड़का अब भी डींग मारना नहीं छोड़ता। कोई कहता है, दौड़ो यारो बुझाओ, कोई कहता है कि आप पागल तो नहीं हो गये हैं, यह आग ही कुछ और है। इसे समुद्र और सावनका मेघ भी नहीं बुझा सकते।

कोपि दसकंध तब प्रलय-पयोद बोले,
रावन रजाइ धाइ आए जूथ जोरि कै।
कह्यो लंकपति 'लंक बरत बुताओ बेगि,
बानर बहाइ मारौ महा बारि बोरि कै' ॥
'भले नाथ' ! नाइ माथ चले पाथप्रद-नाथ,
बरषैं मुसलधार बार बार घोरि कै।

जीवन तें जागी आगी, चपरि चौगुनी लागी,
तुलसी भभरि मेघ भागे मुख मोरि कै ॥१९॥

शब्दार्थ—प्रलय-पयोद = प्रलयकालके बादल। रजाइ = आज्ञा। पाथप्रद-नाथ = (पाथ = जल × प्रद = देनेवाले) बादलोंके स्वामी। घोरिकै = गरजकर। चपरि = जल्दीसे। भभरि = डरकर।

भावार्थ—(जब आग बुझानेमें किसी प्रकार भी सफलता नहीं मिली) तब रावणने क्रुद्ध होकर प्रलयकालके बादलोंको बुलया। रावणकी आज्ञा पाते ही वे बादल एकत्र होकर दौड़े आये। रावणने उनसे कहा कि 'जलती हुई लंकापुरीको शीघ्र बुझाओ और बन्दरको अगाध जलमें बहाकर तथा डुबाकर मार डालो। 'बहुत अच्छा स्वामी' कहकर वे बादलोंके स्वामी रावणको प्रणाम करके चले। (फिर क्या था) मेघ बार बार गर्जन करते हुए मूसलधार पानी बरसने लगे। पानी पड़ते ही आग और भी जोर पकड़ गयी और आनन-फानन चौगुनी हो गयी। तुलसीदासजी कहते हैं कि इससे बादल डरकर मुख मोड़कर भाग गये।

इहाँ ज्वाल जरे जात, उहाँ ग्लानि गरे गात,
सूखे सकुचात सब कहत पुकार हैं।
जुग-षट भानु देखे, प्रलय कृसानु देखे,
सेष मुख अनल बिलोके बार बार हैं॥
तुलसी सुन्यो न कान सलिल सर्पी समान,
अति अचरज कियो केसरी-कुमार है।

वारिद बचन सुनि धुनैं सीस सचिवन्ह,
कहैं दससीस-ईस-बामता विकार हैं ॥२०॥

शब्दार्थ—जुग-पट = बारह। सलिल = पानी। सर्पी = घृत। बामता = प्रतिकूलता।

भावार्थ—इधर तो बादल आगकी प्रचंड ज्वालासे जले जा रहे हैं और इधर उनका शरीर ग्लानिसे गला जा रहा है। वे सूख गये हैं और सकुचाते हुए पुकारकर कहते हैं कि हमने (प्रलयके समय) बारहो सूर्य देखे हैं, प्रलयकी आग भी देखी है और शेषनागके मुखकी आगको अनेक बार देखा है; किन्तु तुलसीदास कहते हैं कि पानीको घीके समान काम करते (देखने को कौन कहे) कभी कानसे सुना भी नहीं था। हनुमानजीने बड़ा ही आश्चर्य-जनक काम किया है। बादलकी बातें सुनकर मंत्रीगण निराश होकर सिर पीटने लगे और कहने लगे कि ईश्वर रावणके विरुद्ध हैं, उसीका यह फल है।

पावक, पवन, पानी, भानु हिमवान, जम,
काल, लोकपाल मेरे डर डाँवाडोल हैं।
साहिब महेस सदा, संकित रमेस मोहि,
महातप साहस विरंचि लीन्हें मोल हैं॥
तुलसी तिलोक आजु दूजो न बिराजै राजा,
बाजे-बाजे राजन के बेटा-बेटी ओल हैं।
को है ईस नामको? जो बाम होत मोहू सो को?
मालवान! रावरे के बावरे से बोल हैं ॥२१॥

शब्दार्थ—हिमवान = चन्द्रमा । रमेश = विष्णु । वाजे-वाजे = कोई-कोई । ओल = बन्धक, रेहन ।

भावार्थ—मंत्रीकी बातें सुनकर रावणने कहा, मेरे डरसे अग्नि, पवन, जल, सूर्य, चन्द्रमा, यमराज, काल और सभी लोकपाल काँपते हैं। शिवजी मेरी सदैव रक्षा करते रहते हैं और विष्णु मुझसे डरते हैं, महान तपस्याके बलसे मैंने ब्रह्माको मोल लिया है। तुलसीदास कहते हैं कि आज तीनों लोकमें मेरे समान दूसरा राजा विराजमान नहीं है, बाज-बान राजाओं-के तो लड़के और लड़की मेरे यहाँ बन्धक हैं। 'ईश्वर' नामका ऐसा कौन है जो मुझसे भी प्रतिकूल हो सकता है। ऐ माल्यवान तुम्हारी बातें पागलोंकी-सी हैं।

'भूमि भूमिपाल, व्याल-पालक पताल, नाकपाल,
लोकपाल जेते सुभट समाज हैं ।
कहै मालवान, जातुधानपति रावरे को
मनहूँ अकाज आनै ऐसो कौन आज है ?
राम-कोह पावक, समीर सीय साँस कीस,
ईस-बामता, बिलोकु, बानर को ब्याज है ।
जारत प्रचारि फेरि-फेरि सो निसंक लंक,
जहाँ बाँको बीर तो सो सूर सिरताज है ।।२२।।

शब्दार्थ—व्याल-पालक = शेषनाग । नाकपाल = स्वर्गका पालन करनेवाले, इन्द्र । अकाज = अनभल । व्याज = बहाना । तो सो = तेरे समान ।

भावार्थ—माल्यवानने कहा, हे रावण, पृथिवीके राजा,

पातालके शेषनाग, स्वर्गके रक्षक इन्द्र तथा लोकपाल आदि जितने योद्धागण हैं, उनमें आज ऐसा कौन है जो मनमें भी आपका अनभल सोच सके? किन्तु यह रामजीकी क्रोधरूपी आग है जिसे सीताजीके विरहकी श्वासरूपी वायु अधिक प्रचंड बना रही है। ईश्वरकी प्रतिकूलताको देखिये, वन्दरका तो केवल वहानामात्र है। अर्थात् यह वन्दर ईश्वरका कोप रूप है। इसीसे आप जैसे वीर-शिरोमणिके रहते हुए भी यह वन्दर निर्भीक होकर लंकाको ललकारकर बारम्बार जला रहा है।

पान, पकवान बिधि नाना को, सँधानो, सीधो,
बिविध बिधान धान वरत बखारहीं।
कनक-किरीट कोटि, पलँग, पेटारे, पीठ,
काढ़त कहार, सब जरे भरे भारहीं॥
प्रबल अनल बाढ़ै, जहाँ काढ़ै तहाँ डाढ़ै,
झपट लपट भरे भवन भँडारहीं।
तुलसी अगार न पगार न बजार बच्यो,
हाथी हथिसार जरे, घोरे घोरसारहीं॥२३॥

शब्दार्थ—सँधानो = अचार-चटनी। सीधो = सीधा, आँटा, चावल, दाल आदि। धान (धान्य) = अनाज। बखार = अन्न रखनेका कोठिला। कनक = सोना। किरीट = मुकुट। पीठ = पीढ़ा।

भावार्थ—(अग्निकांडमें) पेय पदार्थ, अनेक प्रकारके पकवान, चटनी अचार, सीधा सामान तथा अनेक तरहके अन्न कोठिलेमें ही जल रहे हैं। सोनेके करोड़ों मुकुट, पलँग, पिटारियाँ

और पीढ़ोंको जलते हुएही कहार निकाल रहे हैं। आग जोरोंसे बढ़ रही है, जहाँपर चीजोंको निकालकर रखा जाता है, वहीं उन्हें आग भस्म कर डालती है। आगकी लपटें झपटकर घर और भंडारमें भर रही हैं। तुलसीदास कहते हैं कि लंकाकी अट्टालिकाएँ, चहारदीवारियाँ और बाजार कुछ भी आगसे नहीं बचा। हाथी हथिसारमें और घोड़े घुड़सारमें ही जल गये।

हाट-बाट हाटक पिघिल चलो घी-सो घनो,
कनक-कराही लंक तलफति ताय सों।
नाना पकवान जातुधान बलवान सब,
पागि-पागि ढेरी कीन्हीं भलो भांति भाय सों॥
पाहुने कृसानु पवमान सो परोसो,
हनुमान सनमानि कै जेंवाए चित चाय सों।
तुलसी निहारि आनि-नारि दै-दै गारि कहैं,
बावरें सुरारि बैर कीन्हों राम राय सों॥२४॥

शब्दार्थ—हाटक = सोना। तलफति = छटपटा रही है, तप रही है। पवमान = आँधी, वायु। चाय = चाव, उत्साह।

भावार्थ—बाजारकी सड़कोंपर सोना पिघलकर घीकी तरह बह चला। लंका मानो सोनेकी कड़ाही है जो आगकी गर्मीसे तप रही है। सब बलवान राक्षस नाना प्रकारके पकवान हैं। उन्हें बड़े प्रेमसे पाग-पागकर (हनुमानजीने) ढेर लगा दी है। अग्नि मेहमान है और वायु परोसनेवाला है। हनुमानजी उत्साहित चित्तसे सम्मानपूर्वक भोजन कराते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि यह देखकर शत्रुओंकी स्त्रियाँ गालियाँ दे-देकर कहती हैं कि

पागल रावणने (और किसीने नहीं) रामचन्द्रजीसे वैर किया। (उसीका यह फल है)।

रावन सो राजरोग बाढ़त बिराट-उर,
दिन दिन बिकल सकल सुख-राँक सो।
नाना उपचार करि हारे सुर सिद्ध मुनि,
होत न बिसोक, ओत पावै न मनाक सो॥
रामकी रजाय तें रसायनी समीर-सूनु,
उतरि पयोधि पार सोधि सरवाक सो।
जातुधान-बुट, पुटपाक लंक जातरूप,
रतन जतन जारि कियो है मृगांक सो॥२५॥

शब्दार्थ—राजरोग = क्षयरोग, राजयक्ष्मा। सुख-राँक = सुखसे रंक (दरिद्र)। बिसोक = शोक-रहित। ओत = चैन। मनाक = थोड़ा। समीर-सूनु = पवन-पुत्र, हनुमानजी। सोधि = शोधन करके। सरवाक = कसोरा, कुल्हड़। बुट = बूटी। पुट-पाक = दवाओंका तैयार किया हुआ गोला जो आगमें रखकर फूँका जाता है। जातरूप = सोना। मृगांक = सोनेकी भस्म।

भावार्थ—विराट् पुरुषके हृदयमें रावण रूपी क्षयरोग बढ़ने लगा जिससे वह सब सुखोंसे रहित होकर उत्तरोत्तर व्याकुल रहने लगा। देवता, सिद्ध और मुनि अनेक प्रकारके उपाय करके हार गये परन्तु उसका कष्ट दूर नहीं होता, उसे थोड़ासा भी आराम नहीं मिलता। रामजीकी आज्ञा पाकर रस-वैद्य हनुमान-जीने समुद्र पार पहुँचकर दवा फूँकनेके पात्रको शुद्ध करके राक्षस

रूपी बूटियोंके रससे लंकाके सोने और रत्नोंका पुटपाक बनाकर और उसे यत्न-पूर्वक जलाकर मृगांक बना डाला।

जारि बारि कै विधूम, वारिधि बुताइ लूम,
नाइ माथो पगनि भो ठाढ़ो कर जोरि कै।
'मातु! कृपा कीजै, सहदानि दीजै' सुनि सीय,
दीन्हीं है असीस चारु चूड़ामनि छोरि कै॥
'कहा कहौं तात! देखे जात ज्यों बिहात दिन,
बड़ी अवलंब ही सो चले तुम तोरि कै'।
तुलसी सनीर नैन, नेह सों सिथिल बैन,
बिकल बिलोकि कपि कहत निहोरि कै॥२६॥

शब्दार्थ—विधूम = धुएँसे रहित, भस्म। लूम = पूँछ। सहदानि = चिह्न। बिहात = बीतते हैं।

भावार्थ—हनुमानजीने लंकाको जलाकर भस्म कर दिया और समुद्रमें अपनी पूँछ बुझाकर।सीताजीके पैरोंपर सिर झुकाकर हाथ जोड़कर खड़े हो गये। बोले, हे माता, कृपाकर मुझे कोई चिह्न दीजिये (जिसे देखकर रामजीको यह विश्वास हो जाय कि मैं आपतक पहुँच सका था)। यह सुनकर सीताजीने अपनी सुन्दर चूड़ामणि उतारकर आशीर्वादके सहित दी। कहा, हे तात, जिस तरह मेरे दिन बीत रहे हैं उसे तुम देखकर जा रहे हो, मैं तुमसे क्या कहूँ। तुम मेरे लिए सहारा थे, सो तुम भी उसे तोड़कर जा रहे हो। तुलसीदासजी कहते हैं कि यह कहते कहते सीताजीके नेत्र सजल हो गये और स्नेहके कारण

गला रुँध गया—बोलनेकी शक्ति नहीं रह गयी। सीताजीको विकल देखकर हनुमानजी निहोरा करके बोले।

दिवस छ सात जात जानिबे न, मातु धरु
धीर, अरि अंत की अवधि रही थोरिकै।
बारिधि बँधाय सेतु ऐहैं भानुकुल-केतु,
सानुज कुसल कपि-कटक बटोरिकै॥
बचन विनीत कहि सीता को प्रबोध करि,
तुलसी त्रिकूट चढ़ि कहत डफोरिकै।
'जै जै जानकीस दससीस-करि-केसरी'
कपीस कूद्यो, बातघात बारिधि हलोरिकै॥२७॥

शब्दार्थ—थोरिकै=थोड़ी ही। कटक=सेना। प्रबोध करि=सान्त्वना देकर। डफोरिकै=ललकारकर। करि=हाथी केसरी=सिंह। बातघात=हवाके आघातसे। हलोरिकै= लहरें उठाकर।

भावार्थ—हे माता! छ सात दिनोंका बीतना आपको कुछ भी मालूम न होगा। आप धैर्य धारण कीजिये, शत्रु रावणकी मृत्युकी मीयाद थोड़ी रह गयी है। रामचन्द्रजी समुद्रपर पुल बँधाकर कुशल बन्दरोंकी सेना बटोरकर छोटे भाई सहित आवेंगे। तुलसीदास कहते हैं कि इस प्रकार नम्रतापूर्ण बातें कहकर सीताजीको सान्त्वना देकर हनुमानजी त्रिकूट पर्वतपर चढ़कर ऊँचे स्वरमें कहने लगे कि 'रावणरूपी हाथीको मारनेके लिए सिंहके समान रामजीकी जय हो, जय हो। यह कहकर हनुमानजी अपने वेगकी हवासे समुद्रमें लहरें उठाकर कूदे।

साहसी समीर-सूनु नीरनिधि लांघि, लखि
लंक सिद्धिपीठि निसि जागो है मसान सो।
तुलसी बिलोकि महासाहस प्रसन्न भई,
देवी सिय सारिषी, दियो है वरदान सो ॥
वाटिका उजारि, अच्छ-धारि मारि, जारि गढ़,
भानुकुल-भानु को प्रताप-भानु भानु सो।
करत बिसोक लोक कोकनद, कोक-कपि,
कहै जामवंत आयो-आयो हनुमान सो ॥२८॥

शब्दार्थ—सिद्धिपीठि = मंत्र सिद्ध करनेका स्थान। निसि = रात। सारिषी = समान। अच्छ-धारि = रावणके पुत्र अक्षय-कुमारकी सेना। कोकनद = कमल। कोक = चक्रवाक, चकवा-चकई।

भावार्थ—साहसी हनुमानने समुद्रको पारकर लंकाको सिद्धिपीठ समझकर रातमें श्मशान जगाया। तुलसीदास कहते हैं कि हनुमानजीका महान साहस देखकर सीताके समान देवी प्रसन्न हुई और उन्हें वरदान दिया। उस वरदानके प्रभावसे हनुमानजीने रावणकी अशोकवाटिकाको उजाड़कर सेना-सहित अक्षयकुमारको मारकर और लंकागढ़को जला दिया। ऐसे हनुमानको आते देखकर जामवन्त बोले कि सूर्यवंशके सूर्य श्रीरामजीके प्रतापरूपी सूर्यके सूर्य हनुमान मनुष्यरूपी कमल और चकवा-चकई रूपी बन्दरोंको शोक-रहित करते हुए अर्थात् प्रसन्न करते हुए आ रहे हैं।

गगन निहारि, किलकारी भारी सुनि,
हनुमान पहिचानि भए सानँद सचेत हैं।

बूड़त जहाज बच्यो पथिक समाज, मानो,
आजु जाए जानि सब अंकमाल देत हैं ॥
'जै जै जानकीस, जै जै लखन कपीस' कहि,
कूदैं कपि कौतुकी, नचत रेत-रेत हैं।
अंगद, मयंद, नल, नील, बलसील महा,
बालधी फिरावैं मुख नाना गति लेत हैं ॥२९॥

शब्दार्थ—जाए जानि = जन्मा हुआ समझकर। अंकमाल = गलेसे लगाकर मिलना। रेत = बालू।

भावार्थ—बानर और रीछ भारी किलकारी सुनकर आकाशकी ओर देखकर तथा हनुमानजीको पहचानकर इस प्रकार आनन्दके साथ सचेत हो गये मानो डूबते हुए जहाजसे बचे हुए यात्रीगण। वे अपना नव-जन्म हुआ समझकर आपसमें एक दूसरेके गलेसे मिलने लगे। विनोद-प्रिय बन्दर 'रामकी जय हो' 'लक्ष्मणकी जय हो' 'सुग्रीवकी जय हो' कहकर बालूके कण-कणपर नाचने लगे। अत्यन्त बलवान अंगद, मयन्द, नल, नील आदि अपनी अपनी पूँछें घुमाने लगे और नाना प्रकारसे मुँह बनाने लगे।

आयो हनुमान प्रान-हेतु अंकमाल देत,
लेत पगधूरि, एक चूमत लँगूल हैं।
एक बूझैं बार बार सीय-समाचार कहे,
पवनकुमार, भो विगत स्रमसूल हैं।
एक भूखे जानि आगे आने कंद मूल फल,
एक पूजे बाहुबल तोरि मूल फूल हैं।

एक कहैं तुलसी सकल सिधि ताके जाके,
कृपा-पाथनाथ सीतानाथ सानुकूल हैं ॥३०॥

शब्दार्थ—विगत स्रमसूल = थकावटसे रहित। कृपा-पाथ-नाथ = कृपाके समुद्र।

भावार्थ—सब बन्दरोंके प्राण बचानेके लिए हनुमानजी आये हैं, (ऐसा समझकर) कोई उन्हें गलेसे लगाता है, कोई उनके पैरोंकी धूल अपने मस्तकमें लगाता है और कोई उनकी पूँछ चूमता है। कोई बार बार सीताजीका समाचार पूछता है। सीताजीका समाचार कहनेमें हनुमानजी अपनी थकावटके कष्टको भूल गये। हनुमानजीको भूखा जानकर कोई उनके सामने कन्द, मूल फल ले आया और कोई मूल-फल तोड़कर उनकी भुजाओंकी पूजा करने लगा। तुलसीदास कहते हैं कि कोई कहने लगा, कृपासागर सीतानाथ श्रीरामजी जिसके अनुकूल रहते हैं उसके लिए सब सिद्धियाँ सुलभ हैं।

विशेष

'प्रान-हेतु—यदि हनुमानजी लंकासे सीताजीका समाचार न लाते तो सुग्रीव सब बन्दरोंको मार डालता। इसीसे हनुमान-जीको 'प्रान-हेतु' कहा है।

'पूजे बाहुबल'—वीर पुरुषकी भुजाओंकी पूजा करके उसके प्रति सम्मान प्रकट किया जाता है।

सीय को सनेह सील, कथा तथा लंक की,
चले कहत चाप सों, सिरानो पथ छन में।

कह्यो जुवराज बोलि बानर-समाज, 'आजु
खाहु फल' सुनि पेलि पैठे मधुबन में ॥
मारे बागवान, ते पुकारत देवान गे,
'उजारे बाग अंगद' दिखाए घाय तन में ।
कहैं कपिराज 'करि काज आये कीस,
तुलसीस की सपथ महामोद मेरे मन में ॥२१॥

शब्दार्थ—सिरानो = समाप्त हो गया। पेलि = जबर्दस्ती। मधुबन = सुग्रीवके बनका नाम है। देवान = कचहरी।

भावार्थ—हनुमानजी सीताजीका प्रेम, स्नेह, शील तथा लंकाकी कथा बड़े प्रेमसे कहते हुए चले जिससे थोड़ी ही देरमें रास्ता समाप्त हो गया। अंगदने बन्दरोंको बुलाकर कहा कि आज तुमलोग (इच्छानुसार) फल खाओ। यह सुनकर सब बन्दर जबर्दस्ती मधुबनमें घुस गये। उन बन्दरोंने बागवानोंको मारा। वे शोर मचाते हुए सुग्रीवकी कचहरीमें गये और अपने शरीरकी चोट दिखाकर कहने लगे कि अंगदने बगीचेको उजाड़ दिया। सुग्रीवने कहा कि बन्दरलोग श्रीरामजीका काम करके आये हैं। इससे रामचन्द्रजीकी सौगन्ध, मेरे मनमें बड़ी प्रसन्नता हो रही है।

नगर कुबेरको सुमेरु की बराबरी,
बिरंचि बुद्धिको बिलास लंक निरमान भो।
ईसहिं चढ़ाय सीस बीसबाहु बीर तहाँ,
रावन सो राजा रजतेज को निधान भो॥

तुलसी त्रिलोक की समृद्धि सौज संपदा,
सकेलि चाकि राखी रासि, जाँगर जहान भो।
तीसरे उपास वनवास सिंधु पास सो
समाज महराज जू को एक दिन दान भो ॥३२॥

शब्दार्थ—ईसहिं = शिवजीको। रजतेज = रजोगुणका प्रताप। सौज = सामग्री। सकेलि = जुटाकर। चाकि राखी = निशान लगाकर रख दिया। जाँगर = उजाड़। जहान = दुनिया।

भावार्थ—सुमेरु पर्वतकी समानता करनेवाली कुबेरकी नगरी लंकापुरीका निर्माण ब्रह्माकी चमत्कारिणी बुद्धिसे हुआ था। उसका स्वामी रजोगुणके प्रतापका घर बीस भुजाओंवाला रावण शिवजीको अपने सिर चढ़ाकर (उनके वरदानसे अजित हो कुबेरको भगाकर) हुआ था। तुलसीदास कहते हैं कि उसने तीनों लोकोंकी समृद्धि एवं सम्पत्ति एकत्रकर लंकामें चाक दी थी, इससे सारा संसार उजाड़ हो गया था। किन्तु वह लंकापुरी महाराज रामचन्द्रजीके लिए वनवासके समय समुद्रके किनारे तीन दिन उपवास करनेके बाद एक दिनके दानकी सामग्री हुई अर्थात् इतनी बड़ी सम्पत्तिकी ओर रामजी कुछ भी आकर्षित नहीं हुए और विभीषणको देकर अपनी महान उदारताका परिचय दिया।

विशेष

१—'नगर कुबेर को'—लंकापुरी पहले कुबेरकी थी। रावणने कुबेरको भगाकर उस पुरीको अपने अधिकारमें किया था।

२—'ईसहिं चढ़ाय सीस'—शिवजीको प्रसन्न करनेके लिए

रावण अपना सिर काट-काटकर चढ़ाने लगा। जब वह नौ सिर काटकर चढ़ा चुका और दसवाँ सिर काटने चला, तब शिवजीने प्रसन्न होकर उसे रोक दिया और उसके कटे हुए मुंडोंको जोड़कर वरदान दिया।

३—'चाकि राखी'—चाक लगाना उसे कहते हैं जिसमेंसे जरासी भी चीज निकाली न जा सके और निकालनेपर प्रकट हो जाय। जैसे किसानलोग अन्नकी राशिको गोबरकी रेखासे घेर देते हैं (जिससे चोरीका पता लग जाय) और उस राशिमेंसे एक अन्न भी नहीं उठाते। बस इसको चाक लगाना कहते हैं।

लंकाकाण्ड

मनहरण कवित्त

बड़े विकराल भालु, वानर विसाल बड़े,
तुलसी बड़े पहार लै पयोधि तोपि हैं।
प्रबल प्रचंड बरिबंड बाहुदंड खंडि,
मंडि मेदिनी को मंडलीक-लीक लोपि हैं॥
लंक-दाहु देखे न उछाहु रह्यो काहुन को,
कहैं सब सचिव पुकारि पाँव रोपि हैं।
बाँचिहै न पाछे त्रिपुरारि हू मुरारि हू के,
को है रन रारि को जौं कोसलेस कोपि हैं॥१॥

शब्दार्थ—तोपि हैं = पाट देंगे, भर देंगे, ढँक देंगे। खंडि = टुकड़े करके। मंडि = सुशोभित करके। मेदिनी = पृथिवी। मंडलीक = राजा (रावण)। लीक = मर्यादा। लोपि हैं = लोप कर देंगे, मिटा देंगे। रारि = झगड़ा।

भावार्थ—लंका-दहन देखकर किसीमें भी उत्साह नहीं रह गया। सब मंत्री विश्वासपूर्वक कहने लगे कि बड़े बड़े भयङ्कर भालू और विशालकाय बड़े बड़े बन्दर बड़े बड़े पहाड़ोंद्वारा समुद्रको पाट देंगे। राक्षसोंको प्रतापी और बली भुजाओंको टुकड़े टुकड़े करके पृथिवीभरमें फैला देंगे और विश्वविजयी रावणकी मर्यादाको नष्ट कर देंगे। पीछे (रामजीके क्रुद्ध होने-पर) शिव या विष्णुके प्रयत्न करनेपर भी रक्षा न हो सकेगी। जब रामजी क्रोध करेंगे तो ऐसा कौन है जो उनसे युद्ध-क्षेत्रमें झगड़ा मोल लेगा ?

त्रिजटा कहत बार बार तुलसीस्वरी सों,
'राघौ बान एक ही समुद्र सातौ सोपि हैं।
सकुल सँघारि जातुधान-धारि, जंबुकादि,
जोगिनी-जमाति कालिका-कलाप तोपि हैं॥
राज दै नेवाजि हैं बजाइ कै बिभीषनै,
बजैंगे ब्योम बाजने बिबुध प्रेम पोपि हैं।
कौन दसकंध, कौन मेघनाद बापुरो,
को कुंभकर्न कीट जब राम रन रोपि हैं' ॥२॥

शब्दार्थ—तुलसीस्वरी = तुलसीको स्वामिनी सीताजी। धारि = सेना। जंबुकादि = सियार वगैरह। जमाति = समूह।

कलाप = समूह । नेवाजिहैं = रक्षा करेंगे । व्योम = आकाश । विबुध = देवता । पोषिहैं = पोषण करेंगे ।

भावार्थ—त्रिजटा (राक्षसी) सीताजीसे बार बार कहती है कि रामजी एक ही बाणसे सातो समुद्रोंको सुखा देंगे और परिवार-सहित राक्षसोंकी सेनाको मारकर सियारों, योगिनियों और कालिकाके समूहको तृप्त करेंगे । उसके बाद डंका बजाकर विभीषणको लंकाका राज्य देकर उसकी रक्षा करेंगे । (इससे) आकाशमें बाजे बजेंगे और देवतागण (रामजीके प्रति) प्रेमका पोषण करेंगे अर्थात् रामजीके प्रति उनका प्रेम और भी पुष्ट हो जायगा । जब रामजी युद्धक्षेत्रमें क्रोध करेंगे तो रावण, बेचारे मेघनाद और कीड़ेके समान कुम्भकर्णकी हिम्मत नहीं कि उनके सामने युद्ध करनेके निमित्त खड़े हो सकें अर्थात् रावण-सहित राक्षसी सेनाके बड़े बड़े योद्धा भाग खड़े होंगे ।

विनय सनेह सों कहति सीय त्रिजटा सों,
'पाए कछु समाचार आरज-सुवन के ?'
'पाए जू ! बँधायो सेतु, उतरे कटक कुलि,
आए देखि देखि दूत दारुन दुवन के ॥
बदन-मलीन बलहीन दीन देखि मानों,
मिटे घटे तमीचर-तिमिर भुवन के ।
लोक-पति-कोक-सोक, मूँदे कपि-कोकनद,
दंड द्वै रहे हैं रघु-आदित उवन के' ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—आरज सुवन (आर्य सूनु) = आर्य पुत्र अर्थात् रामचन्द्र (प्राचीनकालमें स्त्रियाँ अपने ससुरको आर्य और

पतिको आर्यपुत्र कहती थीं । कटक = सेना । कुलि = सब । दारुन = कठिन । दुवन = शत्रु । कोक = चकवा । कोकनद = कमल । उवन = उदय होनेको ।

भावार्थ—सीताजी नम्रता और स्नेहके साथ त्रिजटासे कहती हैं कि 'क्या तुम्हें आर्यपुत्र (रामजी) का कुछ समाचार मिला है ?' (त्रिजटा उत्तर देती है) हाँ, मिला है । उन्होंने (समुद्र पर) पुल बँधाया है और वह अपनी सेनाके सहित समुद्रके इस पार आ गये हैं जिनको भयंकर शत्रु (रावण) के दूत देख देखकर आये हैं । उनको देखकर राक्षसोंका मुँह मलिन हो गया है, बल नष्ट हो गया है और वे दीन हो गये हैं । ऐसा जान पड़ता है मानों संसारसे राक्षसरूपी अन्धकार मिटा जा रहा है । अभी लोकपालरूपी चकवा-चकईका शोक और बन्दररूपी कमल मूँदे हुए हैं । अब रामचन्द्र रूपी सूर्यके उदय होनेमें दो ही दंड अर्थात् कुछ ही देर बाकी है (अर्थात् रामजीके बल दिखलानेपर लोकपालरूपी चक्रवाक प्रसन्न हो जायँगे और वानररूपी कमल खिल उठेंगे) ।

झूलना छन्द

सुभुज मारीच खर त्रिसिर दूषन बालि,
दलत जेहि दूसरो सर न साँध्यो ।
आनि परबाम बिधिबाम तेहि राम सों,
सकल संग्राम दसकंध काँध्यो ॥
समुझि तुलसीस कपि-कर्म घर-घर घैरु,
बिकल सुनि सकल पाथोधि बाँध्यो ।

बसत गढ़ लंक लंकेस-नायक अछत,
लंक नहिं खात कोउ भात राँध्यो ॥४॥

शब्दार्थ—सुभुज = ताड़काका पुत्र सुबाहु। आनि = लाकर। परबाम = दूसरेकी स्त्री। काँध्यो = स्वीकार किया। घैरु = चर्चा, बदनामी। राँध्यो = पकाया हुआ।

भावार्थ—जिन्होंने सुबाहु, मारीच, खरदूषण, त्रिशिर और बालिको मारनेके लिए दूसरा बाण नहीं चढ़ाया—एक ही बाणमें मार डाला, उन्हीं रामचन्द्रजीसे यह रावण परायी स्त्रीको लाकर युद्ध ठान रहा है। (इसमें रावणका दोष नहीं) विधाता ही उसके प्रतिकूल हैं। क्या वह उनसे युद्ध कर सकता है? श्री रामजी और हनुमानजीके कामोंका स्मरण कर घर-घरमें चर्चा हो रही है। रामजीने समुद्रपर पुल बाँधा है, यह सुनकर लंका-निवासी व्याकुल हो रहे हैं। लङ्का-सरीखे दृढ़ किलेमें रहते हुए और रावण-सरीखे (बलवान) स्वामीके मौजूद रहते लङ्कामें डरके मारे कोई पकाया चावल भी नहीं खाता।

सवैया

बिस्वजयी भृगुनायक से बिनु हाथ भये हनि हाथ-हजारी।
बातुल मातुल की न सुनी सिख, का तुलसी कपि लङ्क न जारी?
अजहूँ तौ भलो रघुनाथ मिले, फिरि बूझिहै को गज कौन गजारी।
कीर्त्ति बड़ो, करतूति बड़ो, जन बात बड़ो, सो बड़ोई बजारी ॥५॥

शब्दार्थ—बिनु हाथ भये = हार गये। मातुल = मामा (मारीच)। गजारी = सिंह। बजारी = सचको झूठ और झूठको सच कहनेवाला, अप्रामाणिक।

भावार्थ—सहस्रबाहुको मारकर संसारको जीतनेवाले परशुराम सरीखे वीर भी रामजीके सामने हार मान गये। परन्तु पागल (रावण) ने अपने मामा मारीचकी बात नहीं मानी (जिसका फल यह हुआ कि) क्या हनुमानजीने लङ्काको नहीं जला दिया ? अब भी अच्छा है यदि यह रावण श्रीरामचन्द्रसे जाकर मिले। नहीं तो पीछे (रावणको) मालूम हो जायगा कि कौन हाथी है और कौन सिंह। यह यशमें बड़ा है, इसकी करतूतें बड़ी हैं और लोगोंमें धाक भी जबर्दस्त है, किन्तु है यह बड़ा ही लफंगा अर्थात् इसकी कोई भी बात विश्वास करने योग्य नहीं।

जब पाहन भे बन-बाहन से, उतरे बनरा 'जय राम' रढ़े।
तुलसी लिए सैल-सिला सब सोहत, सागर ज्यों बलवारि बढ़े॥
करि कोप करैं रघुवीरको आयसु, कौतुक ही गढ़ कूदि चढ़े।
चतुरंग चमू पलमें दलिकै रन रावन राढ़ के हाड़ गढ़े॥६॥

शब्दार्थ—बन-बाहन = जलकी सवारी, नाव। रढ़े = बोले, कहा। बल = सेना। चतुरंग चमू = चार अंगोंवाली सेना (सेनाके चार अंग ये हैं:—हाथी, घोड़े, रथ, पैदल)। राढ़ = दुष्ट, जड़।

भावार्थ—जब पत्थर नावके समान समुद्रपर तैरने लगे तो वन्दरोंने उनके द्वारा समुद्र पार किया और रामकी जयजयकार की। तुलसीदास कहते हैं कि सब वन्दर पर्वतके टुकड़े लिए हुए सुशोभित हैं और वे बलसे ऐसे भरे हुए हैं जैसे अगाध जलसे समुद्र। वे रामजीकी आज्ञाका पालन करते हैं, इसलिए उनकी

आज्ञा पाते ही वे खेलमें ही लंकाके गढ़पर चढ़े और चतुरंगिणी सेनाको पलभरमें नष्ट करके युद्धमें दुष्ट रावणकी हड्डी पसली गढ़ डाली—अर्थात् उसको खूब पीटा।

कवित्त

विपुल विसाल विकराल कपि-भालु मानौ,
काल बहु बेष धरे धाए किए करषा।
लिए सिला-सैल, साल ताल औ तमाल तोरि,
तोपैं तोयनिधि, सुरको समाज हरषा॥
डगे दिगकुंजर, कमठ कोल कलमले,
डोले धराधर-धरि, धराधर धरषा।
तुलसी तमकि चलैं, राघौ की सपथ करैं,
को करै अटक कपि-कटक अमरषा? ॥ ७॥

शब्दार्थ—करषा = क्रोध। तोयनिधि = समुद्र। कमठ = कच्छप। कोल = वाराह, सूकर। कलमले = व्याकुल हुए। धराधर = पहाड़। धारि = समूह। धराधर = शेषनाग। धरषा = दब गये। अटक = रोक टोक। अमरषा = क्रोधित हुआ।

भावार्थ—बहुत बड़े और भयङ्कर बन्दर और भालु इस प्रकार दौड़ रहे हैं मानों काल अनेक वेष धारण करके क्रोधित होकर दौड़ रहा हो। वे लोग पहाड़ोंके टुकड़े, साल, ताड़ और तमालके पेड़ोंको उखाड़कर समुद्रको पाट रहे हैं जिसे देखकर देवलोक हर्षित हो रहा है। उनके भारसे दिग्गज काँपने लगे, कच्छप और वाराह व्याकुल हो उठे, पर्वतोंका समूह हिलने लगा और शेषनाग दब गये। तुलसीदासजी कहते हैं कि बन्दर और

रीछ तमककर चलते हैं और रामचन्द्रजीकी शपथ करते हैं। उस क्रुद्ध सेनाका सामना कौन रोक सकता है ?

विशेष

अलंकार—उत्प्रेक्षा और दीपक।

आए सुक-सारन बोलाए, ते कहन लागे,
पुलक सरीर सेना करत फहम ही।
महाबली बानर बिसाल भालु काल-से
कराल हैं, रहैं कहाँ, समाहिंगे कहाँ मही॥
हँस्यो दसमाथ रघुनाथको प्रताप सुनि,
तुलसी दुरावै मुख सूखत सहम हीं।
राम के बिरोधी बुरो बिधि हरि हर हू को,
सब को भलो है राजा राम के रहम हीं॥ ८॥

शब्दार्थ—सुक-सारन = सुक और सारन रावणके दूत थे। फहम = समझ। समाहिंगे = अटेंगे। दुरावै = छिपाता है। सहम = संकुचित, लज्जित। रहम = दया।

भावार्थ—रावणके बुलवानेपर शुक और सारन नामके दूत आये। (रावणके पूछनेपर) वे कहने लगे कि रामचन्द्रजीकी सेनाका स्मरण करते ही शरीरके रोंगटे खड़े हो जाते हैं। अत्यन्त बलवान बन्दर और विशालकाय भालू कालके समान भयङ्कर हैं। वे न-जानें कहाँ रहते हैं; पृथिवीपर कहाँ अटेंगे ? रामजीका प्रताप सुनकर यद्यपि रावण लज्जित हो गया और उसका मुँह सूख गया तथापि वह अपने उस भावको छिपाता हुआ हँसा। तुलसीदासजी कहते हैं कि रामजीके विरोधीपर

ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी बुरा मानते हैं। इसलिए रामजीकी कृपा रहनेमें ही सबको भलाई है।

'आयो आयो आयो सोई बानर बहोरि', भयो,
सोर चहुँ ओर लंक आए जुवराज के।
एक काढ़ै सौज एक धौज करै कहा ह्वैहै,
'पोच भई महा' सोच सुभट-समाज के॥
गाज्यो कपिराज रघुराजकी शपथ करि,
मूँदे कान जातुधान मानो गाजे गाज के।
सहमि सुखात वातजातकी सुरति करि,
लवा ज्यों लुकात तुलसी झपेटे बाज के॥१॥

शब्दार्थ—बहोरि = फिर। युवराज = अंगद। सौज = घरका सामान। धौज = दौड़ धूप। पोच = बुरा, नीच। गाज्यो = गर्जा। गाज = बिजली। वातजात = हनुमानजी। लवा = बटेर पक्षी।

भावार्थ—अंगदके लंकामें पहुँचते ही चारों ओर यह शोर मच गया कि वही बन्दर (हनुमानजी) फिर आ गया। कोई घरके भीतरसे सामान निकालने लगा, कोई घबराकर इधर-उधर दौड़ने लगा कि अब न-जानें क्या होगा। योद्धाओंको यह सोच हुआ कि यह तो बहुत बुरा हुआ। अंगद श्रीरामजीकी शपथ करके गर्जने लगे। राक्षसोंने (उस गर्जनको सुनकर) इस प्रकार अपने कान बन्द कर लिये मानों बिजली कड़क रही हो। तुलसीदास कहते हैं कि हनुमानजीकी याद करके राक्षस डरके मारे

सूखे जा रहे हैं और वे इस प्रकार छिप रहे हैं जैसे बाजके झपटनेपर बटेर।

विशेष

अलंकार—उत्प्रेक्षा और उदाहरण।

तुलसीस-बल रघुबीर जू के बालिसुत,
बाहि न गनत बात कहत करेरी सी।
'बखसीस ईस जू की खीस होत देखियत,
रिस काहें लागति कहत हौं तो तेरी सी॥
चढ़ि गढ़ मढ़ दृढ़ कोट के कँगूरे कोपि,
नेकु धका देहैं ढैहैं ढेलनकी ढेरी सी।
सुनु दसमाथ! नाथ साथ के हमारे कपि,
हाथ लंका लाइहैं तो रहेगी हथेरी सी॥१०॥

शब्दार्थ—करेरी = कड़ी। बखसीस (उर्दू शब्द है) = पारितोषिक, इनाम। खीस = नष्ट। मढ़ = मन्दिर। लाइहैं = लगावेगें। हथेरी सी = हथेलीके समान, समतल।

भावार्थ—श्री रघुनाथजीके प्रतापके बलसे अंगद उसे (रावणको) कुछ नहीं समझता और कड़ी-सी बातें कहता है कि अब शिवजीका दिया हुआ पारितोषिक (धन या वैभव) नष्ट होता दिखायी पड़ रहा है। तुझे क्रोध आ रहा है? मैं तो तेरे हितकी ही बात कह रहा हूँ। ऐ रावण सुन, मेरे स्वामीके साथके वन्दर यदि क्रुद्ध होकर तेरे किलेपर अथवा मन्दिर और दृढ़ कोटके कँगूरोंपर चढ़कर जरासा भी धक्का देंगे तो सबको

ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी बुरा मानते हैं। इसलिए रामजीकी कृपा रहनेमें ही सबकी भलाई है।

'आयो आयो आयो सोई बानर बहोरि', भयो,
सोर चहुँ ओर लंक आए जुवराज के।
एक काढ़ै सौज एक धौज करै कहा ह्वैहै,
'पोच भई महा' सोच सुभट-समाज के॥
गाज्यो कपिराज रघुराजकी शपथ करि,
मूँदे कान जातुधान मानो गाजे गाज के।
सहमि सुखात बातजातकी सुरति करि,
लवा ज्यों लुकात तुलसी झपेटे बाज के ॥९॥

शब्दार्थ—बहोरि = फिर। युवराज = अंगद। सौज = घरका सामान। धौज = दौड़ धूप। पोच = बुरा, नीच। गाज्यो = गर्जा। गाज = बिजली। बातजात = हनुमानजी। लवा = बटेर पक्षी।

भावार्थ—अंगदके लंकामें पहुँचते ही चारों ओर यह शोर मच गया कि वही बन्दर (हनुमानजी) फिर आ गया। कोई घरके भीतरसे सामान निकालने लगा, कोई घबराकर इधर-उधर दौड़ने लगा कि अब न-जानें क्या होगा। योद्धाओंको यह सोच हुआ कि यह तो बहुत बुरा हुआ। अंगद श्रीरामजीकी शपथ करके गर्जने लगे। राक्षसोंने (उस गर्जनको सुनकर) इस प्रकार अपने कान बन्द कर लिये मानों बिजली कड़क रही हो। तुलसीदास कहते हैं कि हनुमानजीकी याद करके राक्षस डरके मारे

वाणसे) गिरा दिया, यह सव अभी कलके खेल हैं। महा वल-वान वालिका वल तुझे भी मालूम है किन्तु वह वीर-त्रौंकुरा वालि एक ही वाणमें ढेर हो गया। मैं तेरे हितकी बात कहता हूँ किन्तु तू जरा भी डर नहीं मानता; इससे मेरा क्या विग-ड़ेगा, तू ही अपने दुष्कर्मोंका फल पावेगा। जब वीररूपी हाथियोंको मारनेके लिए सिंह स्वरूप परशुरामजीने रामजीसे हार मानी है तो ऐ नीच, उनके सामने तेरी क्या चलेगी, तू किस घलुएमें है ?

विशेष

१—'दूषन, खर, त्रिसिर' ये तीनों रावणके भाई थे।

२—'विराध'—एक राक्षसका नाम है।

३—'कवंध'—राक्षस था। इन्द्रके मारनेपर इसका मस्तक इसके पेटमें चला गया था। मस्तक न रहनेपर भी इसने बहुतसे वीरोंको मारा था। अन्तमें भगवान रामने इसका वध किया।

४—'ताल'—ताड़के सात वृक्ष थे जिन्हें रामजीने सुग्रीवके परीक्षा लेनेपर एक ही वाणसे काट गिराया था। लिखा भी है:—

दुंदुभि अस्थि ताल दिखलाए।
बिनु प्रयास रघुनाथ ढहाए॥

रामचरित मा०।

सवैया

तो सों कहौं दसकंधर रे, रघुनाथ-बिरोध न कीजिय बौरे।
वालि बली खर-दूषन और अनेक गिरे जे जे भीति में दौरे॥

ढेलेकी भांति गिरा देंगे और यदि लंकामें हाथ लगावेंगे तो वह समतल हो जायगी।

विशेष

१—अलंकार—उपमा।

२—'बालिसुत'—यह शब्द सार्थक है। इसका आशय यह है कि उसी बालिका पुत्र जिसने रावणको अपनी काँखमें दबा लिया था।

३—'करेरी-सी'—कहनेका यह अभिप्राय है कि बातें तो कड़ीसी मालूम हो रही हैं पर वे वास्तवमें कड़ी नहीं हैं—हित-की बातें हैं और सत्य हैं।

दूषन बिराध खर त्रिसिर कबंध बधे,
तालऊ बिसाल बेधे, कौतुक है कालिको।
एक ही बिसिष बस भयो बीर बाँकुरो जो,
तोहू है बिदित बल महाबली बालिको॥
तुलसी कहत हित, मानतो न नेकु संक,
मेरो कहा जैहै, फल पैहै तू कुचालिको।
बीर-करि-केसरी कुठारपानि मानी हारि,
तेरी कहा चली, बिड़! तो सो गनै घालिको॥११॥

शब्दार्थ—बिसिख=बाण। कहा जैहै=क्या जायगा। कुचालि=बुरे कर्म। करि=हाथी। बिड़=दुष्ट (विट्)। घालि=घलुआ।

भावार्थ—रामजीने खर, दूषण, विराध, त्रिशिरा और कबन्धको मार दिया तथा विशाल सातो तालोंको भी (एक

बाणसे) गिरा दिया, यह सब अभी कलके खेल हैं। महा बलवान बालिका बल तुझे भी मालूम है किन्तु वह वीर-चौंकुरा बालि एक ही बाणमें ढेर हो गया। मैं तेरे हितकी बात कहता हूँ किन्तु तू जरा भी डर नहीं मानता; इससे मेरा क्या बिगड़ेगा, तू ही अपने दुष्कर्मोंका फल पावेगा। जब वीररूपी हाथियोंको मारनेके लिए सिंह स्वरूप परशुरामजीने रामजीसे हार मानी है तो ऐ नीच, उनके सामने तेरी क्या चलेगी, तू किस घलुएमें है ?

विशेष

१—'दूषन, खर, त्रिसिर' ये तीनों रावणके भाई थे।

२—'विराध'—एक राक्षसका नाम है।

३—'कबंध'—राक्षस था। इन्द्रके मारनेपर इसका मस्तक इसके पेटमें चला गया था। मस्तक न रहनेपर भी इसने बहुतसे वीरोंको मारा था। अन्तमें भगवान रामने इसका वध किया।

४—'ताल'—ताड़के सात वृक्ष थे जिन्हें रामजीने सुग्रीवके परीक्षा लेनेपर एक ही बाणसे काट गिराया था। लिखा भी है:—

दुंदुभि अस्थि ताल दिखलाए।
बिनु प्रयास रघुनाथ ढहाए॥

रामचरित मा०।

सवैया

तो सों कहौं दसकंधर रे, रघुनाथ-बिरोध न कीजिय बौरे।
बालि बली खर-दूषन और अनेक गिरे जे जे भीति में दौरे॥

ढेलेकी भांति गिरा देंगे और यदि लंकामें हाथ लगावेंगे तो वह समतल हो जायगी।

विशेष

१—अलंकार—उपमा।

२—'बालिसुत'—यह शब्द सार्थक है। इसका आशय यह है कि उसी बालिका पुत्र जिसने रावणको अपनी काँखमें दबा लिया था।

३—'करेरी-सी'—कहनेका यह अभिप्राय है कि बातें तो कड़ीसी मालूम हो रही हैं पर वे वास्तवमें कड़ी नहीं हैं—हितकी बातें हैं और सत्य हैं।

दूषन बिराध खर त्रिसिर कबंध बधे,
तालऊ बिसाल बेधे, कौतुक है कालिको।
एक ही बिसिष बस भयो बीर बाँकुरो जो,
तोहू है बिदित बल महाबली बालिको॥
तुलसी कहत हित, मानतो न नेकु संक,
मेरो कहा जैहै, फल पैहै तू कुचालिको।
बीर-करि-केसरी कुठारपानि मानी हारि,
तेरी कहा चली, बिड़! तो सो गनै घालिको॥११॥

शब्दार्थ—बिसिख = बाण। कहा जैहै = क्या जायगा। कुचालि = बुरे कर्म। करि = हाथी। बिड़ = दुष्ट (विट्)। घालि = घलुआ।

भावार्थ—रामजीने खर, दूषण, विराध, त्रिशिरा और कबन्धको मार दिया तथा विशाल सातो तालोंको भी (एक

डींग मारनेमें तुझे लज्जा नहीं आती। अपनी गलीमें कुत्ता भी बलवान होता है। यदि मैं अपने स्वामीकी आज्ञा भंग करनेसे न डरूँ तो तेरे दसों सिर और बीसों भुजाओंको अभी काट डालूँ। जिस प्रकार सिंह हाथीको मार डालता है उसी प्रकार रणक्षेत्रमें यदि मैं तुझे मार डालूँ तब तो वालिका पुत्र (नहीं तो नहीं)।

कोसलराजके काज हौं आज त्रिकूट उपारि लै बारिधि बोरौं।
महाभुज दंड द्वै अंडकटाह चपेट की चोट चटाक दै फोरौं ॥
आयसु-भंग ते जो न डरौं सब मींजि सभासद सोनित खोरौं।
बालि को बालक जौ 'तुलसी' दसहू मुख के रन में रद तोरौं ॥१४॥

शब्दार्थ—त्रिकूट = लंकाका पहाड़। अंडकटाह = ब्रह्मांड। चपेट = थप्पड़। सोनित = खून। खोरौं = स्नान करूँ। रद = दाँत।

भावार्थ—यदि मैं अपने स्वामीकी आज्ञाको भंग करनेसे न डरूँ तो मैं आज उनके कामसे त्रिकूट पर्वतको उखाड़कर समुद्रमें डुबा दूं। लंकाकी तो कोई गिनती ही नहीं मैं अपनी महा बलवान दोनों भुजाओंकी चपेटकी चोटसे ब्रह्मांडको भी बहुत जल्द बर्बाद कर सकता हूँ और सब दरबारियोंको मसलकर उनके रक्तसे स्नान कर सकता हूँ। ऐ रावण, यदि मैं वालिका पुत्र हूँ तो युद्धमें तेरे दसों मुखोंके दाँतोंको तोड़ डालूँगा।

अति कोप सों रोप्यो है पाँव महा, सब लङ्क ससंकित सोर मचा।
तमके घननाद से बीर पचारि कै, हारि निसाचर-सैन पचा ॥

ऐसिय हाल भई तोहिं धौं, नतु लै मिलु सीय चहै सुख जौ रे।
राम के रोष न राखि सकैं 'तुलसी' बिधि, श्रीपति, संकर सौ रे॥१२॥

शब्दार्थ—बौरे = पागल। भीतिमें दौरे = दीवारकी ओर दौड़े। श्रीपति = विष्णु।

भावार्थ—अंगद कहते हैं कि ऐ पागल रावण, मैं तुझसे कहता हूँ कि रामचन्द्रजीसे विरोध न कर। महाबली बालि, खर, दूषण तथा और भी बहुतसे लोग हैं जो दीवारकी ओर दौड़े अर्थात् अभिमानके साथ रामजीके सामने आये, वे सब गिर गये (मर गये)। यदि तुझे सुखकी आकांक्षा हो तो तू सीता-को लेकर रामजीसे मिल; नहीं तो कौन जाने तेरी भी वही दशा हो। तुलसीदास कहते हैं कि रामजीके क्रोध करनेपर (एक नहीं) सैकड़ों ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी रक्षा नहीं कर सकते।

विशेष

अलंकार—सम्बन्धातिशयोक्ति।

तू रजनीचर-नाथ महा, रघुनाथ के सेवक को जन हौं हौं।
बलवान है स्वान गली अपनी, तोहि लाज न, गाल बजावत सौहौं॥
बीस भुजा दससीस हरौं न डरौं प्रभु-आयसु-भंग ते जौ हौं।
खेत में केहरि ज्यों गजराज दलौं दल बालि को बालक तौ हौं॥१३॥

शब्दार्थ—रजनीचर = राक्षस। स्वान = कुत्ता। खेत = मैदान। दल = सेना। हौं = मैं।

भावार्थ—ऐ रावण, तू राक्षसोंका बड़ा भारी राजा है और मैं रामजीके सेवकका दास हूँ। मेरे सामने गाल बजाने अर्थात्

शब्दार्थ—पैज = प्रण। सिमिटि = एकत्र होकर। भट = योद्धा। टसकतु है = हिलता है। धरनि = पृथिवी। धरनिधर = पहाड़। धराधर = शेषनाग। मंदर = मंदराचल पहाड़। कसकतु है = दर्द करता है।

भावार्थ—अंगदने रामजीके बलके भरोसे प्रण करके रावणकी सभामें पैर रोप दिया। योद्धालोग एक साथ जोर लगाकर उसे उठाने लगे, पर वह तनिक भी न खिसका। यहाँतक कि उनके पैरके भारसे पृथिवीने अपना धैर्य छोड़ दिया, पहाड़ पृथिवीमें धँसने लगे। शेषनाग भी धीरतापूर्वक पैरके बोझको न सह सके। महा बलवान बालिपुत्रके दबानेसे पृथिवी दलकने लगी, समुद्र उछलने लगा और सुमेरु गिरि मसक उठा। कच्छपकी कठोर पीठपर (समुद्र मंथनके समय) मंदराचल पर्वतकी रगड़से जो घट्ठा पड़ गया था वही उनके काम आया; किन्तु कलेजेमें दर्द होने लगा।

विशेष

अलंकार—सम्बन्धातिशयोक्ति।

झूलना छंद

कनकगिरि-सृंग चढ़ि, देखि मर्कट कटक,
वदति मंदोदरी परम भीता।
सहसभुज - मत्त - गजराज - रन - केसरी,
परसुधर-गर्व जेहि देखि बीता॥
'दास तुलसी' समरसूर कोसलधनी,
ख्याल ही बालि बलसालि जीता।

न टरै पग मेरुहु ते गरु भो, सो मनो महि संग विरंचि रचा।
तुलसी सब सूर सराहत हैं 'जगमें बलसालि है बालिबचा' ॥१५॥

शब्दार्थ—पचारि कै = ललकारकर। गरु = वजनदार, भारी। महि = पृथिवी।

भावार्थ—अंगदने अत्यन्त क्रुद्ध होकर (रावणकी सभामें) अपना पैर रोप दिया। उससे सारी लंकापुरी डर गयी और चारो ओर शोर मच गया। अंगदके पैरको हटानेके लिए मेघनादके समान बहुतसे योद्धा ललकारकर झपटे, किन्तु निशाचरी सेना हारकर बैठ गयी, पैर टससे मस नहीं हुआ। वह सुमेरु पर्वतसे भी भारी हो गया। उसे मानों ब्रह्माने पृथिवीके साथ जुड़ा हुआ बनाया हो। तुलसीदासजी कहते हैं कि (यह देखकर) सब वीर प्रशंसा करने लगे कि संसारमें बालिका पुत्र सबसे अधिक बलवान है।

कवित्त

रोप्यो पाँव पैज कै बिचारि रघुबीर-बल,
लागे भट सिमिटि न नेकु टसकतु है।
तज्यो धीर धरनि, धरनिधर धसकत,
धराधर धीर भार सहि न सकतु है॥
महाबली बालिको, दबत दलकति भूमि,
'तुलसी' उछरि सिंधु, मेरु मसकतु है।
कमठ कठिन पीठि घट्टा परो मंदर को,
आयो सोई काम, पै करेजो कसकतु है ॥१६॥

शब्दार्थ—पैज = प्रण। सिमिटि = एकत्र होकर। भट = योद्धा। टसकतु है = हिलता है। धरनि = पृथिवी। धरनिधर = पहाड़। धराधर = शेषनाग। मंदर = मंदराचल पहाड़। कसकतु है = दर्द करता है।

भावार्थ—अंगदने रामजीके बलके भरोसे प्रण करके रावण-की सभामें पैर रोप दिया। योद्धालोग एक साथ जोर लगाकर उसे उठाने लगे, पर वह तनिक भी न खिसका। यहाँतक कि उनके पैरके भारसे पृथिवीने अपना धैर्य छोड़ दिया, पहाड़ पृथिवी-में धँसने लगे। शेषनाग भी धीरतापूर्वक पैरके बोझको न सह सके। महा बलवान वालिपुत्रके दबानेसे पृथिवी दलकने लगी, समुद्र उछलने लगा और सुमेरु गिरि मसक उठा। कच्छपकी कठोर पीठपर (समुद्र मंथनके समय) मंदराचल पर्वतकी रगड़से जो घट्ठा पड़ गया था वही उनके काम आया; किन्तु कलेजेमें दर्द होने लगा।

विशेष

अलंकार—सम्बन्धातिशयोक्ति।

झूलना छंद

कनकगिरि-सृंग चढ़ि, देखि मर्कट कटक,
बदति मंदोदरी परम भीता।
सहसभुज - मत्त - गजराज - रन - केसरी,
परसुधर-गर्व जेहि देखि बीता॥
'दास तुलसी' समरसूर कोसलधनी,
ख्याल ही बालि बलसालि जीता।

न टरै पग मेरुहु ते गरु भो, सो मनो महि संग बिरंचि रचा।
तुलसी सब सूर सराहत हैं 'जगमें बलसालि है बालिबचा' ॥१५॥

शब्दार्थ—पचारि कै = ललकारकर। गरु = वजनदार, भारी। महि = पृथिवी।

भावार्थ—अंगदने अत्यन्त क्रुद्ध होकर (रावणकी सभामें) अपना पैर रोप दिया। उससे सारी लंकापुरी डर गयी और चारो ओर शोर मच गया। अंगदके पैरको हटानेके लिए मेघनादके समान बहुतसे योद्धा ललकारकर झपटे, किन्तु निशाचरी सेना हारकर बैठ गयी, पैर टससे मस नहीं हुआ। वह सुमेरु पर्वतसे भी भारी हो गया। उसे मानों ब्रह्माने पृथिवीके साथ जुड़ा हुआ बनाया हो। तुलसीदासजी कहते हैं कि (यह देखकर) सब वीर प्रशंसा करने लगे कि संसारमें बालिका पुत्र सबसे अधिक बलवान है।

कवित्त

रोप्यो पाँव पैज कै बिचारि रघुबीर-बल,
लागे भट सिमिटि न नेकु टसकतु है।
तज्यो धीर धरनि, धरनिधर धसकत,
धराधर धीर भार सहि न सकतु है॥
महाबली बालिको, दबत दलकति भूमि,
'तुलसी' उछरि सिंधु, मेरु मसकतु है।
कमठ कठिन पीठि घट्टा पर्यो मंदर को,
आयो सोई काम, पै करेजो कसकतु है॥१६॥

शब्दार्थ—पैज = प्रण। सिमिटि = एकत्र होकर। भट = योद्धा। टसकतु है = हिलता है। धरनि = पृथिवी। धरनिधर = पहाड़। धराधर = शेषनाग। मंदर = मंदराचल पहाड़। कसकतु है = दर्द करता है।

भावार्थ—अंगदने रामजीके बलके भरोसे प्रण करके रावण-की सभामें पैर रोप दिया। योद्धालोग एक साथ जोर लगाकर उसे उठाने लगे, पर वह तनिक भी न खिसका। यहाँतक कि उनके पैरके भारसे पृथिवीने अपना धैर्य छोड़ दिया, पहाड़ पृथिवी-में धँसने लगे। शेषनाग भी धीरतापूर्वक पैरके बोझको न सह सके। महा बलवान वालिपुत्रके दबानेसे पृथिवी दलकने लगी, समुद्र उछलने लगा और सुमेरु गिरि मसक उठा। कच्छपकी कठोर पीठपर (समुद्र मंथनके समय) मंदराचल पर्वतकी रगड़से जो घट्ठा पड़ गया था वही उनके काम आया; किन्तु कलेजेमें दर्द होने लगा।

विशेष

अलंकार—सम्बन्धातिशयोक्ति।

झूलना छंद

कनकगिरि-सृंग चढ़ि, देखि मर्कट कटक,
वदति मंदोदरी परम भीता।
सहसभुज - मत्त - गजराज - रन - केसरी,
परसुधर-गर्व जेहि देखि बीता॥
'दास तुलसी' समरसूर कोसलधनी,
ख्याल ही वालि बलसालि जीता।

न टरै पग मेरुहु ते गरु भो, सो मनो महि संग बिरंचि रचा।
तुलसी सब सूर सराहत हैं 'जगमें बलसालि है बालिबचा' ॥१५॥

शब्दार्थ—पचारि कै = ललकारकर। गरु = वजनदार, भारी। महि = पृथिवी।

भावार्थ—अंगदने अत्यन्त क्रुद्ध होकर (रावणकी सभामें) अपना पैर रोप दिया। उससे सारी लंकापुरी डर गयी और चारो ओर शोर मच गया। अंगदके पैरको हटानेके लिए मेघनादके समान बहुतसे योद्धा ललकारकर झपटे, किन्तु निशाचरी सेना हारकर बैठ गयी, पैर टससे मस नहीं हुआ। वह सुमेरु पर्वतसे भी भारी हो गया। उसे मानों ब्रह्माने पृथिवीके साथ जुड़ा हुआ बनाया हो। तुलसीदासजी कहते हैं कि (यह देखकर) सब वीर प्रशंसा करने लगे कि संसारमें बालिका पुत्र सबसे अधिक बलवान है।

कवित्त

रोप्यो पाँव पैज कै बिचारि रघुबीर-बल,
लागे भट सिमिटि न नेकु टसकतु है।
तज्यो धीर धरनि, धरनिधर धसकत,
धराधर धीर भार सहि न सकतु है॥
महाबली बालिको, दबत दलकति भूमि,
'तुलसी' उछरि सिंधु, मेरु मसकतु है।
कमठ कठिन पीठि घट्टा पर्‍यो मंदर को,
आयो सोई काम, पै करेजो कसकतु है॥१६॥

शब्दार्थ—पैंज = प्रण। सिमिटि = एकत्र होकर। भट = योद्धा। टसकतु है = हिलता है। धरनि = पृथिवी। धरनिधर = पहाड़। धराधर = शेषनाग। मंदर = मंदराचल पहाड़। कसकतु है = दर्द करता है।

भावार्थ—अंगदने रामजीके बलके भरोसे प्रण करके रावण-की सभामें पैर रोप दिया। योद्धालोग एक साथ जोर लगाकर उसे उठाने लगे, पर वह तनिक भी न खिसका। यहाँतक कि उनके पैरके भारसे पृथिवीने अपना धैर्य छोड़ दिया, पहाड़ पृथिवी-में धँसने लगे। शेषनाग भी धीरतापूर्वक पैरके बोझको न सह सके। महा बलवान बालिपुत्रके दबानेसे पृथिवी दलकने लगी, समुद्र उछलने लगा और सुमेरु गिरि मसक उठा। कच्छपकी कठोर पीठपर (समुद्र मंथनके समय) मंदराचल पर्वतकी रगड़से जो घट्ठा पड़ गया था वही उनके काम आया; किन्तु कलेजेमें दर्द होने लगा।

विशेष

अलंकार—सम्बन्धातिशयोक्ति।

झूलना छंद

कनकगिरि-सृंग चढ़ि, देखि मर्कट कटक,
वदति मंदोदरी परम भीता।
सहसभुज - मत्त - गजराज - रन - केसरी,
परसुधर-गर्व जेहि देखि बीता॥
'दास तुलसी' समरसूर कोसलधनी,
ख्याल ही बालि बलसालि जीता।

रे कंत! तृन दंत गहि सरन श्रीराम, कहि,
अजहुँ यहि भांति लै सौंपु सीता ॥१७॥

शब्दार्थ—कनकगिरि-शृंग = सोनेके पहाड़की चोटी। मर्कट = वानर। कटक = सेना। वदति = कहती है। भीता = भयभीत होकर। बीता = गत हो गया। ख्याल ही = खेलमें ही।

भावार्थ—सोनेके पहाड़की चोटीपर चढ़कर वानरोंकी सेनाको देख मन्दोदरी अत्यन्त भयभीत होकर रावणसे कहती है कि हे स्वामी, जिन रामचन्द्रजीको देखकर सहस्रबाहुरूपी हाथीको मारनेके लिए सिंहरूप परशुरामजीका गर्व नष्ट हो गया, जिन्होंने खेलवाड़में ही अत्यन्त बली बालिको जीत लिया, ऐसे योद्धाको दाँतों तले तृण दबाकर (दीनताके साथ) 'मैं श्री रामजीकी शरणमें हूँ' कहकर अब भी सीताजीको ले जाकर सौंप दो।

रे नीच! मारीच बिचलाइ, हति ताड़का,
भंजि सिवचाप सुख सबहि दीन्ह्यो।
सहस-दसचारि खल सहित खरदूषनहि,
पठै जमधाम, तैं तउ न चीन्ह्यो॥
मैं जो कहौं कंत, सुनु मंत भगवंत सों,
बिमुख ह्वै बालिफल कौन लीन्ह्यो?
बीस भुज, दस सीस खीस गये तबहिं,
जब ईस के ईस सों बैर कीन्ह्यो ॥१८॥

शब्दार्थ—बिचलाइ = हटाकर, भगाकर। सहस-दस चारि = चौदह हजार। तउ = तो भी। खीस गये = नष्ट हो गये। ईसके ईस = शिवजीके स्वामी श्री रामजी।

भावार्थ—ऐ नीच, रामजीने मारीचको भगाकर, ताड़काको मारकर तथा शिव-धनुषको तोड़कर सबको सुख दिया है। चौदह हजार दुष्टों सहित खर-दूषणको यमपुर भेज दिया है तो भी तुमने उन्हें नहीं पहचाना। हे स्वामी मैं जो कहती हूँ उसे सुनो, सन्त और भगवानसे विमुख होकर वालिने कौन-सा फल पाया? तुम्हारी बीसों भुजाएँ और दसों सिर उसी समय नष्ट हो गये जब तुमने शिवजीके स्वामी श्रीरामचन्द्रजीसे वैर किया।

वालि दलि, काल्हि जलजान पापान किय,
कंत ! भगवंत तैं तउ न चीन्हें।
विपुल विकराल भट भालु कपि काल-से,
संग तरु तुंग गिरिसृंग लीन्हें॥
आइगो कोसलाधीस तुलसीस जेहि,
छत्र मिस मौलि दस दूरि कीन्हें।
ईस-बकसीस जनि खीस करु ईस ! सुनु,
अजहुँ कुल कुसल वैदेहि दीन्हें ॥१९॥

शब्दार्थ—जलजान = नाव। तरु = वृक्ष। तुंग = ऊँचा। मिस = बहाने। मौलि = सिर।

भावार्थ—हे स्वामी, उन्होंने कल ही वालिको मारकर समुद्रके ऊपर पत्थरको नावकी तरह तैराया है, तो भी तुमने उन परमात्माको नहीं पहचाना। कालके समान अत्यन्त भयानक अनेक योद्धाओं, भालुओं और बन्दरोंको, जो ऊँचे ऊँचे वृक्ष और पहाड़ोंकी चोटियोंको लिये हुए हैं, साथमें लेकर तुलसीके स्वामी कोशलाधीश श्रीरामजी आ गये हैं जिन्होंने छत्र भंग

करनेके बहाने तुम्हारे दसो सिर गिरा दिये। हे स्वामी, सुनो, शिवजीकी दी हुई सम्पत्तिको नष्ट मत करो सीताजीको लौटा देनेसे अब भी वंशकी कुशल है।

विशेष

अलंकार—अपह्नुति।

सैन के कपिन को को गनै अर्बुदै,
महाबलबीर हनुमान जानी।
भूलिहैं दस दिसा, सेस पुनि डोलिहैं,
कोपि रघुनाथ जब बान तानी॥
बालि हू गर्ब जिय माहिं ऐसो कियो,
मारि दहपट कियो जम की घानी।
कहति मंदोदरी सुनहि रावण! मतो,
वेगि लै देहि वैदेहि रानी॥२०॥

शब्दार्थ—अर्बुदै = अरबों। दहपट कियो = नष्ट कर दिया। वेगि = जल्दी। मतो = राय।

भावार्थ—रामचन्द्रकी सेनाके बन्दरोंको कौन गिन सकता है? उन्हें अरबों महाबलशाली हनुमान ही जानो। जिस समय रामजी कोप करके बाण चढ़ायेंगे उस समय तुम्हें दसों दिशाएँ भूल जायँगी (तुम्हारा कहीं ठिकाने न रहेगा, तुम किसी तरफ न भाग सकोगे) और शेषनाग भी डोलने लगेंगे। बालिने भी तुम्हारी ही तरह अपने दिलमें उन्हें जीतनेका घमंड किया था; किन्तु रामजीने उसे यमराजके कोल्हूकी घानी बनाकर नष्ट कर

दिया। मन्दोदरी कहती है कि हे रावण मेरा मत सुनो, शीघ्र ही महारानी सीताको ले जाकर रामचन्द्रजीको सौंप दो।

गहन उज्जारि, पुर जारि, सुत मारि तव,
कुसल गो कीस वर बेर जाको।
दूसरो दूत पन रोपि कोप्यो सभा,
खर्ब कियो सर्ब को गर्ब थाको॥
'दास तुलसी' सभय वदति मय-नंदिनी,
मंदमति कंत! सुनु मंत म्हाको।
तौ लौं मिलु वेगि नहिं जौं लौं रन रोप भयो,
दासरथि बीर बिरुदैत बाँको॥२१॥

शब्दार्थ—गहन = वन। तव = तुम्हारा। वेर (बेर) = शरीर। खर्ब = छोटा। थाको = था। मय-नंदिनी = मय नामक दानवकी पुत्री मन्दोदरी। मंत (मंत्र) = राय। म्हाको = मेरा। विरुदैत = यशस्वी।

भावार्थ—जिसका श्रेष्ठ शरीरवाला बन्दर वनको, उजाड़कर, नगरको जलाकर और तुम्हारे पुत्र अक्षयकुमारको मारकर सकुशल लौट गया; उनके दूसरे दूतने क्रोध करके तुम्हारी सभा-में प्रण किया और सबलोगोंके अभिमानको चूर्ण कर दिया। तुलसीदास कहते हैं कि मन्दोदरी भयभीत होकर कहती है कि ऐ मूर्ख पति, मेरी सम्मति सुनो। जबतक यशस्वी बांके वीर श्रीरामजीको युद्धमें क्रोध नहीं होता तबतक शीघ्र ही (सीताको लेकर) उनसे मिलो।

मनहरण

कानन उजारि, अच्छ मारि, धारि धूरि कीन्हीं,
नगर प्रजार्‍यो सो बिलोक्यो बल कीस को।
तुम्हैं बिद्यमान जातुधान-मंडली में कपि,
कोपि रोप्यो पाँउ, सो प्रभाउ तुलसीस को॥
कंत! सुनु मंत, कुल अंत किये अंत हानि,
हातो कीजै हीय तें भरोसो भुज बीस को।
तौ लौं मिलु बेगि जौ लौं चाप न चढ़ायो राम,
रोपि बान काढ्यो न, दलैया दससीस को ॥२२॥

शब्दार्थ—अच्छ = अक्षयकुमार, रावणका पुत्र। धारि = सेना। कीस = वानर, हनुमानजी। हातो = अलग। दलैया = नाश करनेवाला।

भावार्थ—एक बन्दरने तुम्हारे बागको उजाड़कर, तुम्हारे पुत्र अक्षयकुमारको मारकर सेनाको धूलमें मिला दिया और नगरको जला डाला। उसका बल तुमने देख लिया। दूसरे बन्दरने तुम्हारी उपस्थितिमें राक्षसोंकी मंडलीमें क्रुद्ध होकर पाँव रोपा (जिसे कोई भी न हिला सका), वह प्रभाव रामजीका है। [illegible] स्वामी मेरी सलाह सुनो, वंशका नाश करनेसे अंतमें हानि ही होगी। इसलिए तुम अपने हृदयसे अपनी बीस भुजाओंका भरोसा छोड़ दो और जबतक रामजी धनुष नहीं चढ़ाते तथा क्रुद्ध होकर दसों सिरोंको नष्ट करनेवाला बाण नहीं निकालते तबतक जल्दीसे जाकर उनसे मिल लो।

पवनको पूत देखौ दूत वीर बाँकुरो जो,
बंक गढ़ लंक सो ढका ढकेलि ढाहिगो।
बालि बलसालिको, सो काल्हि दाप दलि, कोपि
रोप्यो पाँउ, चपरि चमू को चाउ चाहिगो॥
सोई रघुनाथ कपि साथ, पाथनाथ बांधि,
आए नाथ! भागे तें खिरिरि खेह खाहिगो।
'तुलसी' गरब तजि, मिलिबे को साज सजि,
देहि सीय न तौ, पिय! पाइमाल जाहिगो॥२३॥

शब्दार्थ—ढका ढकेलि = धक्का देकर। ढाहिगो = गिरा गया। दाप = दर्प, अभिमान। चमू = सेना। चाउ = चाव, उत्साह। चाहिगो = देख गया। पाथनाथ = समुद्र। खिरिरि = खरोंचकर। खेह = धूल।

भावार्थ—देखो न, उनका जो वीरबाँकुर दूत हनुमान है वह तुम्हारी लंकाके दृढ़ किलेको धक्का देकर गिरा गया और अभी कल ही बलवान बालिके पुत्र अंगदने क्रुद्ध होकर पाँव रोपा और तुमलोगोंका अभिमान मिट्टीमें मिला दिया एवं शीघ्रतासे (अल्पकालमें ही) तुम्हारी सेनाके उत्साहको देख गया। हे नाथ, जिनके ऐसे ऐसे बलवान दूत हैं वे ही रामजी समुद्र बाँधकर बन्दरोंके साथ लंकापुरीमें आ गये हैं। भागनेसे तुम खरोंचकर धूल फाँकोगे। हे पति! तुलसीदासजी कहते हैं कि अभिमान छोड़कर मिलनेके लिए साज-सामान करके सीताजीको रामजीके पास पहुँचा आओ, नहीं तो बर्बाद हो जाओगे।

मनहरण

कानन उजारि, अच्छ मारि, धारि धूरि कीन्हीं,
नगर प्रजार्‌यो सो विलोक्यो बल कीस को।
तुम्हैं विद्यमान जातुधान-मंडली में कपि,
कोपि रोप्यो पाँउ, सो प्रभाउ तुलसीस को॥
कंत! सुनु मंत, कुल अंत किये अंत हानि,
हातो कीजै हीय तें भरोसो भुज बीस को।
तौ लौं मिलु वेगि जौ लौं चाप न चढ़ायो राम,
रोपि बान काढ्यो न, दलैया दससीस को॥२२॥

शब्दार्थ—अच्छ = अक्षयकुमार, रावणका पुत्र। धारि = सेना। कीस = वानर, हनुमानजी। हातो = अलग। दलैया = नाश करनेवाला।

भावार्थ—एक बन्दरने तुम्हारे बागको उजाड़कर, तुम्हारे पुत्र अक्षयकुमारको मारकर सेनाको धूलमें मिला दिया और नगरको जला डाला। उसका बल तुमने देख लिया। दूसरे बन्दरने तुम्हारी उपस्थितिमें राक्षसोंकी मंडलीमें क्रुद्ध होकर पाँव रोपा (जिसे कोई भी न हिला सका), वह प्रभाव रामजीका ही था। हे स्वामी मेरी सलाह सुनो, वंशका नाश करनेसे अंतमें हानि ही होगी। इसलिए तुम अपने हृदयसे अपनी बीस भुजाओंका भरोसा छोड़ दो और जबतक रामजी धनुष नहीं चढ़ाते तथा क्रुद्ध होकर दसों सिरको नष्ट करनेवाला वाण नहीं निकालते तबतक शीघ्रतासे जाकर उनसे मिल लो।

तरह एक बन्दर तहस-नहस कर गया (और तुम्हारा कुछ किया-धरा न हुआ)।

जाके रोष दुसह त्रिदोष दाह दूरि कीन्हें,
पैयत न छत्री-खोज खोजत खलक में।
माहिषमतीको नाथ साहसी सहस बाहु,
समर समर्थ, नाथ! हेरिए हलक में॥
सहित समाज महाराज सो जहाजराज,
बूड़ि गयो जाके बलवारिधि-छलक में।
टूटत पिनाक के मनाक बाम राम से, ते
नाक बिनु भये भृगुनायक पलक में ॥२५॥

शब्दार्थ—दुसह = असह्य । त्रिदोष = पित्त, कफ, वात; सन्निपात जो कि घातक बीमारी है। खलक (अरबी) = संसार। माहिषमती = सहस्रबाहुका नगर। हेरिए = देखिये। हलक = हृदय। मनाक = थोड़ा। नाक बिनु भये = मर्यादा-रहित हो गये। पलक = क्षण।

भावार्थ—जिनके क्रोधने असह्य सन्निपातकी जलनको भी मात कर दिया था, (जिनके क्रोधके कारण) संसारमें ढूँढ़नेसे भी क्षत्रियोंका कहीं पता नहीं लगता था तथा जिनके बलरूपी समुद्रकी तरंगोंमें विशाल जहाजरूपी माहिष्मतीका राजा, युद्ध करनेमें समर्थ, साहसी सहस्रबाहु अपने समाजके सहित डूब गया, वही परशुरामजी धनुषके टूटनेपर रामचन्द्रजीसे कुछ नाराज हुए थे; किन्तु क्षणभरमें ही उनकी नाक कट गयी अर्थात् प्रतिष्ठा-रहित हो गये।

उदधि अपार उतरत नहिं लागी बार,
केसरी-कुमार सो अदंड कैसो डांड़िगो।
बाटिका उजारि अच्छ रच्छकनि मारि, भट,
भारी भारी रावरेके चाउर-से कांड़िगो॥
'तुलसी' तिहारे विद्यमान जुवराज आजु,
कोपि पाँव रोपि, बस कै, छोहाइ छांड़िगो।
कहे की न लाज, पिय! अजहूँ न आये बाज,
सहित समाज गढ़ राँड़ कैसो भांड़िगो॥२४॥

शब्दार्थ—उदधि = समुद्र। बार = देर। डांड़िगो = दंड दे गया। कांड़िगो = कूट गया। छोहाइ = छोह करके। गढ़ राँड़ कैसो भांड़िगो = गढ़को अनाथकी तरह तहस-नहस कर गया (मानो उसका कोई स्वामी ही नहीं था)।

भावार्थ—जिसे अपार समुद्रको पार करनेमें देर नहीं लगी वह हनुमान अदंड (जिसे कोई दंड देनेवाला न हो) की तरह तुम्हें दंड दे गया और वाटिकाको उजाड़कर, अक्षयकुमार आदि रक्षकोंको मारकर, तुम्हारे बड़े बड़े योद्धाओंको चावलकी तरह कूट गया। तुलसीदास कहते हैं कि अभी ताजी बात है कि अंगदने तुम्हारी उपस्थितिमें क्रोधके साथ पाँव रोपा और तुमको अधीन करके, तुमपर दया करके तुम्हें छोड़ गया। हे स्वामी, तुम्हें कहने-सुननेकी कुछ भी लज्जा नहीं है। अब भी तुम अपनी करनीसे बाज नहीं आते। (घोर लज्जाकी बात है कि) समाजके सहित तुम्हारे गढ़को अनाथ (जिसका कोई स्वामी न हो) की

अनुमान करके कि जब धनुष टूटेगा, (तब ब्राह्मण होकर वेद-विरुद्ध वीरता दिखलानेवाले परशुरामजी आकर अभिमानके साथ बातें करेंगे और उसी समय उन्हें दंड देना उचित होगा) रामजीने परशुरामजीकी प्रतिष्ठामें वामता (विपरीतता) देखकर अर्थात् परशुरामजीको वीरताद्वारा ख्याति प्राप्त करते देखकर—जो कि ब्राह्मणके लिए सर्वथा अनुचित है, धनुष तोड़नेके बहाने उनका परलोक नष्ट कर दिया और उनके बहुत बड़े भ्रमको (कि रामजी अवतार हैं या नहीं) दूर कर दिया। अतः हे स्वामी, ऐसे श्री रामजीको पहचानकर तुम अपने दसो सिर झुकाकर और बीसो हाथ जोड़कर उनसे मिलो (इसीमें तुम्हारा हित है)।

विशेष

'रोक्यो परलोक'—यह भाव वाल्मीकीय रामायणमें इस प्रकार व्यक्त किया गया है:—

इमां वा त्वद्गतिं राम तपोबल समार्जिताम्।
लोकानप्रतिमान् वापि हनिष्यामीति मे मतिः॥
जड़ीकृते तदा लोके रामे वरधनुर्धरे।
निर्वीर्यो जामदग्न्योसौ रामो राममुदैक्षत॥

कह्यो मत मातुल बिभीषन हू बार बार,
आँचर पसारि, पिय, पाँइ लै लै हौं परी।
बिदित बिदेहपुर, नाथ ! भृगुनाथगति,
समय सयानी कीन्हीं जैसी आइ गौं परी॥
बायस, बिराध, खर, दूषन, कबंध, बालि,
बैर रघुबीर के न पूरी काहु की परी।

विशेष

१—अलंकार—रूपक (तीसरे चरणमें)।

२—'माहिष्मती'–यह नगर दक्षिण भारतमें था। पुराणों-से पता चलता है कि यह नर्मदा नदीके तटपर था। सहस्रबाहु यहींका राजा था।

३—'हलक'—अरबी शब्द है। इसका अर्थ है, 'कंठ'। किन्तु यहाँपर इसका अर्थ हृदय है।

कीन्हीं छोनी छत्री बिनु छोनिप-छपनहार,
कठिन कुठार-पानि बीर बानि जानि कै।
परम कृपालु जो नृपाल लोकपालन पै,
जब धनुहाई ह्वैहै मन अनुमानि कै॥
नाक में पिनाक मिस बामता बिलोकि राम,
रोक्यो परलोक, लोक भारी भ्रम भानि कै।
नाइ दसमाथ महि, जोरि बीस हाथ, पिय!
मिलिये पै नाथ रघुनाथ पहिचानि कै॥२६॥

शब्दार्थ—छोनी = पृथिवी। छोनिप = राजा। छपनहार = मारनेवाले। बानि = आदत। धनुहाई = धनुष टूटनेपर। नाक = स्वर्ग। मिस = बहाने। भानि कै = तोड़कर।

भावार्थ—जिन्होंने पृथिवीको क्षत्रिय-रहित कर दिया था, जो राजाओंका संहार करनेवाले थे, उन कठिन फरसा धारण करनेवाले परशुरामजीको वीर स्वभाववाला जानकर, राजाओं और लोकपालोंपर परम कृपालु श्रीरामजीने अपने मनमें यह

अनुमान करके कि जब धनुष टूटेगा, (तब ब्राह्मण होकर वेद-विरुद्ध वीरता दिखलानेवाले परशुरामजी आकर अभिमानके साथ बातें करेंगे और उसी समय उन्हें दंड देना उचित होगा) रामजीने परशुरामजीकी प्रतिष्ठामें वामता (विपरीतता) देखकर अर्थात् परशुरामजीको वीरताद्वारा ख्याति प्राप्त करते देखकर— जो कि ब्राह्मणके लिए सर्वथा अनुचित है, धनुष तोड़नेके बहाने उनका परलोक नष्ट कर दिया और उनके बहुत बड़े भ्रमको (कि रामजी अवतार हैं या नहीं) दूर कर दिया। अतः हे स्वामी, ऐसे श्री रामजीको पहचानकर तुम अपने दसो सिर झुकाकर और बीसो हाथ जोड़कर उनसे मिलो (इसीमें तुम्हारा हित है)।

विशेष

'रोक्यो परलोक'—यह भाव वाल्मीकीय रामायणमें इस प्रकार व्यक्त किया गया है:—

इमां वा त्वद्गतिं राम तपोबल समार्जिताम्।
लोकानप्रतिमान् वापि हनिष्यामीति मे मतिः॥
जड़ीकृते तदा लोके रामे वरधनुर्धरे।
निर्वीर्यो जामदग्न्योसौ रामो राममुदैक्षत॥

कह्यो मत मातुल विभीषन हू बार बार,
आँचर पसारि, पिय, पाँइ लै लै हौं परी।
विदित विदेहपुर, नाथ ! भृगुनाथगति,
समय सयानी कीन्हीं जैसी आइ गौं परी॥
बायस, बिराध, खर, दूषन, कबंध, बालि,
बैर रघुबीर के न पूरी काहु की परी।

कंत बीस लोचन बिलोकिए कुमंत-फल,
ख्याल लंका लाई कपि राँड़ की सी झोपरी ॥२७॥

शब्दार्थ—मातुल = मामा (मारीच)। समय सयानी = समयके अनुकूल, समयकी चतुरता। गौं = मौका। वायस = कौआ, इन्द्रका पुत्र जयन्त। कुमंत = बुरी सलाह। ख्याल = खेलमें। लाई = आग लगा दी।

भावार्थ—हे स्वामी, तुम्हारे मामा मारीच और विभीषणने भी बार बार सलाह दी (कि रामजीसे वैर मत करो), मैंने भी आँचल फैलाकर और पैरोंपर गिर गिरकर बिनती की। हे नाथ जनकपुरमें परशुरामजीकी जो दशा हुई वह तुम्हें ज्ञात है। उन्होंने जैसा मौका देखा वैसा ही काम किया। श्री रामजीसे विरोध करनेपर कौआ-वेषधारी जयन्त, विराध, खरदूषण, कबन्ध और बालिका भी भला नहीं हुआ। हे स्वामी, तुम अपनी बीसो आँखोंसे बुरी सलाहका फल देखो। एक (साधारण) बन्दरने आपकी सोनेकी लंकाको राँड़की झोपड़ीकी तरह खेलमें ही जला डाला (और आप कुछ न कर सके)।

सवैया

राम सो साम किये नित है हित, कोमल काज न कीजिए टांठे।
आपन सूझि कहौं, पिय! बूझिए, जूझिबे जोग न ठाहरु नाठे॥
नाथ! सुनी भृगुनाथ-कथा, बलि बालि गयो चलि बात के सांठे।
भाइ विभीषन जाइ मिल्यो प्रभु आइ परे सुनी सायर-कांठे ॥२८॥

शब्दार्थ—साम = मिलाप, सन्धि। टांठे = कड़ाई।

ठाहरु = स्थान। नाठे = नष्ट होना। बातके सांठे = हठ पकड़नेसे। सायर-कांठे = समुद्रके किनारे।

भावार्थ—हे स्वामी, रामजीसे मेल करनेमें आपकी सदाके लिए भलाई है। आसानीसे सिद्ध होनेवाले काममें कड़ाई न करिये। मैं अपनी समझके अनुसार कहती हूँ, समझ जाइये। रामजीसे लड़ना ठीक नहीं है। इसमें अपना स्थान नष्ट हो जायगा। हे नाथ, आपने परशुरामजीकी कथा सुनी है। आपको यह भी मालूम है कि हठ पकड़नेसे बलवान बालि मारा गया। आपका भाई विभीषण रामजीसे जाकर मिल गया है और सुना है कि रामजी समुद्रके तटपर आ गये हैं।

पालिबे को कपि-भालु-चमू जम काल करालहु को पहरी है।
लंक से बंक महा गढ़ दुर्गम ढाहिबे दाहिबे को कहरी है॥
तीतर-तोम तमीचर-सेन समीर को सूनु बड़ो बहरी है।
नाथ भलो रघुनाथ मिले, रजनीचर-सेन हिये हहरी है॥२९॥

शब्दार्थ—चमू = सेना। पहरी = पहरेदार। ढाहिबे = गिराने। दाहिबे = जलाने। कहरी = क्रोधी। तोम = समूह। सूनु = पुत्र। बहरी = बाज। हहरी = हिम्मत हार गयी है।

भावार्थ—हनुमानजी यमराज और कालसे भी भालुओं और बन्दरोंकी रक्षा करनेके लिए पहरेदारके समान हैं। लंकाके समान बिकट और दुर्गम महान गढ़को गिराने और जलानेके लिए क्रोधी हैं। राक्षसोंकी सेनारूपी तीतरके समूहके लिए वह बाज पक्षी हैं। हे नाथ, रामजीसे सन्धि कर लेनेमें ही भलाई है क्योंकि राक्षसोंकी सेना भयभीत हो गयी है।

कवित्त

रोष्यो रन रावन, बोलाए बीर बानइत,
जानत जे रीति सब संजुग समाज की।
चली चतुरंग चमू, चपरि हने निसान,
सेना सराहन जोग रातिचर-राज की॥
'तुलसी' बिलोकि कपि-भालु किलकत,
ललकत लखि ज्यों कँगाल पातरी सुनाज की।
राम-रुख निरखि हरषे हिय हनुमान,
मानों खेलवार खोली सीसताज बाज की॥३०॥

शब्दार्थ—बीर बानइत = वीरताका बाना धारण करनेवाले। संजुग = युद्ध। चपरि = जल्दीसे। पातरी = पत्तल। सुनाज = सुंदर अन्न (भोजन)। खेलवार = खेलाड़ी, शिकारी। सीस-ताज = टोपी।

भावार्थ—मन्दोदरीके मुखसे रामजीकी प्रशंसा सुनकर रावण क्रुद्ध हो गया। उसने वीरताका बाना धारण करनेवाले योद्धाओं-को जो लड़ाईकी रीतियोंसे परिचित थे, बुलाया। चतुरंगिणी सेना शीघ्रतासे डंका बजाकर चली। रावणकी सेना प्रशंसा करने योग्य थी। तुलसीदासजी कहते हैं कि उसे देखकर बन्दर और भालु प्रसन्न होकर इस प्रकार किलकारी मारने लगे जैसे कंगाल सुन्दर भोजनकी पत्तल देखकर उसे खानेके लिए लाला-यित होता है। रामजीकी रुख देखकर हनुमानजी मन ही मन इस प्रकार प्रसन्न हुए मानों शिकारीने बाजके सिरकी टोपी खोल दी हो।

विशेष

'खोली सीसताज'—शिकार पकड़नेके लिए पाले हुए पक्षीके सिरपर टोपी या ढक्कन चढ़ा रहता है। वह ढक्कन शिकारके समय खोला जाता है।

'चतुरंग चमू'—चतुरंगिणी सेना; जिसमें घुड़सवार, गजारोही, रथारोही और पैदल हों।

साजिकै सनाह गजगाह सउछाह दल,
महाबली धाए बीर जातुधान धीर के।
इहाँ भालु बंदर बिसाल मेरु मंदर से,
लिए सैल साल तोरि नीरनिधि-तीर के॥
'तुलसी' तमकि ताकि भिरे भारी जुद्ध क्रुद्ध,
सेनप सराहैं निज-निज भट भीर के।
रुंडन के मुंड भूमि भूमि झुकरे से नाचैं,
समर सुमार सूर मारे रघुबीर के ॥२१॥

शब्दार्थ—सनाह=कवच। गजगाह=हाथीकी पीठपर रखनेका हौदा, झूल। मेरु=पर्वत। मंदर=मन्दराचल। नीरनिधि=समुद्र। सेनप=सेनापति। रुंड=बिना सिरका धड़। झुकरे=झुँझलाए हुए। सुमार=अच्छी मार, गहरी चोट। सूर=वीर।

भावार्थ—धैर्यवान रावणके अत्यन्त बलवान वीरोंका दल कवच पहनकर और हाथियोंपर हौदा कसकर उत्साहके साथ युद्ध करनेके लिए दौड़ा। इधर रामचन्द्रजीकी ओर मंदराचल पर्वतके समान विशाल वन्दर और भालु समुद्र-तटके पर्वत और

वृक्षोंको उखाड़कर (हाथमें) लिए हुए थे। तुलसीदासजी कहते हैं कि वे वीर क्रुद्ध होकर महान युद्धमें भिड़ गये। दोनों ओर सेनापति अपने अपने दलके वीरोंकी सराहना करने लगे। युद्धके मैदानमें रामचन्द्रके कठिन आघातोंसे कटे हुए वीरोंके झुँझलाये हुए धड़ झूम झूमकर नाचने लगे।

मत्तगयंद सवैया

तीखे तुरंग कुरंग सुरंगनि साजि चढ़े छांटि छैल छबीले।
भारी गुमान जिन्हें मनमें, कबहूँ न भये रनमें तनु ढीले॥
'तुलसी' गज-से लखि केहरि लौं झपटे-पटके सब सूर सलीले।
भूमि परे भट घूमि कराहत, हांकि हने हनुमान हठीले॥३२॥

शब्दार्थ—तीखे = तेज। तुरंग = घोड़े। कुरंग = हरिन। छबीले = सुन्दर। गुमान = घमंड। सलीले = खेलमें। घूमि = चक्कर खाकर। हांकि = ललकारकर।

भावार्थ—जिन राक्षसोंके मनमें (अपनी वीरताका) बड़ा भारी घमंड था और जिनका शरीर युद्धमें कभी ढीला नहीं हुआ था ऐसे छैल-छबीले वीर चुन चुनकर हरिनके समान तेज तथा सुन्दर रंगवाले घोड़ोंको सुसज्जितकर उनपर सवार हुए। तुलसीदासजी कहते हैं कि हठीले हनुमानजी उनको हाथीके समान समझकर सिंहकी भांति ललकारते हुए उनपर टूट पड़े और सब वीरोंको खेलमें ही पटक दिया। वे वीर चक्कर खाकर जमीनपर गिरे और कराहने लगे।

विशेष

१—अलंकार—उपमा।

सूर सँजोइल साजि सुबाजि, सुसेल धरे बगमेल चले हैं।
भारी भुजा भरी, भारी सरीर, बली बिजयी सब भांति भले हैं॥
तुलसी जिन्हैं धाये धुकै धरनीधर, धौरि धकानि सों मेरु हले हैं।
ते रन-तीर्थनि लक्खन लाखन-दानि ज्यों दारिद दाबि दले हैं॥३३॥

शब्दार्थ—सँजोइल = पाले हुए, कोतल, सुसज्जित। सुबाजि = सुन्दर घोड़े। सुसेल = सुन्दर भाला। बगमेल = बागडोरसे बागडोर मिलाकर, कतार। धुकै = धुक धुक करता है। धौर = दौड़। धकानि = धक्कों। लाखन-दानि = लाखों रुपये-का दान करनेवाला।

भावार्थ—कोतल वीर सुन्दर घोड़ोंको साजकर सुन्दर भाला लिये हुए कतार बाँधकर चले। उनकी विशाल भुजाएँ (बलसे) भरी हैं, शरीर भारी है, वे बलवान हैं, विजयी हैं और सब तरहसे अच्छे हैं। तुलसीदास कहते हैं कि (रावणके) उन वीरोंके दौड़नेपर शेषनागकी छाती धुकधुकाने लगती है और दौड़कर धक्का मारनेपर पहाड़ हिल उठते हैं। उन वीरोंको लक्ष्मणजीने रणभूमिमें इस प्रकार मार डाला जिस प्रकार किसी तीर्थस्थानमें लाखों रुपयेका दान देनेवाला दरिद्रताको दबाकर नष्ट कर देता है।

गहि मंदर बंदर भालु चले सो मनो उनए घन सावन के।
'तुलसी' उत झुंड प्रचंड झुके, झपटैं भट जे सुर दावन के॥
बिरुझे बिरुदैत जे खेत अरे, न टरे हठि बैर-बढ़ावन के।
रन मारि मची उपरी-उपरा, भले बीर रघुप्पति रावन के॥३४॥

शब्दार्थ—उनए (उन्नयन) उमड़ आये, लटक गये। सुर-

दावन = देवताओंको दमन करनेवाला, रावण। विरुझे = भिड़ गये। उपरी-उपरा = चढ़ा ऊपरी।

भावार्थ—इधरसे बन्दर और भालु पहाड़ोंको ले-लेकर चले मानों सावनकी घटा उमड़ आयी हो। उधरसे रावणके प्रचंड वीरोंका समूह झपटते हुए टूट पड़ा। वे वीर जो रणक्षेत्रमें अड़ गये थे, भिड़ गये और जबर्दस्ती बैर बढ़ानेके लिए वहांसे नहीं हटे। राम और रावणके अच्छे अच्छे वीरोंकी चढ़ा ऊपरी और मारकाट शुरू हो गयी।

सर तोमर सेल समूह पँवारत, मारत बीर निसाचर के।
इत तें तरु ताल तमाल चले, खर खंड प्रचंड महीधर के॥
तुलसी करि केहरि-नाद भिरे भट खग्ग खगे, खपुवा खरके।
नख दंतन सों भुजदंड बिहंडत, रुंड सों मुंड परे झर के॥३५॥

शब्दार्थ—तोमर = भालेकी तरहका एक प्राचीन अस्त्र। सेल = बरछा। इत तें = इधरसे। खर = तीक्ष्ण। केहरि-नाद = सिंहनाद। खग्ग (खड्ग) = तलवार। खगे = आकाशमें चलनेपर, भाँजनेपर। खपुवा = कायर। खरके = खिसक गये। बिहंडत = काटते हैं। रुंड = कबन्ध, धड़। झरके = झड़कर।

भावार्थ—रावणकी ओरके योद्धा बाण, तोमर और भाले फेंककर मारने लगे। इधरसे (राम-दलकी ओरसे) ताड़, तमाल (आबनूसके पेड़) और पर्वतोंके बड़े बड़े तेज टुकड़े चलने लगे। तुलसीदासजी कहते हैं कि योद्धागण सिंहनाद करते हुए भिड़ गये, उनकी तलवारें आकाशमें थिरकने लगीं। (यह देखकर)

कायर खिसक गये। योद्धागण नाखूनों और दाँतोंसे भुजाओंको काटने लगे और धड़ोंसे सिर झड़कर गिरने लगे।

विशेष

१—अलंकार—विभावना।

२—'खगे'—इस शब्दका अर्थ 'घुस गये' भी होता है।

रजनीचर मत्तगयंद घटा विघटै मृगराज के साज लरै।
झपटै भट कोटि मही पटकै, गरजै रघुवीर की सौंह करै॥
तुलसी उत हाँक दसानन देत, अचेत भे वीर, को धीर धरै?
विरुझो रन मारुत को विरुदैत, जो कालहु काल सो बूझि परै॥२६॥

शब्दार्थ—मत्तगयंद=मतवाले हाथी। घटा=समूह। विघटै=नाश करते हैं। मृगराजके साज=सिंहकी तरह। उत=उधर।

भावार्थ—हनुमानजी सिंहके समान राक्षसरूपी मतवाले हाथियोंके समूहको नष्ट करते हैं। वह श्रीरामचन्द्रकी शपथ करते हुए गर्जन करते हैं और झपटकर करोड़ों योद्धाओंको जमीनपर पछाड़ देते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि उधर रावणके ललकारते ही (बड़े बड़े) वीर अचेत हो जाते हैं। (भला उसकी हुंकार सुनकर) कौन धैर्य धारण कर सकता है? युद्धमें भिड़े हुए पवन-पुत्र हनुमानजी कालको भी कालके समान प्रतीत होने लगे।

जे रजनीचर वीर बिसाल कराल विलोकत काल न खाए।
ते रनरौर कपीस-किसोर बड़े बरजोर, परे फँग पाए॥

लूम लपेटि अकास निहारि कै हांकि हठी हनुमान चलाए ।
सूखि गे गात चले नभ जात, परे भ्रम-बात न भूतल आए ॥३७॥

शब्दार्थ—रनरौर = भयंकर युद्ध । फँग = फन्दा । लूम = पूँछ । भ्रम-बात = बवंडर ।

भावार्थ—जो राक्षस बहुत बड़े वीर हैं, देखनेमें भयंकर हैं, जिन्हें काल भी नहीं खा सका था, उन्हें महा बलवान हनुमानजीने भयंकर युद्धमें अपने फन्देमें फँसा लिया । हठी हनुमानने उन्हें ललकारकर अपनी पूँछमें लपेटकर आकाशकी ओर देखकर (आकाशमें) फेंक दिया । इससे उनका शरीर सूख गया और वे आकाशमें चले जाने लगे । वे बवंडरमें पड़कर (आकाशमें ही नाचने लगे) पृथिवीपर नहीं आये ।

जो दससीस महीधर ईस को, बीस भुजा खुलि खेलन हारो ।
लोकप दिग्गज दानव देव सबै सहमैं सुनि साहस भारो ॥
बीर बड़ो बिरुदैत बली, अजहूँ जग जागत जासु पँवारो ।
सो हनुमान हनी मुठिका, गिरिगो गिरिराज ज्यों गाज को मारो ।३८।

शब्दार्थ—महीधर ईसको = शिवजीका पहाड़, कैलाश । सहमैं = डरते हैं । पँवारो = गाथा । जागत = प्रसिद्ध । गाज = बिजली, वज्र ।

भावार्थ—जो रावण अपनी बीसों भुजाओंसे कैलाश पर्वतके साथ खुलकर खेलनेवाला था अर्थात् जिसने कौतुकमें ही कैलाशको उठा लिया था । जिसके महान साहसको सुनकर लोकपाल, दिग्गज, राक्षस, देवता सभी डर जाते हैं । जो बड़ा

वीर, बलका बाना धारण करनेवाला था, जिसकी वीर-गाथा अब भी संसारमें प्रसिद्ध है, उसे जब हनुमानजीने मुक्केसे मारा तो वह इस प्रकार गिरा जिस प्रकार वज्रका मारा हुआ हिमाचल पर्वत गिर जाता है।

दुर्गम दुर्ग, पहार तें भारे, प्रचंड महा भुजदंड बने हैं।
लक्ख में पक्खर तिक्खन तेज जे सूर-समाजमें गाज गने हैं॥
ते बिरुदैत बली रन-बाँकुरे हांकि हठी हनुमान हने हैं।
नाम लै राम दिखावत बंधुको, घूमत घायल घाय घने हैं॥२९॥

शब्दार्थ—पक्खर = कवच। तिक्खन = तीक्ष्ण। गाज गने हैं = वज्रवत् गिने जाते हैं। घाय = घाव। घने = बहुतसे।

भावार्थ—जो दुर्गम किला और पहाड़से भी अधिक भारी हैं, जिनकी भुजाएँ अत्यधिक प्रचंड हैं। जो लाखोंकी रक्षा करनेमें कवच-स्वरूप हैं, जो अत्यन्त तेजस्वी हैं और वीरोंमें वज्रवत् माने जाते हैं। उन यशस्वी, बलवान और रणबाँकुरे राक्षसोंको हठी हनुमानने ललकारकर मार डाला। रामजी उनका (घायलों का) नाम लेकर अपने भाई लक्ष्मणको दिखलाते हैं कि ये जो बहुतसे घावोंसे घायल घूम रहे हैं, सबके सब हनुमानजीके मारे हुए हैं।

कवित्त

हाथिन सों हाथी मारे, घोरे घोरे सों सँहारे,
रथनि सों रथ बिदरनि, बलवान की।
चंचल चपेट चोट चरन चकोट चाहैं,
हहरानी फौजैं भहरानी जातुधान की॥

बार-बार सेवक-सराहना करत राम,
'तुलसी' सराहैं रीति साहव सुजान की।
लाँबी लूम लसत लपेटि पटकत भट,
देखौ देखौ, लषन ! लरनि हनुमान की ॥४०॥

शब्दार्थ—बिदरनि = विदीर्ण करना, तोड़ना। चपेट = थप्पड़। चकोट = नोचना। भहरानी = गिर गयी। सुजान = चतुर। लसत = सुशोभित। लरनि = लड़ाई लड़ना।

भावार्थ—बली हनुमान शत्रुदलके हाथियोंको हाथियोंसे, मारते हैं, घोड़ोंको घोड़ोंसे मारते हैं और रथोंको रथोंसे तोड़ डालते हैं। उनके चंचल थप्पड़ोंकी चोट और पैरोंकी खरोंच देखकर रावणकी सेना हहर गयी और गिर गयी। रामजी बार बार अपने सेवक हनुमानकी प्रशंसा करते हैं और लक्ष्मणजीसे कहते हैं कि देखो, लक्ष्मण ! हनुमानका लड़ना देखो। वह अपनी लम्बी पूँछमें योद्धाओंको लपेटकर पटकते हुए कैसे सुशोभित हो रहे हैं। तुलसीदास अपने चतुर स्वामीकी रीतिकी (सेवककी बारंबार प्रशंसा करनेकी) सराहना करते हैं।

दबकि दबोरे एक, बारिधि में बोरे एक,
मगन मही में एक गगन उड़ात हैं।
पकरि पछारे कर, चरन उखारे एक,
चीरि फारि डारे, एक मींजि मारे लात हैं॥
'तुलसी' लखत राम, रावन, बिबुध, बिधि,
चक्रपानि, चंडीपति, चंडिका सिहात हैं।

वड़े वड़े बानइत वीर वलवान वड़े,
जातुधान जूथप निपाते वातजात हैं ॥४१॥

शब्दार्थ—दबकि = दबकर, जमीनसे चिपककर। दबोरे = दबा दिया। मगन = मग्न, समा गया। विबुध = देवता। विधि = ब्रह्मा। चक्रपानि = विष्णु। चंडीपति = शिव। चंडिका = काली। सिहात हैं = ललचते हैं। जूथप = सेनापति। निपाते = मार डाला।

भावार्थ—हनुमानजीने किसीको दबककर दबोच दिया, किसीको समुद्रमें डुबा दिया, किसीको पृथिवीपर पछाड़ दिया किसीको आकाशमें फेंक दिया। किसीका हाथ पकड़कर पछाड़ दिया, किसीका पैर उखाड़ लिया, किसीको चीर-फाड़ डाला, किसीको पैरोंसे रौंदकर मार डाला। तुलसीदास कहते हैं कि हनुमानजीने वड़े वड़े वलवान, वीरताका बाना धारण करनेवाले राक्षसोंको मार डाला। यह देखकर रामचन्द्रजी, रावण, देवता, ब्रह्मा, विष्णु, महेश और चंडिका ये सब ललचने लगे।

प्रवल प्रचंड वरिवंड वाहुदंड वीर,
धाये जातुधान हनुमान लियो घेरि कै।
महावल पुंज कुंजरारि ज्यों गरजि भट,
जहाँ तहाँ पटके लँगूर फेरि फेरि कै॥
मारे लात, तोरे गात, भागे जात, हा हा खात,
कहैं 'तुलसीस' राखि राम की सौं टेरि कै।
ठहर ठहर परे कहरि कहरि उठैं,
हहरि हहरि हर सिद्ध हँसे हेरि कै ॥४२॥

भावार्थ—बरिबंड = बलवान । कुंजरारि = हाथीका शत्रु, सिंह । हाहा खात = दीनता दिखलाते हैं । टेरिकै = पुकारकर । हेरिकै = देखकर ।

भावार्थ—बड़े बड़े प्रचंड बलवान राक्षस-वीरोंने दौड़कर चारो ओरसे हनुमानजीको घेर लिया। महा बलवान हनुमानजी सिंहकी तरह गरजे और पूँछ घुमाकर उन योद्धाओंको इधर उधर पटक दिया। उन्होंने बहुतोंको पैरोंसे मारा, बहुतोंका शरीर ही तोड़-मरोड़ दिया; राक्षस हाय हाय करते हुए भागने लगे और पुकारकर कहने लगे 'तुम्हें रामकी शपथ है' (अब न मारो, रक्षा करो)। जगह जगह पड़े हुए राक्षस रह रहकर कराह उठते हैं। उन्हें देखकर शिवजी और सिद्ध दंग होकर हँस पड़े।

जाको बाँकी बीरता सुनत सहमत सूर,
जाकी आँच अजहूँ लसत लंक लाह सी।
सोई हनुमान बलवान बाँके बानइत,
जोहि जातुधान-सेना चले लेत थाह सी॥
कंपत अकंपन, सुखात अतिकाय काय,
कुंभऊकरन आइ रह्यो पाइ आह सी।
देखे गजराज मृगराज ज्यों गरजि धायो,
वीर रघुबीर को समीर सूर साहसी ॥४३॥

शब्दार्थ—सहमत = लज्जित होते हैं। आँच = तेज। बान-इत = बानावाले। जोहि = देखकर। थाह = अन्दाजा। काय = शरीर ।

भावार्थ—जिसकी प्रचंड वीरताको सुनते ही वीरलोग लज्जित हो जाते हैं, जिनकी (लगायी हुई आगकी) आँचसे अब भी लंका पिघली हुई लाह सी दिखायी देती है। वही श्रेष्ठ वीरताका बाना धारण करनेवाले हनुमानजी राक्षस सेनाको देखकर उसके बलकी थाह लेते हुए चले। (उनको देखकर) अकम्पन भी काँप उठा, अतिकायका शरीर सूख गया और कुम्भकर्ण भी आहें भरकर रह गया। रघुबीरके वीर पवन-पुत्र साहसी हनुमानजी राक्षसोंपर इस प्रकार झपटे जैसे हाथीको देखकर सिंह टूटता है।

झूलना छन्द

मत्तभट - मुकुट - दसकंध - साहस - सइल,
सृंग - बिद्दरनि जनु बज्रटाँकी ।
दसन धरि धरनि चिक्करत दिग्गज कमठ,
सेष संकुचित, संकित पिनाकी ॥
चलित महि मेरु, उच्छलित सायर सकल,
बिकल बिधि बधिर दिसि बिदिसि झाँकी ।
रजनिचर-घरनि घर गर्भ-अर्भक स्रवत,
सुनत हनुमान की हाँक बाँकी ॥४४॥

शब्दार्थ—मत्तभट = मतवाले योद्धा। मुकुट = शिरोमणि। साहस-सइल-सृंग = जिसका साहस पर्वतकी चोटीके समान हो। बिद्दरनि = विदीर्ण करनेके लिए। टाँकी = छेनी। दसन = दाँत। पिनाकी = शिव। सायर = समुद्र। अर्भक = बच्चा। स्रवत = गिरते हैं।

भावार्थ—मतवाले वीरोंमें शिरोमणि रावणके साहसरूपी पर्वतकी चोटीको विदीर्ण करनेके लिए हनुमानजीकी प्रचंड ललकार मानो वज्रसे बनी छेनी है। उस ललकारको सुनकर दिशाओंके हाथी पृथिवीको दाँतोंसे पकड़कर चिग्घाड़ने लगे, कच्छप और शेषनाग सिकुड़ गये और शिवजी सशंकित हो गये। पृथिवी और पहाड़ हिलने लगे, सभी समुद्र उछने लगे, ब्रह्मा व्याकुल होकर दिशा विदिशाओंमें (इधर-उधर) झाँकने लगे (कि भागकर कहाँ जायँ) और राक्षसोंके घरोंमें उनकी गर्भिणी स्त्रियोंके बच्चे गर्भसे गिरने लगे।

कौन की हाँक पर चौंक चंडीस, विधि,
चंडकर थकित फिरि तुरँग हांके।
कौन के तेज बलसीम भट भीम से,
भीमवा निरखि कर नयन ढांके॥
दास तुलसीस के विरुद वरनत विदुष,
वीर बिरुदैत वर वैरि धांके।
नाक नरलोक पाताल कोउ कहत किन,
कहाँ हनुमानसे वीर बांके॥४५॥

शब्दार्थ—चंडीस = शिव। चंडकर = सूर्य। तुरँग = घोड़ा। विरुद = यश। विदुष = पंडित। धांके = धाक जमायी। नाक = स्वर्ग। किन = क्यों नहीं।

भावार्थ—शिव और ब्रह्मा किसकी हाँकपर चौंक पड़ते हैं? किसकी ललकार सुनकर सूर्यने अपने स्थिर घोड़ोंको पुनः हाँका था? किसके तेजकी भयंकरता देखकर भीमके समान अत्यन्त

वलवान वीरोंने अपने हाथोंसे अपनी आँखें ढँक ली थीं ? हनुमानजीके यशका वखान विद्वानतक करते हैं। हनुमानजीने अपनी वीरताकी धाक यशस्वी वीरों और वलवान शत्रुओंपर जमा दी। स्वर्ग, मर्त्य और पाताललोकमें हनुमानके समान कहाँ वीर हैं ? कोई क्यों नहीं वतलाता ?

जातुधानावली - मत्त - कुंजर - घटा,
निरखि मृगराज जनु गिरि तें टूट्यो।
विकट चटकन चपट, चरन गहि पटकि महि,
निघटि गए सुभट, सत सवको छूट्यो ॥
'दास तुलसी' परत धरनि, धरकत झुकत,
हाट सी उठति जंवुकनि लूट्यो।
धीर रघुवीर को वीर रन-वाँकुरो,
हांकि हनुमान कुलि कटक कूट्यो ॥४६॥

शब्दार्थ—जातुधानावली = राक्षसोंकी पंक्ति। कुंजर = हाथी। घटा = समूह। निरखि = देखकर। निघटि गए = नष्ट हो गये। सत = प्राण। हाट = वाजार। जंवुकनि = सियारों। कुलि = सव।

भावार्थ—मतवाले हाथियोंके समान राक्षसोंके समूहको देखकर हनुमानजी मानों पहाड़से सिंहकी भांति टूट पड़े। वह राक्षसोंके पैर पकड़कर जमीनपर पटक देते हैं और भयंकर थप्पड़ोंसे मारते हैं। इससे राक्षस वीरोंके प्राण निकल गये और वे सव वर्वाद हो गये। तुलसीदास कहते हैं कि वे राक्षस धड़कती हुई छातीसे (उठनेके लिए) झुकते हैं किन्तु फिर

जमीनपर गिर जाते हैं। सियारोंने इस तरह मांसको लूटना शुरू कर दिया मानों बाजार उठा जा रहा हो। धैर्यवान रामचन्द्रजीके रण-बाँकुरे वीर हनुमानने ललकारकर राक्षसोंकी सारी सेनाको मारा।

छप्पय

कतहुँ बिटप भूधर उपारि परसेन बरक्खत।
कतहुँ बाजि सों बाजि मर्दि, गजराज करक्खत।
चरन-चोट चटकन-चकोट अरि उर सिर बज्जत।
बिकट कटक बिद्दरत, बीर बारिद जिमि गज्जत।
लंगूर लपेटत पटकि भट, 'जयति राम जय' उच्चरत।
तुलसीस पवन-नंदन अटल जुद्ध क्रुद्ध कौतुक करत ॥४६॥

शब्दार्थ—बरक्खत = बरसते हैं। बाजि = घोड़ा। करक्खत (कर्षण) = खींचते हैं। लंगूर = पूँछ। गज्जत = गरजते हैं। उच्चरत = उच्चारण करते हैं।

भावार्थ—हनुमानजी कहीं तो वृक्ष और पहाड़ उखाड़कर शत्रु-सेनापर बरसाते हैं, कहीं घोड़ेके ऊपर घोड़ेको पटककर मारते हैं और हाथियोंको खींच लेते हैं। कहीं शत्रुओंकी छाती और सिरपर लातोंकी मार, थप्पड़ और सिरपर नखोंकी खरोंचका शब्द होता है। कहीं बादलकी तरह गर्जन करते हुए वीर हनुमानजी राक्षसोंकी भयंकर सेनाका संहार करते हैं। कहीं पूँछमें लपेटकर योद्धाओंको पटककर 'रामचन्द्रजीकी जयजयकार' करते हैं। तुलसीदासके स्वामी पवन-पुत्र हनुमान युद्धमें अटल और क्रुद्ध होकर (इस प्रकार) कौतुक कर रहे हैं।

कवित्त

अंग अंग दलित ललित फूले किंसुक से,
हने भट लाखन लखन जातुधान के।
मारि कै पछारि कै उपारि भुजदंड चंड,
खंड खंड डारे ते विदारे हनुमान के ॥
कूदत कवंध के कदंव वंव सी-करत,
धावत दिखावत हैं लाघौ राघौ वान के।
'तुलसी' महेस, विधि, लोकपाल, देव गन,
देखत विमान चढ़े कौतुक मसान के ॥४८॥

शब्दार्थ—दलित = घायल। ललित = सुन्दर। किंसुक = पलाश (इसका फूल लाल होता है)। कदंव = समूह। वंव = युद्धक्षेत्रमें वीरोंका नाद। लाघौ = शीघ्रता। मसान (श्मशान) = युद्धभूमि।

भावार्थ—रावणके लाखों योद्धा जिनके अंग अंग घायल होनेके कारण (खूनसे तर) पलाश पुष्पके समान सुन्दर लाल लाल दिखायी दे रहे हैं, वे लक्ष्मणजीके मारे हुए हैं। जो राक्षस पटककर मारे गये हैं और जिनकी प्रचंड भुजाएँ उखाड़कर टुकड़े टुकड़े कर दी गयी हैं, वे हनुमानके मारे हुए हैं। जो कबन्धों (धड़ों) के समूह कूदते हुए रणनाद-सा मचाते हुए दौड़ रहे हैं वे रामजीके बाणोंकी शीघ्रताका प्रदर्शन कर रहे हैं। तुलसीदास कहते हैं कि शिव, ब्रह्मा, लोकपाल और देवतागण विमानोंपर बैठे हुए युद्धभूमि-रूपी श्मशानका कौतुक देख रहे हैं।

लोथिन सों लोहू के प्रवाह चले जहाँ तहाँ,
मानहुँ गिरिन गेरु-झरना झरत हैं ।
सोनित-सरित घोर, कुंजर करारे भारे,
कूल तें समूल वाजि-विटप परत हैं ॥
सुभट सरीर नीरचारी भारी भारी तहाँ,
सूरनि उछाह, कूर कादर डरत हैं ।
फेकरि फेकरि फेरु फारि फारि पेट खात,
काक कंक बकुल कोलाहल करत हैं ॥४९॥

शब्दार्थ—लोथिन = शवों, मुर्दों । सोनित = रक्त । कूल = किनारा । नीरचारी = जलचर । फेकरि फेकरि = चिल्ला चिल्लाकर । फेरु = सियार । काक = कौओं । कंक = गिद्ध ।

भावार्थ—जहाँ तहाँ लाशोंसे खूनकी इस प्रकार धारा वह चली मानों पर्वतोंसे गेरुके झरने झर रहे हैं । बड़े बड़े हाथी ही इस रक्तकी भयंकर नदीके करारे हैं और घोड़े ही किनारोंके वृक्ष हैं जो कि जड़से गिर पड़ते हैं । वहाँपर योद्धाओंके बड़े बड़े शरीर ही जलजन्तु हैं । (इस भयंकर नदीको देखकर) वीर-लोग उत्साहित होते हैं किन्तु कायर डर जाते हैं । सियार चिल्लाते हुए लाशोंका पेट फाड़ फाड़कर खा रहे हैं और कौए, गिद्ध तथा बगुले शोर मचा रहे हैं ।

विशेष

अलंकार—रूपक और उत्प्रेक्षा ।

ओझरी की झोरी कांधे, आँतनिकी सेल्ही वांधे,
मूँ ड़ के कमंडलु खपर किये कोरि कै ।

जोगिनी झुटुंग झुंड झुंड बनी तापसी-सी,
तीर तीर बैठीं सो समर-सरि खोरि कै ॥
सोनित सों सानि सानि गूदा खात सतुआसे,
प्रेत एक पियत बहोरि घोरि घोरि कै।
'तुलसी' बैताल भूत साथ लिए भूतनाथ,
हेरि हेरि हँसत हैं हाथ हाथ जोरि कै ॥५०॥

शब्दार्थ—ओझरी = पेटकी वह थैली जिसमें भोजन किया हुआ पदार्थ रहता है। सेल्ही = सिरपर बाँधनेका रेशमी वस्त्र। कोरिकै = खुरचकर । झुटुंग = खड़े और बिखरे बालोंवाली, झोंटेवाली। खोरिकै = स्नान करके। भूतनाथ = शिवजी।

भावार्थ—बड़े बड़े झोंटेवाली झुंडकी झुंड योगिनियाँ ओझरी-की झोली कन्धेपर लटकाये और अँतड़ियोंकी सेल्ही सिर पर बांधे राक्षस-मुंडका कमंडलु एवं उसीको खुरचकर खप्पर बनाकर लिये तपस्विनियोंका-सा वेष बनाये रण-भूमिकी नदीमें नहाकर किनारे किनारे बैठी हैं। कुछ प्रेत गूदेको खूनमें सानकर सतुआ-की तरह खा रहे हैं और कोई उसे शर्बतकी भांति बारम्बार घोल घोलकर पीता है। तुलसीदासजी कहते हैं कि शिवजी बैतालों और भूतोंको साथ लिये हुए घूम रहे हैं और यह दशा देखकर एक दूसरेका हाथ पकड़कर हँसते हैं।

सवैया

राम-सरासन तें चले तीर, रहे न सरीर, हड़ावरि फूटी।
रावन धीर न पीर जनी, लखि लैकर खप्पर जोगिनि जूटी ॥

सोनित छींटि-छटान-जटे 'तुलसी' प्रभु सोहैं, महा छवि छूटी।
मानो मरकत-सैल बिसाल में फैलि चली वर बीरबहूटी ॥५१॥

शब्दार्थ—हड़ावरि = हड्डी। छींटि-छटानि = छींटोंकी शोभा। जूटी = एकत्र हुई। मरकत सैल = मरकतमणिका पहाड़। वीरबहूटी = मखमल-सा कोमल लाल रंगका बरसाती कीड़ा, इस कीड़ेको कहीं कहीं धोबिन भी कहते हैं।

भावार्थ—रामचन्द्रजीके धनुषसे चले हुए बाण रावणके शरीरमें ही नहीं रह गये बल्कि हड्डी फोड़कर बाहर निकल गये। लेकिन धैर्यवान रावणको कुछ भी पीड़ा नहीं हुई। उसके शरीर-से खूनकी धारा बहती देखकर योगिनियाँ हाथोंमें खप्पर लेकर वहाँ एकत्र हो गयीं। तुलसीदासजी कहते हैं कि खूनके छींटोंकी छटासे रामचन्द्रजी इस प्रकार अत्यन्त सुशोभित हुए मानों मरकतमणिके विशाल पर्वतपर श्रेष्ठ वीरबहूटियाँ फैली हुई हों।

मनहरण कवित्त

मानी मेघनाद सों प्रचारि भिरे भारी भट,
आपने अपन पुरुषारथ न ढील की।
घायल लखनलाल लखि बिलखाने राम,
भई आस सिथिल जगन्निवास-दील की॥
भाई को न मोह, छोह सीय को न, तुलसीस
कहैं 'मैं बिभीषन की कछु न सबील की'।
लाज बाँह बोले की, नेवाजे की सँभार सार,
साहेब न रामसे, बलैया लेउँ सील की ॥५२॥

शब्दार्थ—ढील की = देर की, कम किया। बिलखाने = विलाप करने लगे। सबील = प्रबन्ध। बाँह बोले की = बाँह पकड़ने की, शरणमें लेनेकी।

भावार्थ—मेघनाद-सरीखे बड़े बड़े अभिमानी वीर ललकार-कर भिड़ गये और किसीने भी अपने पुरुषार्थमें कमी नहीं की। (मेघनादद्वारा) अपने भाई लक्ष्मणको घायल देखकर रामजी विलाप करने लगे और उनके हृदयकी सारी आशाएँ शिथिल हो गयीं। उन्होंने कहा, न तो मुझे लक्ष्मणका मोह है और न सीताका ही; मुझे दुःख केवल इस बातका है कि मैंने विभीषणके लिए कुछ भी प्रबन्ध नहीं किया। बाँह पकड़नेकी लज्जा रखने-वाला और गरीब-निवाज नामकी मर्यादाका सम्भार करनेवाला रामजीकी तरह दूसरा कोई स्वामी नहीं है। ऐसे शील और स्वभावकी मैं बलैया लेता हूँ।

सवैया

कानन बास, दसानन सो रिपु, आनन श्री ससि जीति लियो है।
बालि महा बलसालि दल्यो, कपि पालि, बिभीषन भूप कियो है॥
तीय हरी, रन बंधु पर्‌यौ, पै भर्‌यौ सरनागत सोच हियो है।
बाँह-पगार उदार कृपालु, कहाँ रघुबीर-सो बीर बियो है? ॥५३॥

शब्दार्थ—कानन = वन। आनन = मुख। श्री = शोभा। ससि = चन्द्रमा। तीय = स्त्री। बाँह-पगार = शरणागतोंकी रक्षा करनेके लिए जिनकी भुजाएँ चहारदीवारीके समान हैं। बियो = दूसरा।

भावार्थ—रामचन्द्रजी वनमें रहते हैं और रावणके समान

(बलवान) उनका शत्रु है फिर भी उनके मुखकी शोभाने चन्द्रमाको जीत लिया है। उन्होंने महा शक्तिशाली बालिको मारकर सुग्रीवकी रक्षा की है और विभीषणको राजा बनाया है। उनकी स्त्रीका हरण हुआ है और भाई युद्धक्षेत्रमें घायल पड़ा है; किन्तु (इन बातोंकी जरा भी चिन्ता नहीं) उनका हृदय शरणागत (विभीषण) के लिए चिन्तासे भरा हुआ है। शरणागतोंकी रक्षाके लिए चहारदीवारीके समान भुजाओंवाले, उदार और दयालु रामचन्द्रजीकी तरह दूसरा वीर कहाँ है ?

लीन्हों उखारि पहार बिसाल, चल्यो तेहि काल, बिलंब न लायो।
मारुत-नंदन मारुतको, मन को, खगराज को बेग लजायो॥
तीखी तुरा 'तुलसी' कहतो, पै हिये उपमा को समाउ न आयो।
मानो प्रतच्छ परब्बतकी नभ लीक लसी कपि यों धुकि धायो।४५।

शब्दार्थ—खगराज = गरुड़। तीखी = तीक्ष्ण, अत्यन्त। तुरा = वेग। लसी = सुशोभित हुई। धुकि धायो = तेजीसे दौड़े।

भावार्थ—हनुमानजीने (संजीवनी बूटी न पहचान सकनेके कारण) बड़े भारी पहाड़को उखाड़ लिया और उसी समय उसे लेकर वहांसे चल दिया, जरा भी देर नहीं लगायी। हनुमानजीने वेगसे चलनेमें हवा, मन और गरुणको भी लज्जित कर दिया। तुलसीदास कहते हैं कि मैं उस तीव्र गतिका वर्णन तो करता हूँ पर हृदयमें कोई उपमा नहीं दिखलायी पड़ती। हनुमानजी आकाशमें इस वेगसे दौड़े मानों आकाशमें पहाड़की लकीरसी खींची हुई हो !

कवित्त

चल्यो हनुमान सुनि जातुधान कालनेमि,
पठयो, सो मुनि भयो, पायो फल छलि कै।
सहसा उखारो है पहार बहु जोजन को,
रखवारे मारे भारे भूरि भट दलि कै॥
वेग बल साहस सराहत कृपानिधान,
भरत की कुसल अचल ल्यायो चलि कै।
हाथ हरिनाथ के बिकाने रघुनाथ जनु,
सीलसिंधु तुलसीस भलो मान्यो भलि कै॥५५॥

शब्दार्थ—योजन = चारकोस। भूरि = बहुत। हरिनाथ = बन्दरोंका स्वामी। भलि कै = अच्छी तरह।

भावार्थ—रावणने संजीवनी बूटी लानेके लिए हनुमानजीका जाना सुनकर (उनके मार्गमें बाधा डालनेके लिए) कालनेमिको भेजा। उसने मुनिका वेष धारण किया और हनुमानको छलनेका फल पाया। हनुमानजीने कई योजन लम्बे पर्वत (द्रोणगिरि) को उखाड़ लिया और उसके रक्षकों तथा और भी बहुतसे वीरोंको मार डाला। रामचन्द्रजी हनुमानजीकी गति, बल और साहसकी सराहना करते हैं क्योंकि वह भरतकी कुशल और पर्वत लाये। तुलसीदासजी कहते हैं कि इससे रामजी मानो हनुमानजीके हाथ बिक गये। शीलके समुद्र श्री रामचन्द्रजीने हनुमानजीकी इन की हुई भलाइयोंको अच्छी तरह माना अर्थात् परम कृतज्ञ हुए।

विशेष

१—'कालनेमि'— नामक राक्षस था। रावणकी आज्ञासे

यह कपट वेष धारणकर हनुमानजीको छलना चाहता था। जब हनुमानजीको उसके कपट वेषका रहस्य मालूम हो गया तब उन्होंने उसे तुरन्त ही मार डाला।

२—'रखवारे'—द्रोणगिरिकी रक्षाके लिए इन्द्रकी ओरसे रक्षक थे। रक्षकोंके मना करनेपर हनुमानजीने उन्हें पीटा। यह समाचार पाकर इन्द्रने बहुतसे वीरोंको भेज दिया। किन्तु हनुमानजीने उन्हें भी मारा।

बापु दियो कानन, भो आनन सुभानन सो,
 वैरी भो दसानन सो, तीय को हरन भो।
बालि बलसालि दलि, पालि कपिराज को,
 बिभीषन नेवाजि, सेतुसागर तरन भो॥
घोर रारि हेरि त्रिपुरारि बिधि हारे हिए,
 घायल लखन वीर बानर-बरन भो।
ऐसे सोक में बिलोक कै बिसोक पल ही में,
 सब ही को 'तुलसी' को साहिब सरन भो॥५६॥

शब्दार्थ—सुभानन = प्रसन्न मुख। त्रिपुरारि = शिवजी। बानर-बरन = लाल रंग।

भावार्थ—पिताने वनवास दिया, किन्तु रामजीका मुख प्रफुल्लित हुआ। रावण-सरीखा वीर शत्रु हुआ और स्त्रीका हरण हुआ। उन्होंने बलवान बालिको मारकर सुग्रीवकी रक्षा की और विभीषणको शरणमें लेकर पुलद्वारा समुद्रको पार किया। रावणका भयंकर युद्ध देखकर शिव और ब्रह्माका दिल छोटा हो गया। वीर लक्ष्मणजी घायल होकर लाल वर्ण हो गये अर्थात्

खूनसे तर हो गये। रामचन्द्रजी ऐसे शोकके समय तीनों लोकों-को पलभरमें शोक-रहित करके सबके लिए शरण देनेवाले हुए।

सवैया

कुंभकरन्न हन्यो रन राम, दल्यो दसकंधर, कंधर तोरे।
पूषन-वंस-विभूषन-पूषन तेज प्रताप गरे अरि-ओरे॥
देव निसान बजावत गावत, सावँत गो, मनभावत भोरे।
नाचत वानर भालु सबै 'तुलसी' कहि 'हारे! हहा भैया हो रे'॥५७॥

शब्दार्थ—कंधर = कन्धा। पूषन वंस = सूर्यवंश। गरे = गल गये। अरि = शत्रु। ओरे = ओले। सावँत (सामन्त) = राजा। मन-भावत = मनचाही।

भावार्थ—रामजीने युद्धमें कुम्भकर्णको मारा और रावणके कन्धे तोड़कर उसे मारा। सूर्यवंशको सुशोभित करनेवाले सूर्य-रूपी रामजीके तेज और प्रतापसे शत्रु रूपी ओले गलकर नष्ट हो गये। देवतागण डंका बजाकर गाते हैं और कहते हैं कि रावण मारा गया और (हमलोगोंकी) मनचाही बात पूरी हुई। बन्दर और भालु नाचते हैं और कहते हैं 'अहा-हा भाइयो, राक्षस हार गये।

कवित्त

मारे रन रातिचर, रावन सकुल-दल,
अनुकूल देव मुनि फूल बरषतु हैं।
नाग नर किन्नर बिरंचि हरि हर हेरि,
पुलक सरीर, हिए हेतु हरषतु हैं॥

वाम ओर जानकी कृपानिधानके विराजैं,
देखत विषाद मिटै मोद करषतु हैं।
आयसु भो लोकनि सिधारे लोकपाल सबै,
'तुलसी' निहाल कै कै दियो सरषतु हैं ॥५८॥

शब्दार्थ—अनुकूल = प्रसन्न। किन्नर = एक प्रकारके देवता, जिनका मुख घोड़ेके समान होता है। हेतु = प्रेम। निहाल = सन्तुष्ट। सरषतु, परवाना।

भावार्थ—रामजीने राक्षसोंको और परिवार-सहित रावण-को मार डाला। इससे प्रसन्न होकर देवता और मुनि उनपर पुष्प-वर्षा करने लगे। यह देखकर नाग, मनुष्य, किन्नर, ब्रह्मा, विष्णु और शिवका शरीर रोमांचित हो गया और हृदय प्रेम रहनेके कारण हर्षित हो उठे। रामजीकी बाईं ओर सीताजी विराजमान हैं। देखते ही दुःख दूर हो जाता है और प्रसन्नता चढ़ जाती है। रामजीकी आज्ञा पाकर सब लोकपाल अपने-अपने लोकोंको चले। तुलसीदास कहते हैं कि रामजीने मनोकामना पूरी करके उन्हें सरखत दे दिया।



उत्तरकाण्ड



सवैया

बालि से बीर बिदारि सुकंठ थप्यो, हरषे सुर बाजने बाजे।
पल में दल्यो दासरथी दसकंधर, लंक बिभीषन राज बिराजे॥
राम-सुभाव सुने 'तुलसी' हुलसे अलसी, हम से गलगाजे।
कायर कूर कपूतन की हद तेऊ गरीब-नेवाज नेवाजे॥१॥

शब्दार्थ—बिदारि = विदीर्ण करके। सुकंठ = सुग्रीव। दासरथी = दशरथके पुत्र रामचन्द्र। हम से = हमारे समान। गलगाजे = डींग मारने लगे। नेवाजे = कृपा की।

भावार्थ—रामजीने बालिके समान वीरको मारकर सुग्रीवको राजसिंहासनपर बिठाया, इससे देवता हर्षित हुए और (देवलोकमें प्रसन्नता सूचक) बाजे बजे। रामचन्द्रजीने क्षणभरमें रावणको मारडाला और लंकामें विभीषण राज-सिंहासनपर विराजमान हुआ। तुलसीदास कहते हैं कि रामचन्द्रजीका स्वभाव सुनकर हमारे समान आलसी प्रसन्न हुए और डींग मारने लगे। अत्यन्त कायर, क्रूर और कुपूतोंपर भी रामजीने कृपा की।

बेद पढ़ैं बिधि, संभु सभीत पुजावन रावन सों नित आवैं।
दानव देव दयावने दीन दुखी दिन दूरहि तें सिर नावैं।

ऐसेउ भाग भगे दसभाल तें जो प्रभुता कबि-कोबिद गावैं।
राम से वाम भए तेहि वामहि वाम सबै सुख संपति लावैं ॥२॥

शब्दार्थ—सभीत = भयके सहित, डरकर। दानव = राक्षस। दयावने = दयनीय। भगे = समाप्त हो गये। बाम = प्रतिकूल। कोबिद = पंडित। वामहि = दुष्टको।

भावार्थ—जिस रावणके यहाँ ब्रह्मा (आकर) वेद पढ़ते हैं, शिवजी भयभीत होकर नित्य पूजा लेने आते हैं, दयाके पात्र दीन और दुखी रहनेवाले राक्षस और देवता प्रतिदिन दूरहीसे प्रणाम करते हैं, ऐसे प्रतापी रावणका भाग्य भी (समयके फेरसे) उसे छोड़कर चला गया। रामजीकी जिस प्रभुताकी प्रशंसा कवि और पंडित करते हैं वह यह है कि रामचन्द्रजीसे विमुख होनेवाले दुष्टोंसे सभी सुख-सम्पत्ति विमुख हो जाती है।

वेद विरुद्ध, मही मुनि साधु ससोक किए, सुरलोक उजारो।
और कहा कहौं तीय हरी, तबहूँ करुनाकर कोप न धारो॥
सेवक-छोह तें छाँड़ी छमा, 'तुलसी' लख्यो राम सुभाव तिहारो।
तौ लौं न दाप दल्यो दसकंधर, जौलौं बिभीषन लात न मारो॥३॥

शब्दार्थ—धारो = धारण किया। तौ लौं = तबतक। दाप (दर्प) = घमंड। जौ लौं = जबतक।

भावार्थ—रावणने मुनियों, साधुओं और पृथ्वीभरको वेद-विरुद्ध कार्य करके शोकसे युक्त कर दिया और देवलोकको उजाड़ डाला। और कहाँतक कहूँ उसने रामचन्द्रजीकी स्त्रीको भी हर लिया, तब भी दयालु रामचन्द्रजीने क्रोध नहीं किया।

तुलसीदास कहते हैं कि हे रामचन्द्रजी, मैंने आपका स्वभाव ताड़ लिया। आपने सेवक (विभीषण) के छोहसे ही अपनी स्वाभाविक क्षमाशीलताको छोड़ा था। आपने रावणके घमंडको तबतक चूर्ण नहीं किया जबतक उसने आपके सेवक विभीषणको लात नहीं मारी थी।

सोक-समुद्र निमज्जत काढ़ि कपीस कियो जग जानत जैसो।
नीच निसाचर वैरी को बंधु बिभीषन कीन्ह पुरंदर कैसो॥
नाम लिये अपनाइ लियो, 'तुलसी' सो कहौ जग कौन अनैसो।
आरत-आरति-भंजन राम, गरीब-निवाज न दूसर ऐसो॥४॥

शब्दार्थ—निमज्जत = डूबते हुए। पुरंदर = इन्द्र। कैसो = कासा। अनैसो = बुरा। आरत = दुखी।

भावार्थ—रामजीने शोक-सागरमें डूबते हुए सुग्रीवको निकालकर जैसा (सुन्दर व्यवहार उसके साथ) किया उसे संसार जानता है। नीच राक्षस और शत्रु रावणके भाई विभीषणको इन्द्रके समान बना दिया। कहिये, संसारमें तुलसीके समान बुरा दूसरा कौन है, किन्तु उसे (तुलसीको) भी केवल नाम लेनेसे ही उन्होंने अपना लिया। रामजी दुखियोंके दुखको दूर करनेवाले हैं। ऐसा दीनदयाल दूसरा कोई नहीं है।

मीत पुनीत कियो कपि भालुको, पाल्यो ज्यों काहु न बाल तनूजो।
सज्जन-सींव बिभीषन भो, अजहूँ बिलसै बर बंधु-बधू जो॥
कोसलपाल बिना 'तुलसी' सरनागत पाल कृपालु न दूजो।
कूर कुजाति कुपूत अघी सबकी सुधरै जो करै नर पूजो॥५॥

शब्दार्थ—बाल = बालक। तनूजो = पुत्र। सज्जन-सींव =

सज्जनोंकी सीमा, सज्जनोंमें अग्रणी । अजहूँ = अब भी । बिलसै = विलास करता है । अघी = पापी ।

भावार्थ—रामचन्द्रजीने वन्दरों और भालुओंतकको अपना पवित्र मित्र बनाया और उनका ऐसा पालन किया जैसा पालन कोई अपने शरीरसे उत्पन्न बालककी भी नहीं करता । जो विभीषण अब भी अपने बड़े भाई (रावण) की स्त्री (मन्दोदरी) के साथ विलास करता है वह सज्जनोंमें अग्रणी हुआ । तुलसीदासजी कहते हैं कि रामचन्द्रजीके समान शरणागतकी रक्षा करनेवाला दयालु दूसरा कोई नहीं है । कोई क्रूर हो, बुरी जातिका हो, कुपूत (नालायक) हो अथवा पापी हो, जो मनुष्य रामजीकी पूजा करता है सबकी बन जाती है ।

तीय-सिरोमनि सीय तजी जेहि पावक की कलुषाई दही है ।
धर्म धुरंधर बंधु तज्यो, पुरलोगनि की बिधि बोलि कही है ॥
कीस निसाचर की करनी न सुनी, न बिलोकी, न चित्त रही है ।
राम सदा सरनागत की अनखौंही अनैसी सुभाव सही है ॥६॥

शब्दार्थ—दही है = दहन किया है, जला दिया है । कीस = सुग्रीव । अनखौंही = अप्रसन्न करनेवाली । अनैसी = अनिष्ट ।

भावार्थ—रामचन्द्रजीने स्त्री-शिरोमणि सीताजीको त्याग दिया जिन्होंने (अपनी पवित्रताके बलसे) अग्निकी मलिनता या जलानेकी शक्तिको भस्म कर दिया था । उन्होंने धर्मप्राण भाई लक्ष्मणको भी त्याग दिया और नगर-वासियोंको बुलाकर उन्हें कर्त्तव्यकी शिक्षा दी । उन्होंने सुग्रीव और विभीषणकी

करनीको न तो कभी सुना, न देखा और न मनमें ही रखा। रामजीने शरणागतोंको अप्रसन्न करनेवाले और बुरे कर्मोंको हमेशा स्वभावसे ही सहन किया है।

अपराध अगाध भये जन तें अपने उर आनत नाहिंन जू।
गनिका गज गीध अजामिल के गनि पातक-पुंज सिराहिं न जू॥
लिए बारक नाम सुधाम दियो जिहि धाम महा मुनि जाहिं न जू।
'तुलसी' भजु दीन दयालुहिं रे, रघुनाथ अनाथहि दाहिनजू॥७॥

शब्दार्थ—पातक = पाप। पुंज = समूह। सिराहिं न = समाप्त नहीं होते। बारक = एक बार। सुधाम = स्वधाम, वैकुंठ। दाहिन = अनुकूल, प्रसन्न।

भावार्थ—भक्तसे बहुत बड़ा अपराध हो जानेपर भी रामजी (उसके अपराधपर) ध्यान नहीं देते। गणिका, गज, गीध और अजामिलके पाप गिननेसे समाप्त नहीं होते अर्थात् इन लोगोंके पापोंका ओर-छोर नहीं था, किन्तु उनके एक बार नाम लेनेसे ही आपने उनको अपने बैकुंठलोकमें भेज दिया जहाँ बड़े बड़े मुनि भी नहीं जा पाते। तुलसीदासजी कहते हैं कि रे मन, दीनोंपर दया करनेवाले श्री रामचन्द्रजीको भज, वह अनाथोंपर प्रसन्न रहनेवाले हैं।

विशेष

१—'गनिका'—जनकपुरमें पिंगला नामकी वेश्या थी, वह अपने प्रेमीकी प्रतीक्षा करते करते निराश होकर ईश्वरकी ओर मुड़ी और मुक्त हो गयी थी।

२—'गज'—एकबार तालाबमें एक हाथीका पैर मँगरने

पकड़ लिया था। जब हाथी अपना पैर न छुड़ा सका, तब उसने भगवानको पुकारा। भगवानने ग्राहको मारकर उस हाथीको मुक्त कर दिया।

३—'गीध'—जटायुने सीताको छुड़ानेके लिए रावणसे युद्ध करके प्राणत्याग किया था। रामजीने अपने पिताके समान उसका दग्ध संस्कार करके उसे मुक्त किया था।

४—'अजामिल'—घोर पापी ब्राह्मण था। मरते समय उसने अपने छोटे लड़के नारायणका नाम लेकर पुकारा था। इससे उसका उद्धार हो गया था।

प्रभु सत्य करी प्रहलाद-गिरा, प्रगटे नर केहरि खंभ महाँ।
झखराज ग्रस्यो गजराज, कृपा ततकाल, बिलंब कियो न तहाँ॥
सुर साखी दै राखी है पांडु बधू पट लूटत, कोटिक भूप जहाँ।
'तुलसी' भजु सोच-बिमोचन को, जन को पन राम न राख्यो कहाँ।८।

शब्दार्थ—गिरा = वाणी। नर-केहरि = नृसिंह भगवान। महाँ = में, मध्य। झखराज = ग्राह।

भावार्थ—रामचन्द्रजीने प्रह्लादके वचनको सत्य किया और खम्भा फाड़कर नृसिंहरूपसे प्रकट हुए। जब ग्राहने गज (हाथी) को ग्रस लिया तब तुरन्त आपने कृपा की, देर नहीं की। जहाँ अगणित राजाओंके बीचमें द्रौपदी नंगी की जा रही थी वहाँ उनकी रक्षा आपने की, इसके साक्षी देवतागण हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि शोकको नष्ट करनेवाले रामजीका भजन करो। उन्होंने भक्तकी प्रतिज्ञाको कहाँ नहीं रखा? अर्थात् रामजीने भक्तकी सदा रक्षा की है।

नरनारि उघारि सभा महँ होत दियो पट, सोच हर्‌यो मन को।
प्रहलाद-विषाद-निवारन, बारन-तारन, मीत अकारन को॥
जो कहावत दीनदयालु सही, जेहि भार सदा अपने पन को।
'तुलसी' तजि आन भरोस, भजे भगवान, भलो करिहैं जन को॥९॥

शब्दार्थ—नरनारि = द्रौपदी। बारन (वारण) = हाथी। तारन = उद्धार करनेवाले। सही = ठीक।

भावार्थ—जिन्होंने भरी सभामें नंगी की जाती हुई द्रौपदीको वस्त्र देकर उसके चित्तका शोक दूर किया। जो प्रह्लादका दुःख दूर करनेवाले, हाथीको तारनेवाले तथा निःस्वार्थ मित्र हैं। जिसका दीनदयालु कहलाना बिलकुल ठीक है, जिन्हें अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनेका हमेशा भार (ध्यान) रहता है। तुलसीदासजी कहते हैं कि दूसरेका भरोसा छोड़कर ऐसे रामजीका भजन करनेसे वह अपने भक्तका अवश्य भला करेंगे।

ऋषि-नारि उधारि, कियो सठ केवट मीत, पुनीत सुकीर्त्ति लही।
निज लोक दियो सबरी खग को, कपि थाप्यो सो मालुम है सबही॥
दससीस-विरोध सभीत बिभीषन भूप कियो जग लीक रही।
करुनानिधि को भजु रे 'तुलसी' रघुनाथ अनाथ को नाथ सही॥१०॥

शब्दार्थ—ऋषि-नारि = गौतमकी स्त्री, अहल्या। सठ = नीच, दुष्ट। लही = प्राप्त की। लीक = रेखा, अमिट।

भावार्थ—रामजीने गौतमकी स्त्री अहल्याका उद्धार करके, नीच केवटको अपना मित्र बनाया और पवित्र सुयश पाया। शबरी और गिध जटायुको बैकुंठमें भेजा और सुग्रीवको राजा बनाया, यह बात सबको मालूम है। रावणके विरोधसे भयभीत

विभीषणको राजा बनाया, संसारमें यह बात रेखाकी तरह रह गयी अर्थात् अमिट हो गयी। तुलसीदास कहते हैं कि अनाथोंके सच्चे स्वामी करुणानिधि श्री रामचन्द्रजीका भजन करो।

कौसिक, विप्रबधू, मिथिलाधिप के सब सोच दले पल माँ हैं।
बालि-दसानन-बंधु-कथा सुनी सत्रु सुसाहिब-सील सराहैं॥
ऐसी अनूप कहैं 'तुलसी' रघुनायकको अगुनी गुन गाहैं।
आरत दीन अनाथन को रघुनाथ करैं निज हाथन छाहैं॥११॥

शब्दार्थ—विप्रबधू = अहल्या। अगनी = अगणित। गाहैं = गाथाएँ।

भावार्थ—रामचन्द्रजीने विश्वामित्र, अहल्या तथा राजा-जनकको सब चिन्ताओंको क्षणभरमें दूर कर दिया। बालिके भाई सुग्रीव और रावणके भाई विभीषण (के साथ किये हुए उपकार) का हाल सुनकर शत्रु भी रामजीके शीलकी सराहना करते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि रामजीकी ऐसी अगणित गुणगाथाएँ उपमा-रहित हैं। रामजी दीन-दुखियों और अनाथों-की रक्षा अपने हाथसे करते हैं अर्थात स्वयं करते हैं।

तेरे बेसाहे बेसाहत औरनि, और बेसाहि कै बेचन हारे।
ब्योम रसातल भूमि भरे नृप क्रूर कुसाहिब सेंतिहुँ खारे॥
'तुलसी' तेहि सेवत कौन मरै? रज तें लघु को करै मेरु तें भारे।
स्वामी सुसील समर्थ सुजान सो तो सो तुही दसरत्थ-दुलारे॥१२॥

शब्दार्थ—बेसाहे = खरीदनेपर। और = दूसरे। ब्योम = आकाश। रसातल = पाताल। सेंतिहुँ = मुफ्तमें भी। रज = धूलि।

भावार्थ—हे रामचन्द्रजी, आपके खरीद लेनेपर वह औरों-को खरीदता है अर्थात् जिसको आप अपना लेते हैं वह इतना समर्थ हो जाता है कि दूसरोंका उद्धार करता फिरता है; किन्तु अन्य देवता खरीदकर बेचनेवाले हैं अर्थात् अन्य देवताओंके सेवकोंको दूसरे बड़े देवताकी शरणमें जाना पड़ता है। आकाश, पाताल और पृथिवीमें बहुतसे क्रूर, बुरे स्वामी राजा भरे पड़े हैं परन्तु वे मुफ्तमें मिलनेपर भी बुरे हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि उनकी सेवा करके कौन मरे? ऐसा कौन समर्थ स्वामी है जो धूलके समान छोटे सेवकको पर्वतसे भी बड़ा बना सकता है? हे दशरथके दुलारे श्री रामजी, शीलवान, सामर्थ्यवान और चतुर स्वामी तुम्हारे समान तुम्हीं हो—दूसरा कोई नहीं है।

कवित्त

जातुधान भालु कपि केवट बिहंग जो जो,
पाल्यो नाथ सद्य सो सो भयो काम-काज को।
आरत अनाथ दीन मलिन सरन आये,
राखे अपनाइ, सो सुभाउ महाराज को॥
नाम 'तुलसी' पै भोंड़ों भाँग तें कहायो दास,
किये अंगीकार ऐसे बड़े दगाबाज को।
साहेब समर्थ दसरत्थ के दयालु देव,
दूसरो न तो सों, तुही आपने की लाज को॥१३॥

शब्दार्थ—जतुधान = राक्षस, विभीषण। भालु = जामवन्त बिहंग = पक्षी, जटायु। सद्य = तुरन्त। भोंडो = भद्दा।

भावार्थ—हे स्वामी आपने विभीषण, जामवन्त, सुग्रीव,

निषाद और जटायु आदि जिन-जिनको पाला या शरणमें लिया वे सब तुरन्त ही बड़े कामके हो गये अर्थात् आदरणीय हो गये। दुखी, अनाथ, दीन और पापी जो भी आपकी शरणमें आये, सबको आपने अपना लिया—ऐसा आपका स्वभाव ही है। मेरा नाम तो (परम पवित्र) 'तुलसी' है परन्तु मैं भाँगसे भी भद्दा रहनेपर भी आपका दास कहलाने लगा और आपने (मुझ सरीखे) बड़े दगाबाजको भी अंगीकार कर लिया अर्थात् अपना भक्त मान लिया। हे दशरथके पुत्र रामजी, आपके समान समर्थ और दयालु स्वामी दूसरा कोई नहीं है। अपने भक्तोंकी लज्जा रखनेवाले बस एक आप ही हैं।

महाबली बालि दलि, कायर सुकंठ कपि,
सखा किये, महाराज हौं न काहू काम को ॥
भ्रात-घात-पातकी निसाचर सरन आये,
कियो अंगीकार नाथ एते बड़े बाम को ॥
राय दसरत्थ के समर्थ तेरे नाम लिए,
'तुलसी' से कूर को कहत जग राम को।
आपने निवाजे की वौ लाज महाराज को,
सुभाव समुझत मन मुदित गुलाम को ॥१४॥

शब्दार्थ—सुकंठ = सुग्रीव। भ्रात = भाई। बाम = दुष्ट। मुदित = प्रसन्न।

भावार्थ—मैं तो किसी भी कामका नहीं हूँ परन्तु आपने महा बलवान बालिको मारकर कायर सुग्रीवको अपना मित्र बनाया था। भाईकी हत्या करनेकी इच्छा रखनेवाले पापी विभी-

पणके शरणमें आनेपर आपने इतने बड़े दुष्टको (अपना मित्र बनाना) स्वीकार लिया था। हे राजा दशरथके सामर्थ्यवान पुत्र रामजी, केवल आपका नाम लेनेके कारण ही तुलसी-सरीखे क्रूरको संसार राम-भक्त कहता है। महाराजको तो अपने कृपा करनेकी लज्जा है ही; यह स्वभाव समझते ही इस दासका मन प्रसन्न हो जाता है।

रूप-सील-सिंधु गुनसिंधु, बंधु दीन को,
दयानिधान, जान-मनि, बीर बाहु-बोल को।
श्राद्ध कियो गीध को सराहे फल सबरी के,
सिलासाप-समन, निबाह्यो नेम कोल को॥
'तुलसी' उराउ होत राम को सुभाउ सुनि,
को न बलि जाइ, न बिकाइ बिन मोल को।
ऐसेहू सुसाहेब सों जाको अनुराग न सो,
बड़ोई अभागो, भाग भागो लोभ-लोल को॥१५॥

शब्दार्थ—जान-मनि = ज्ञान-शिरोमणि। बीर बाहु-बोल-को = शरणागत रक्षक और प्रतिज्ञाका पालन करनेवाले वीर। उराउ = उत्साह।

भावार्थ—रामचन्द्रजी रूप, शील और गुणके समुद्र, दीनोंके सहायक परम दयालु, ज्ञान-शिरोमणि तथा शरणागत-रक्षक और प्रतिज्ञाका पालन करनेमें वीर हैं। आपने गिद्ध जटायुका श्राद्ध स्वयं किया, सबरीके (जूठे) फलोंकी सराहना की, अहल्याको शाप-मुक्त किया और कोल-भीलोंके प्रेमको निबाहा। तुलसीदासजी कहते हैं कि रामचन्द्रजीका ऐसा स्वभाव

सुनकर हृदयमें उत्साह होता है। भला ऐसे प्रभुपर कौन नहीं निछावर होगा और कौन उनके हाथ बिना दामके ही न विकेगा ? ऐसे अच्छे स्वामीसे भी जिसका प्रेम नहीं है वह बड़ा अभागा है, लोभके कारण उस चंचल चित्तवालेका भाग्य ही उससे दूर भाग गया समझना चाहिए।

सूर-सिरताज महाराजनि के महाराज,
जाको नाम लेत ही सुखेत होत ऊसरो।
साहब कहाँ जहान जानकीस सो सुजान,
सुमिरे कृपालु के मराल होत खूसरो॥
केवट पषान जातुधान कपि भालु तारे,
अपनायो तुलसी सो धींग धमधूसरो।
बोल को अटल, बाँह को पगार, दीनबंधु,
दूबरे को दानी, को दयानिधान दूसरो ? ॥१६॥

शब्दार्थ—मराल = हंस (विवेकवान)। खूसरो = मूर्ख। धींग = निकम्मा। धमधूसरो = विशाल शरीर। दूबर = दुर्बल, दरिद्र ।

भावार्थ—वीरोंमें शिरोमणि, महाराजाओंके भी महाराज, जिनका नाम लेते ही ऊसर खेत भी उपजाऊ हो जाता है, ऐसे चतुर श्री रामजीके समान संसारमें दूसरे स्वामी कहाँ हैं ? उन कृपालुका स्मरण करते ही मूर्ख भी हंसका-सा विवेकी हो जाता है। उन्होंने निषाद, अहल्या, विभीषण सुग्रीव तथा जामवन्तका उद्धार कर दिया और तुलसीदासके समान निकम्मे एवं मूर्ख लोगोंको अपनाया। उनके समान अपने वचनका पक्का, शरण-

गतोंकी रक्षा करनेवाला, दीनोंका सहायक और गरीबोंको दान देनेवाला दूसरा कौन स्वामी परम दयालु है ?

कीबे को बिसोक लोकपाल हुते सब,
कहूँ कोऊ भो न चरवाहो कपि भालु को।
पवि को पहार कियो ख्याल ही कृपालु राम,
बापुरो बिभीषन घरौंधा हुतो बालु को ॥
नाम-ओट लेत ही निखोट होत खोटे खल,
चोट बिनु मोट पाइ भयो न निहाल को ?
'तुलसी' की बार बड़ी ढील होत, सील-सिन्धु,
बिगरी सुधारिबे को दूसरो दयालु को ॥१७॥

शब्दार्थ—कीबे को = करनेके लिए। चरवाहो = चरानेवाला, अच्छे मार्गपर ले चलनेवाला। पवि = वज्र। हुतो = था। निखोट = निर्दोष। मोट = गठरी। ढील = देर।

भावार्थ—लोकपाल तो सभी थे, परन्तु लोगोंको शोक-रहित करनेके लिए भालु और बन्दरोंका पथ-प्रदर्शक कोई न बना। विचारा विभीषण जो बालूके घरौंधेकी तरह शक्तिहीन था उसे आपने वज्रके पहाड़की भांति शक्तिशाली बना दिया। आपके नामकी शरण लेते ही दुष्ट और पापी भी निर्दोष हो जाते हैं। ऐसा कौन है जो विना परिश्रमके ही गठरी पाकर निहाल नहीं हुआ ? विना कठिन तपस्याके ही स्वर्गकी प्राप्ति करके प्रसन्न नहीं हुआ ? बिगड़ी बातोंको सुधारनेके लिए आपके समान दूसरा दयालु कौन है ?

सुनकर हृदयमें उत्साह होता है। भला ऐसे प्रभुपर कौन नहीं निछावर होगा और कौन उनके हाथ बिना दामके ही न बिकेगा ? ऐसे अच्छे स्वामीसे भी जिसका प्रेम नहीं है वह बड़ा अभागा है, लोभके कारण उस चंचल चित्तवालेका भाग्य ही उससे दूर भाग गया समझना चाहिए।

सूर-सिरताज महाराजनि के महाराज,
जाको नाम लेत ही सुखेत होत ऊसरो।
साहब कहाँ जहान जानकीस सो सुजान,
सुमिरे कृपालु के मराल होत खूसरो॥
केवट पषान जातुधान कपि भालु तारे,
अपनायो तुलसी सो धींग धमधूसरो।
बोल को अटल, बाँह को पगार, दीनबंधु,
दूबरे को दानी, को दयानिधान दूसरो ? ॥१६॥

शब्दार्थ—मराल = हंस (विवेकवान)। खूसरो = मूर्ख। धींग = निकम्मा। धमधूसरो = विशाल शरीर। दूबर = दुर्बल, दरिद्र।

भावार्थ—वीरोंमें शिरोमणि, महाराजाओंके भी महाराज, जिनका नाम लेते ही ऊसर खेत भी उपजाऊ हो जाता है, ऐसे चतुर श्री रामजीके समान संसारमें दूसरे स्वामी कहाँ हैं ? उन कृपालुका स्मरण करते ही मूर्ख भी हंसका-सा विवेकी हो जाता है। उन्होंने निषाद, अहल्या, विभीषण सुग्रीव तथा जामवन्तका उद्धार कर दिया और तुलसीदासके समान निकम्मे एवं मूर्ख लोगोंको अपनाया। उनके समान अपने वचनका पक्का, शरणा-

गतोंकी रक्षा करनेवाला, दीनोंका सहायक और गरीबोंको दान देनेवाला दूसरा कौन स्वामी परम दयालु है ?

कीबे को त्रिसोक लोकपाल हुते सब,
कहूँ कोऊ भो न चरवाहो कपि भालु को ।
पवि को पहार कियो ख्याल ही कृपालु राम,
बापुरो बिभीषन घरौंधा हुतो बालु को ॥
नाम-ओट लेत ही निखोट होत खोटे खल,
चोट बिनु मोट पाइ भयो न निहाल को ?
'तुलसी' की बार बड़ी ढील होत, सील-सिन्धु,
बिगरी सुधारिबे को दूसरो दयालु को ॥१७॥

शब्दार्थ—कीबे को = करनेके लिए। चरवाहो = चरानेवाला, अच्छे मार्गपर ले चलनेवाला । पवि = वज्र। हुतो = था । निखोट = निर्दोष । मोट = गठरी । ढील = देर ।

भावार्थ—लोकपाल तो सभी थे, परन्तु लोगोंको शोक-रहित करनेके लिए भालु और बन्दरोंका पथ-प्रदर्शक कोई न बना । बिचारा विभीषण जो बालूके घरौंधेकी तरह शक्तिहीन था उसे आपने वज्रके पहाड़की भांति शक्तिशाली बना दिया । आपके नामकी शरण लेते ही दुष्ट और पापी भी निर्दोष हो जाते हैं। ऐसा कौन है जो बिना परिश्रमके ही गठरी पाकर निहाल नहीं हुआ ? बिना कठिन तपस्याके ही स्वर्गकी प्राप्ति करके प्रसन्न नहीं हुआ ? बिगड़ी बातोंको सुधारनेके लिए आपके समान दूसरा दयालु कौन है ?

आगे परे पाहन कृपा, किरात, कोलनी,
कपीस, निसिचर अपनाये नाये माथ जू ।
साँची सेवकाई हनुमान की सुजान राम,
ऋनियाँ कहाये हौ बिकाने ताके हाथ जू ॥
'तुलसी' से खोटे खरे होत ओट नामही की,
तेजी माटी मगहू की मृग-मद साथ जू ।
बात चले बात को न मानिबो बिलग, बलि,
काकी सेवा रीझि कै नेवाजो रघुनाथ जू ॥१९॥

शब्दार्थ—कोलनी = सबरी । तेजी = महँगी । मगहू की = रास्ते की भी । मृगमद = कस्तूरी । बिलग = बुरा । काकी = किसकी ।

भावार्थ—रास्तेमें पड़ी हुई अहल्यापर आपने कृपा की और नम्र होते ही किरात, सबरी, सुग्रीव और विभीषणको अपना लिया । हे ज्ञान-शिरोमणि ! (यदि सच पूछिये तो) सच्ची सेवा केवल हनुमानजीने की जिसका आपने अपनेको कर्जदार कहा और उनके हाथ आप बिक गये । तुलसीके समान पापी मनुष्य भी नामकी शरण लेनेसे निष्पाप हो जाता है; (ठीक ही है) कस्तूरीका साथ होनेसे रास्तेमें पड़ी हुई मिट्टी भी महँगी हो जाती है । मैं आपकी बलि जाऊँ, बातके प्रसंगमें यदि मैं आपसे कुछ पूछूँ तो आप बुरा न मानियेगा । आपने किसकी सेवासे प्रसन्न होकर उसपर कृपा की है ? अर्थात् केवल हनुमानजीको छोड़कर किसीने भी आपके प्रसन्न होने योग्य सेवा नहीं की है; पर आप प्रसन्न सबपर हुए हैं ।

नाम लिए पूत को पुनीत कियो पातकीस,
आरति निवारी प्रभु पाहि कहे पील को।
छलिन की छौंड़ी सो निगोड़ी छोटी जाति पांति,
कीन्हीं लीन आपुमें सुनारी भोंड़े भील की ॥
तुलसीऔ तारिबो बिसारिबो न अंत, मोहिं,
नीके है प्रतीति रावरे सुभाव सील की।
देव तौ दया निकेत, देत दादि दीनन की,
मेरी बार मेरे ही अभाग नाथ ढील की ॥१८॥*

शब्दार्थ—पूत = पुत्र (अजामिलका पुत्र नारायण)। पातकीस = पापियोंका राजा अर्थात् अजामिल। पील = हाथी। छौंड़ी = लड़की। निगोड़ी = निकम्मी। रावरे = आपके।

भावार्थ—हे नाथ! आपने महापापी अजामिलको पुत्रका नाम (नारायण) लेनेसे ही पवित्र कर दिया अर्थात् तार दिया। गजके 'रक्षा कीजिये' कहकर पुकारनेपर आपने उसके दुःखको दूर कर दिया। छलियोंकी लड़की, निकम्मी, जाति पांतिकी नीच असभ्य भीलकी स्त्री सबरीको आपने मोक्षपद दे दिया। मुझे (तुलसीदासको) आपके शील और स्वभावपर पूर्ण विश्वास है, इसलिए अन्तमें तुलसीदासको भी तारने और उसको न भूलनेका दृढ़ निश्चय है। हे देव, आप तो दयाके घर हैं और दीनोंको दाद देनेवाले हैं, आपने मुझे अपनानेमें मेरे ही दुर्भाग्यसे देर लगायी है।

---

* भूलसे यह कवित्त १७वें कवित्तके बाद न छपकर १९वें के बाद छप गया है।

कौसिक की चलत, पषान की परस पायँ,
टूटत धनुष बनि गई है जनक की ।
कोल पसु सबरी बिहंग भालु रातिचर,
रतिन के लालचिन प्रापति मनक की ॥
कोटि-कला-कुसल कृपालु, नतपाल, बलि,
बातहू कितिक तिन 'तुलसी' तनक की ।
राय दसरत्थ के समत्थ राम राजमनि,
तेरे हेरे लोपै लिपि बिधिहू गनककी ॥ २० ॥

शब्दार्थ—परस (स्पर्श) = छूनेसे । रतिन = रत्तीभर । मनक = एक मन । नतपाल = शरणागतकी रक्षा करनेवाले । कितिक = कितना । तिन = तृण । तनक = थोड़ा । लिपि = लिखा हुआ । गनक = ज्योतिषी ।

भावार्थ—साथ चलते ही विश्वामित्रकी, पैरसे छूते ही अहल्याकी और धनुषके टूटते ही राजा जनकजी बन गयी । कोल, पशु (कपटी मृग मारीच) सबरी, पक्षी (जटायु), भालु (जामवन्त), और राक्षस (विभीषण) जोकि रत्तीभरकी इच्छा रखते थे, उन्हें मनभरकी प्राप्ति हुई । करोड़ों कलाओंमें चतुर शरणागतोंकी रक्षा करनेवाले हे श्रीरामचन्द्रजी, मैं आपकी बलैया लेता हूँ । तृणके समान तुच्छ तुलसीदासको थोड़ी सी भक्ति दे देना आपके लिए कौनसी बड़ी बात है । हे राजा दशरथके सामर्थ्यवान पुत्र तथा राजाओंमें सर्वश्रेष्ठ रामचन्द्रजी, आपके देखनेसे या कृपादृष्टि फेरनेसे ब्रह्माके समान ज्योतिषीका लिखा हुआ अक्षर भी मिट जाता है ।

अलंकार—अत्युक्ति ।

सिला-साप-पाप, गुह गीध को मिलाप,
सबरी के पास आप चलि गये हौ सो सुनी मैं।
सेवक सहारे कपिनायक विभीषन,
भरत-सभा सादर सनेह सुर धुनी मैं ॥
आलसी-अभागी-अघी-आरत-अनाथपाल,
साहेब समत्थ एक नीके मन गुनी मैं ।
दोष-दुख-दारिद-दलैया दीनबंधु राम,
'तुलसी' न दूसरो दयानिधान दुनी मैं ॥२१॥

शब्दार्थ—गुह = निषाद । सुरधुनी = गंगाजी । गुनी = विचार किया । दलैया = नष्ट करनेवाले । दुनी = दुनिया ।

भावार्थ—आपने शापसे पत्थर हो जानेवाली अहल्याके पापको छुड़ा दिया, निषाद और गिद्ध जटायुसे मिले और सबरी-के पास स्वयं चले गये, यह सब मैंने सुना है। राज-सभामें भरतजीसे आपने सेवक सुग्रीव तथा विभीषणके गंगाके समान पवित्र प्रेमकी सराहना की है। मैंने अपने मनमें अच्छी तरह विचार किया कि आलसी, अभागे, पापी, दुखी और अनाथोंकी रक्षा करनेवाले एक आप ही सामर्थ्यवान हैं ! तुलसी-दासजी कहते हैं कि हे रामजी ! दोष, दुःख और दरिद्रताका नाश करनेवाले दीनोंके सहायक आप ही हैं। संसारमें दयाका घर (आपके सिवा) दूसरा कोई नहीं है।

अलंकार—अनुप्रास ।

मीत बालि-बंधु, पूत दूत, दसकंध-बंधु,
सचिव, सराध कियो सबरी जटाइ को।
लंक जरी जोहे जिय सोच सो बिभीषन को,
कहौ ऐसे साहेब की सेवा न खटाइ को ?
बड़े एक एक तें अनेक लोक लोकपाल,
अपने अपने को तौ कहैगो घटाइ को ?
साँकरे के सेइबे, सराहिबे सुमिरेबे को,
राम सो न साहिब, न कुमति-कटाइ को ॥२२॥

शब्दार्थ—पूत = पुत्र। न खटाइ को = कौन नहीं खटेगा, कौन नहीं सेवा करेगा। घटाइ = घटाकर, कम करके। साँकरे = संकट। सेइबे = सेवा करनेसे। कुमति-कटाइको = दुर्बुद्धिको काटनेवाला।

भावार्थ—जिसने बालिके भाई सुग्रीव और पुत्र अंगदको क्रमशः मित्रऔर दूत बनाया, रावणके भाई विभीषणको मंत्री बनाया तथा सबरी और जटायुका श्राद्ध किया, जली हुई लंकाको देखकर विभीषणके लिए शोक किया, उस स्वामीकी सेवा करनेमें कौन नहीं खटेगा ? अनेक लोकोंके लोकपाल एकसे एक बढ़कर हैं, उनमें कोई भी अपनेको किसीसे घटकर नहीं कहेगा; लेकिन संकटकालमें सेवा करने योग्य, प्रशंसा और स्मरण करने योग्य दुर्बुद्धिको दूर करनेवाला रामचन्द्रजीके समान स्वामी दूसरा कोई नहीं है।

भूमिपाल, व्यालपाल, नाकपाल, लोकपाल,
कारन कृपालु, मैं सबैके जी की थाह ली।

कादर को आदर काहू के नाहिं देखियत,
सबनि सोहात है सेवा-सुजान टाहली ॥
'तुलसी' सुभाय कहै नाहीं कछु पच्छपात,
कौने ईस किए कीस भालु खास माहली ।
राम ही के द्वारे पै बोलाइ सनमानियत,
मोसे दीन दूबरे कुपूत कूर काहली ॥२३॥

शब्दार्थ—भूमिपाल = राजा । व्यालपाल = शेषनाग । नाकपाल = इन्द्र । कारन कृपालु = कारणवश कृपा करनेवाले । टाहली = टहल, सेवा । खास माहली = अन्तःपुरके सेवक । काहली = काहिल, सुस्त ।

भावार्थ—राजा, शेषनाग, इन्द्र और लोकपाल आदि कारणवश कृपा करते हैं, मैंने सबके हृदयकी थाह ले ली है । कायरका आदर किसीके यहाँ दिखायी नहीं पड़ता, सबको चतुर सेवककी सेवा अच्छी लगती है । तुलसीदास स्वभावसे ही कहते हैं, पक्षपात करके नहीं, किस स्वामीने वन्दरों और भालुओंको अपने अन्तःपुरका सेवक बनाया है ? मेरे समान दीन, दुर्बल, नालायक, क्रूर और आलसीका आदर केवल रामचन्द्रजीके ही द्वारपर बुलाकर किया जाता है ।

सेवा अनुरूप फल देत भूप कूप ज्यों,
बिहूने गुन पथिक पियासे जात पथ के ।
लेखे जोखे चोखे चित 'तुलसी' स्वारथ हित,
नीके देखे देवता देवैया घनो गथ के ॥

गीध मानो गुरु, कपि भालु मानो मीत कै,
पुनीत गीत साके सब साहेब समत्थ के।
और भूप परखि सुलाखि तौलि ताइ लेत,
लसम के खसम तुही पै दसरत्थ के ॥ २४ ॥

शब्दार्थ—बिहूने = बिना। गुन (गुण) = रस्सी। लेखे जोखे = अच्छी तरह विचार कर लिया है। चोखे = खरा। गथ (ग्रंथ) = पूँजी। साके = यशस्वी। सुलाखि = सूराख करके। ताइ लेत = तपा लेते हैं। लसम = खोटे। खसम = स्वामी।

भावार्थ—अन्यान्य राजे कुएँके समान हैं; सेवाके अनुकूल ही फल देते हैं; जिस प्रकार रस्सीके बिना पथिक मार्गमें प्यासा ही चला जाता है—कुआँ उसे स्वयं जल नहीं देता। तुलसी-दासजी कहते हैं कि मैंने अच्छी तरह विचारकर देख लिया है कि स्वार्थके लिए धन देनेवाले बहुतसे देवता हैं, किन्तु गिद्ध जटायुको गुरुके समान तथा बन्दर-भालुको मित्र यदि किसीने माना है तो वह केवल रामजी ही हैं। ऐसा यशस्वी और पवित्र गीत केवल सामर्थ्यवान स्वामी रामजीका ही है। जितने राजे या स्वामी हैं सब अच्छी तरहसे देखकर, छेदकर (कष्ट पहुँचा-कर), तोलकर और तपाकर सेवक चुनते हैं किन्तु निकम्मोंको अपनानेवाले स्वामी रामचन्द्रजी ही हैं।

अलंकार—श्लेष और उपमा।

रीति महाराजकी नेवाजिए जो माँगनो सो,
दोष-दुख-दारिद-दरिद्र कै कै छोड़िये।

नाम जाको कामतरु देत फल चारि, ताहि,
'तुलसी' बिहाइ कै बबूर रेंड गोड़िए ॥
जाँचै को नरेस, देस देस को कलेस करै,
देहै तो प्रसन्न ह्वै बड़ी बड़ाई बोड़िए।
कृपा पाथनाथ लोकनाथ-नाथ सीतानाथ,
तजि रघुनाथ हाथ और काहि ओड़िए ॥२५॥

शब्दार्थ—कामतरु = कल्पवृक्ष । बिहाइ = छोड़कर । गोड़िये = सेवा कीजिये। बोड़िये = दमड़ी, कौड़ी । पाथ = जल। ओड़िये = हाथ फैलाइये।

भावार्थ—महाराज रामचन्द्रजीकी ऐसी रीति है कि जो कोई उनसे माँगता है उसपर इतनी कृपा करते हैं कि उसके दोष, दुःख और दरिद्रताको दरिद्र करके छोड़ देते हैं। जिनका नाम कल्पवृक्षके समान चारों फलों (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) को देनेवाला है, तुलसीदास कहते हैं कि उसको छोड़कर बबूर और रेंड़के समान निकम्मे पेड़की सेवा करने कौन जाय। देश-देश घूमनेका कष्ट कौन करे और दूसरे राजाओंसे माँगने कौन जाय; यदि वे प्रसन्न होकर देंगे भी तो दमड़ी या कौड़ी ही देंगे। यही उनकी बहुत बड़ी बड़ाई है। कृपाके समुद्र, लोकपालोंके स्वामी श्री रामचन्द्रजीको छोड़कर और किसके सामने हाथ पसारें ?

सवैया

जाके बिलोकत लोकप होत बिसोक, लहैं सुर लोग सुठौरहि।
सो कमला तजि चंचलता करि कोटि कला रिझवै सुरमौरहि॥
ताको कहाय, कहै 'तुलसी' तू लजाहि न माँगत कूकुर कौरहि।
जानकि-जीवनको जन है जरि जाउ सो जीह जो जाँचत औरहि॥२६॥

शब्दार्थ—बिलोकत = देखते ही। बिसोक = शोक-रहित। सुरमौरहि = देवताओंके शिरोमणि, विष्णु। जानकी-जीवन = रामजी। जन = भक्त।

भावार्थ—जिस लक्ष्मीके देखनेमात्रसे लोकपाल शोक-रहित हो जाते हैं और देवताओंको सुन्दर स्थान मिल जाता है, वही लक्ष्मीजी अपनी चंचलताको छोड़कर करोड़ों उपाय करके विष्णु भगवान (रामचन्द्र) को प्रसन्न करती हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि उन्हीं रामचन्द्रजीका कहलाकर तू कुत्तेकी तरह दूसरोंसे कौरा माँगनेमें शर्माता नहीं। जो रामजीका भक्त होकर औरोंसे मांगे, उसकी जीभ जल जाय तो अच्छा है।

विशेष

'जाके······सुठौरहि'—वास्तवमें सबके सिद्धिदाता श्री रामजी ही हैं। लिखा भी है:—

हरिहि हरिता विधिहि विधिता शिवहि शिवता जेहि देई।
सो जानकीपति मधुर मूरति मोदमय मंगलमई॥

जड़ पंच मिलै जेहि देह करी, करनी लखु धौं धरनीधर की।
जनकी कहु क्यों करिहै न सँभार, जो सार करै सचराचर की॥

तुलसी कहु राम समान को आन है सेवक जासु रमा घर की।
जगमें गति जाहि जगत्पति की, परवाह है ताहि कहा नर की ॥२७॥

शब्दार्थ—पंच = पाँच तत्त्व। धरनीधर = (यहाँ यह शब्द रामचन्द्रजीके लिए आया है)। सार करै = रक्षा करता है। रमा = लक्ष्मी।

भावार्थ—रामचन्द्रजीकी करनीको देखो, उन्होंने पाँच जड़ तत्त्वोंको मिलाकर देहकी रचना कर डाली है। जो रामजी समूची जड़-चेतन सृष्टिकी रक्षा करते हैं वह अपने भक्तकी खोज-खबर कैसे न लेंगे? तुलसीदास कहते हैं कि रामजीके समान दूसरा कौन है जिसके घरकी दासी लक्ष्मी हैं। संसारमें जिसकी खोज-खबर लेनेवाले श्री रामचन्द्रजी हैं उसको किस बातकी चिन्ता है?

विशेष

'जो सार करै सचराचर की'—इसपर महाभारतमें भी लिखा है:—

भोजनाच्छादने चिन्तां वृथा कुर्वन्ति वैष्णवाः।
यो सौ विश्वम्भरो देवो स भक्तान् किमुपेक्ष्यति ॥

जग जांचिये कोउ न, जांचिये जौ जिय जांचिये जानकी-जानहि रे।
जेहि जाँचत जाचकता जरि जाइ जो जारति जोर जहानहि रे॥
गति देखु बिचारि बिभीषन की, अरु आनु हिये हनुमानहि रे।
'तुलसी' भजु दारिद-दोष-दवानल, संकट कोटि कृपानहि रे ॥२८॥

शब्दार्थ—जानकी-जानहि = सीताजीके प्राणको, रामचन्द्र-जीको। दोष = पाप। दवानल = दावाग्नि, वनकी आग।

भावार्थ—संसारमें किसीसे भी माँगना नहीं चाहिए; यदि मनमें माँगनेकी ही इच्छा हो तो श्री रामचन्द्रजीसे माँगना चाहिए जिनसे माँगनेसे मंगनपन जल जाता है; जो (मंगनपन) जबर्दस्ती संसारको जला देता है अर्थात् रामजीसे माँगनेपर दुबारा कुछ माँगनेकी आवश्यकता नहीं रह जाती और संसार-बन्धन छूट जाता है। विभीषणकी गतिको विचारकर देखो और हनुमानजी-की गतिका ध्यान करो। तुलसीदासजी कहते हैं कि दरिद्रता और पापको जलानेके लिए बनकी आग रूप और करोड़ों संकटों-को काटनेके लिए कृपाण-रूप श्रीरामजीको भजो।

सुनु कान दिए नित नेम लिए रघुनाथहिं के गुनगाथहि रे।
सुख-मंदिर सुंदर रूप सदा उर आनि धरे धनु-भाथहि रे॥
रसना निसि-बासर सादर सो 'तुलसी' जपु जानकि-नाथहि रे।
करु संग सुसील सुसंतन सों, तजि कूर कुपंथ कुसाथहि रे॥२९॥

शब्दार्थ—नेम लिए = नियम पूर्वक। भाथहि = तरकसको। रसना = जीभ। निसि-बासर = रातदिन। कुपंथ = बुरा मार्ग।

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि नित्य नियमसे कान लगाकर श्री रामजीके गुणोंकी कथा सुनो। धनुष और तरकस धारण किये हुए सुखके स्थान श्री रामजीके सुन्दर रूपका हृदयमें सदैव स्मरण करो। जिह्वासे दिनरात आदर-पूर्वक श्रीरामचन्द्र-जीका जप करो तथा क्रूर बुरे मार्ग और बुरी संगतिको छोड़कर सुशील और सुन्दर सन्तोंका सत्संग करो।

विशेष

१—इस सवैयामें गोस्वामीजीने अनुरागी भक्तोंके लिए उत्तम क्रिया बतलायी है।

सुत, दार, अगार, सखा परिवार बिलोकु महा कुसमाजहि रे।
सब की ममता तजि कै, समता सजि संत-सभा न बिराजहि रे॥
नर देह कहा करि देखु बिचार, बिगारु गँवार न काजहि रे।
जनि डोलहि लोलुप कूकर ज्यों, 'तुलसी' भजु कोसलराजहि रे॥३०॥

शब्दार्थ—दार = स्त्री। अगार (आगार) = घर। कुसमाज = बुरा साथ। लोलुप = लालची। कोसलराजहि = श्रीरामचन्द्रजी।

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि पुत्र, स्त्री, घर मित्र और कुटुम्ब आदिको अत्यधिक बुरा समाज समझो। इन सबका मोह छोड़कर समदर्शी भावसे सन्तोंकी सभामें क्यों नहीं बैठते? अपने मनमें विचारकर देखो कि यह मनुष्य शरीर क्या है अर्थात् कुछ नहीं है। ऐ मूर्ख, अपने कामको न बिगाड़। लालची कुत्ते-के समान इधर-उधर न घूम, रामचन्द्रजीका भजन कर।

अलंकार—पूर्णोपमा।

बिषया परनारि निसा-तरुनाई, सु पाइ पर्‍यो अनुरागहि रे।
जमके पहरू दुख रोग बियोग, बिलोकत हू न बिरागहि रे॥
ममता बस तैं सब भूलि गयो, भयो भोर, महा भय भागहि रे।
जरठाइ दिसा, रबिकाल उग्यो, अजहूँ जड़ जीव न जागहि रे॥३१॥

शब्दार्थ—बिषया = विषय-सुखका उपभोग। तरुनाई = जवानी। जरठाइ = बुढ़ापा। रबिकाल = सूर्यरूपी काल।

भावार्थ—तू जवानीरूपी रातमें सांसारिक भोग-विलास रूपी परायी स्त्रीको पाकर उसके प्रेममें फँस गया है। यमदूतोंद्वारा मिलनेवाले दुःखको, रोगको और जुदाईको देखनेपर भी तुझे (सांसारिक वस्तुओंसे) वैराग्य नहीं होता। तू मोहमें पड़कर सब भूल गया है, अब सबेरा हो गया है, महाभय भाग गया है अर्थात् यौवनका उन्माद नष्ट हो गया है। वृद्धावस्था रूपी पूर्व दिशामें सूर्यरूपी काल प्रकाशित हो गया है। ऐ मूर्ख प्राणी (यह देखकर) अब भी तू नहीं जागता।

जनम्यो जेहि जोनि अनेक क्रिया सुख लागि करी, न परै बरनी।
जननी जनकादि हितू भए भूरि, बहोरि भयो उर की जरनी॥
'तुलसी' अब रामको दास कहाइ हिए धरु चातक की धरनी।
करि हंसको वेष बड़ो सबसों, तजि दे बक बायस की करनी॥३२॥

शब्दार्थ—जनकादि = पिता आदि। बहोरि = फिर। धरनी = प्रतिज्ञा।

भावार्थ—जिस योनिमें पैदा हुआ उस योनिमें सांसारिक सुख प्राप्त करनेके लिए तूने बहुतसे काम किये जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता। माता, पिता आदि बहुतसे तेरे हितैषी हुए परन्तु हृदयकी जलन तुझे फिर हुई अर्थात् कष्ट दूर नहीं हुआ। तुलसीदास कहते हैं कि अब तू रामचन्द्रजीका सेवक कहलाकर अपने हृदयमें पपीहेकी टेक धारण कर और हंस अर्थात् भक्तका सबसे बड़ा वेष बनाकर बगुले और कौएकी करनी छोड़ दे अर्थात् छल और चांचल्यसे दूर रह।

भलि भारत भूमि, भले कुल जन्म, समाज सरीर भलो लहि कै।
करषा तजि कै, परुषा बरषा, हिम मारुत घाम सदा सहि कै॥
जो भजै भगवान समान सोई, 'तुलसी' हठ चातक ज्यों गहि कै।
नत और सबै विष बीज बये, हर-हाटक कामदुहा नहि कै॥३३॥

शब्दार्थ—करषा = क्रोध। परुषा = कठोर। हिम = सर्दी। मारुत = हवा। नत = नहीं तो। हर-हाटक = सोनेका हल। नहि कै = नाधकर, जोतकर।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि सुन्दर भारतभूमिमें अच्छे कुलमें जन्म लेकर, अच्छा समाज और शरीर पाकर क्रोध छोड़कर तथा कठोर वर्षा, जाड़ा, हवा और धूप सदैव सहन करके चातककी भांति अनन्य भावसे जो श्री रामजीका भजन करता है वही चतुर है। नहीं तो (मनुष्य शरीर पाकर विषय-भोगमें लिप्त रहनेवाले) और सब सोनेके हलमें कामधेनुको जोतकर विषका बीज बोते हैं।

सो सुकृती सुचिमंत, सुसंत, सुजान, सुसील-सिरोमनि स्वै।
सुर तीरथ तासु मनावत आवन, पावन होत हैं ता तन छ्वै॥
गुनगेह, सनेह को भाजन सो, सबही सों उठाइ कहौं भुज द्वै।
सतिभाय सदा छल छांड़ि सबै 'तुलसी' जो रहै रघुबीर को ह्वै॥३४॥

शब्दार्थ—सुकृती = पुण्यात्मा। सुचिमंत = पवित्र। स्वै = वही।

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि मैं दोनों हाथ उठाकर सबसे कहता हूँ कि वही पुण्यात्मा, पवित्र, सन्त, चतुर और सुशील-शिरोमणि हैं, देवता और तीर्थ उसका आगमन होनेके

लिए प्रार्थना करते हैं और उसीके शरीरको छूकर लोग पवित्र हो जाते हैं; वही गुणोंका घर और प्रेमका पात्र है जो स्वभावसे ही सब प्रकारके छल कपटको छोड़कर श्रीरामचन्द्रजीका भक्त बनकर रहता है।

सो जननी, सो पिता, सोइ भाइ, सो भामिनि, सो सुत, सो हित मेरो।
सोई सगो, सो सखा, सोइ सेवक, सो गुरु, सो सुर, साहिब चेरो॥
सो 'तुलसी' प्रिय प्रान समान, कहाँ लौं बनाइ कहौं बहुतेरो।
जौ तजि देह को गेह को नेह, सनेह सों राम को होइ सबेरो॥३५॥

शब्दार्थ—भामिनि = स्त्री। चेरो = दास। सबेरो = शीघ्र।

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि जो शरीर और घरका स्नेह छोड़कर स्नेहपूर्वक शीघ्र श्रीरामजीका दास बन जाता है वही मेरे लिए माता, पिता, भाई, स्त्री, पुत्र, हितैषी, सगा, मित्र, सेवक, गुरु, देवता, स्वामी और दास सबकुछ है। अधिक मैं कहाँतक बनाकर कहूँ, वही मुझे प्राणोंके समान प्यारा है।

राम हैं मातु-पिता गुरु बंधु औ संगी सखा सुत स्वामि सनेही।
रामकी सौंह, भरोसो है राम को, राम रँग्यो रुचि राच्यो न केही॥
जीयत राम, मुये पुनि राम, सदा रघुनाथहि की गति जेही।
सोई जियै जगमें 'तुलसी', न-तु डोलत और मुए धरि देही॥३६॥

शब्दार्थ—सौंह = सम्मुख। राच्यो न केही = किसीसे प्रेम नहीं किया।

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि जिनके माँ, बाप, गुरु, बन्धु, साथी, मित्र, स्वामी और स्नेही श्रीरामजी ही हैं, जिनका

मन सदा श्री रामजीके सम्मुख रहता है, जिनको केवल श्री रामजीका भरोसा है, जो रामजीके प्रेममें मग्न हैं अन्य किसीके प्रति अनुरक्त नहीं होते, जो जीते-मरते सदा रामजीका स्मरण करते हैं और जो सदा रामचन्द्रजीको ही अपना आश्रयदाता समझते हैं, वे ही संसारमें जीते हैं; नहीं तो और लोग तो बस शरीर धारण करके चलने-फिरनेवाले मुर्दे हैं।

सियराम-सरूप अगाध अनूप विलोचन-मीननु को जलु है।
स्रुति राम कथा, मुख रामको नाम, हिये पुनि रामहिको थलु है॥
मति रामहिं सों, गति रामहिं सों, रति राम सो रामहिं को बलु है।
सबकी न कहै 'तुलसी' के मते इतनो जग जीवन को फलु है॥३७॥

शब्दार्थ—स्रुति = कान। थलु = स्थान। रति = प्रेम।

भावार्थ—जिनके नेत्र-रूपी मछलियोंके लिए सीता और रामका स्वरूप अथाह जल हो, जो कानोंसे सदा रामजीकी कथा सुनते रहें और मुखसे राम-नाम ही जपते रहें, जिनके हृदयमें रामजीका ही निवास हो, जिनकी बुद्धि रामहीमें विचरण करती हो और गति (पहुँच) भी रामजीतक ही हो, जिनका प्रेम रामजीसे ही हो और जिनको रामजीके ही बलका भरोसा हो, तुलसीदासजी कहते हैं कि और लोगोंकी क्या राय हैं, मैं नहीं कह सकता पर मेरी समझसे संसारमें उन्हींका जीवन सफल है।

दसरत्थ के दानि-सिरोमनि राम, पुरान-प्रसिद्ध सुन्यो जसु मैं।
नर नाग सुरासुर जाचक जो तुम सों मनभावन पायो न कैं॥
'तुलसी' कर जोरि करै बिनती जो कृपा करि दीनदयालु सुनैं।
जेहि देह सनेह न रावरे सों असि देह धराइ कै जाय जियै॥३८॥

शब्दार्थ—नाग = सर्प। कैं = किसने। जाय = व्यर्थ।

भावार्थ—हे दानियोंमें श्रेष्ठ दशरथके पुत्र रामजी, मैंने पुराणोंमें प्रसिद्ध आपका यश सुना है। मनुष्य, सर्प, देवता, राक्षस जिसने भिक्षुक बनकर आपसे माँगा है उनमें ऐसा कौन है जिसे मुँहका माँगा नहीं मिला। तुलसीदासजी हाथ जोड़कर विनती करते हैं कि हे दीनोंपर दया करनेवाले रामजी, यदि आप मेरी प्रार्थना सुनें तो मेरी इच्छा पूरी हो जाय। जिस देहधारीको श्री रामजीसे प्रेम नहीं है उसका संसारमें शरीर धारण करके जीना व्यर्थ है।

'झूठो है' झूठो है, झूठो सदा जग' संत कहंत जे अंत लहा है।
ताको सहै सठ संकट कोटिक, काढ़त दंत, करंत हहा है॥
जानपनी को गुमान बड़ो, 'तुलसी के विचार गँवार महा है।
जानकी-जीवन जान न जान्यो, तौ जान कहावत जान्यो कहा है॥३९॥

शब्दार्थ—अंत लहा है = अन्त पाया है। काढ़त दंत = दाँत निकालता है खीस काढ़ता है।

भावार्थ—जिन सन्तोंने संसारका अंत पाया है, उनका कहना है कि संसार झूठा है—मिथ्या है। उसी संसारके-लिए रे दुष्ट, तू करोड़ों संकट सहता है, विनती करता है और उससे प्राप्त सुखसे प्रसन्न होता है। तुझे अपने ज्ञानीपनका बड़ा अभिमान है, लेकिन तुलसीदासजीके मतसे तू महामूर्ख है। यदि तूने जानकी-जीवन श्री रामजीको नहीं जाना तो और क्या जानकर ज्ञानी कहलाता है?

तिन्ह तें खर सूकर स्वान भले, जड़तावस ते न कहैं कछु वै ।
'तुलसी' जेहि राम सों नेह नहीं सो सही पसु पूँछ विखान न द्वै ॥
जननी कत भार मुई दस मास भई किन बाँझ, गई किन च्वै ।
जरि जाउ सो जीवन, जानकिनाथ! जियै जगमें तुमरो बिन ह्वै ॥४०॥

शब्दार्थ—खर = गधा । कछु वै = कुछ भी । विखान (विषाण) = सींग । किन = क्यों नहीं । च्वै = चू गया ।

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि जिन मनुष्योंको रामचन्द्रजीसे प्रेम नहीं है वे वास्तवमें पूँछ और सींगसे रहित पशु हैं । उनसे तो गधे, सूअर और कुत्ते ही अच्छे हैं जो जड़ होनेके कारण कुछ कह नहीं सकते । ऐसे पुत्रको माताने दस महीनेतक गर्भमें क्यों रखकर कष्ट सहा, उसका गर्भ गिर क्यों नहीं गया अथवा वह बाँझ क्यों नहीं हो गयी ? हे रामजी, जो आपके बिना संसारमें जीता है उसका जीना व्यर्थ है ।

गज-बाजि-घटा, भले भूरि भटा, बनिता सुत भौंह तकैं सब वै ।
धरनी धन धाम सरीर भलो, सुरलोकहु चाहि इहै सुख स्वै ॥
सब फोटक साटक है 'तुलसी', अपनो न कछू, सपनो दिन द्वै ।
जरि जाउ सो जीवन जानकिनाथ! जियै जगमें तुम्हरो बिन ह्वै ॥४१॥

शब्दार्थ—गज = हाथी । बाजि = घोड़ा । घटा = समूह । भटा = योद्धा । भौंह तकैं = रुख देखते हैं । वै = ही । चाहि = बढ़कर । फोटक = छूँछा, निस्सार । साटक = भूसी ।

भावार्थ—हाथी, घोड़े, अच्छे अच्छे योद्धाओंका समूह है, आज्ञाकारी स्त्री, पुत्र हैं, जमीन, धन, घर और सुन्दर शरीर है,

देवलोकसे भी बढ़कर सुखका सब साधन है। तुलसीदासजी कहते हैं कि हे रामजी यदि मनुष्य इस संसारमें तुम्हारा भक्त होकर न रहे तो यह सब सुख भूसीके समान सारहीन हैं, उसका अपना कुछ भी नहीं है, सारी चीजें थोड़े दिनोंके लिए स्वप्नके समान हैं।

सुरराज सो राज-समाज समृद्धि विरंचि, धनाधिप सो धन भो।
पवमान सो, पावक सो, जम-सोम सो, पूषन सो, भवभूषन भो॥
करि जोग, समीरन साधि, समाधि कै, धीर बड़ो, बसहू मन भो।
सब जाय सुभाय कहै 'तुलसी' जो न जानकी-जीवनको जन भो॥४२॥

शब्दार्थ—विरंचि = ब्रह्मा। धनाधिप = कुबेर। पवमान = वायु। सोम = चन्द्रमा। पूषन = सूर्य। समीरन साधि = प्राणायामकी साधना करके।

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि यदि इन्द्रके समान राज्यका सामान, ब्रह्माके समान समृद्धि और कुबेरके समान धन हुआ; वायुके समान (वेग), अग्निके समान (तेज), यमराजके समान (दंड), चन्द्रमाके समान (शीतल), सूर्यके समान प्रताप और संसारमें सर्वश्रेष्ठ हुआ; योगाभ्यास करके, प्राणायामकी साधना करके, समाधि लगाकर बड़ा धैर्यवान हुआ और मन भी वशमें हो गया (तो क्या हुआ) यदि रामजीका भक्त न हुआ तो ये सब व्यर्थ हैं।

काम-से रूप, प्रताप दिनेस-से, सोम-से सील, गनेस-से माने।
हरिचंद-से सांचे, बड़े विधि-से, मघवा-से महीप विषै-सुख साने॥

सुक-से मुनि, सारद-से बकता, चिरजीवन लोमस तें अधिकाने।
ऐसे भये तौ कहा 'तुलसी' जुपै राजिव-लोचन राम न जाने ॥४३॥

शब्दार्थ—मघवा = इन्द्र, सारद = सरस्वती । महीप = राजा । साने = लिप्त ।

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि यदि कामदेवके समान सुन्दर सूर्यके समान प्रताप, चन्द्रमाके समान सुशील, गणेशके समान आदर, हरिश्चन्द्रके समान सत्यवादी, ब्रह्मासे भी बड़े, इन्द्रके समान विषय-सुखमें लिप्त राजा, शुकदेवके समान मुनि, सरस्वतीके समान वक्ता, लोमस ऋषिसे भी अधिक दीर्घायु हो गये तो इससे क्या ? यदि कमलके समान नेत्रवाले श्रीरामजीको नहीं जाना (तो सब व्यर्थ है) ।

झूमत द्वार अनेक मतंग जँजीर-जरे मद अंबु चुचाते।
तीखे तुरंग मनोगति चंचल, पौन के गौनहुँ तें बढ़ि जाते ॥
भीतर चन्द्रमुखी अवलोकति, बाहर भूप खरे न समाते।
ऐसे भये तौ कहा 'तुलसी' जुपै जानकिनाथ के रंग न राते ॥४४॥

शब्दार्थ—मतंग = हाथी । मद-अंबु = मदका जल । चुचाते = टपकते । तुरंग = घोड़ा ।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि दरवाजेपर मद-जल टपकाते हुए जंजीरसे बँधे बहुतसे हाथी झूम रहे हों, मनके वेगके समान चंचल, वायुकी गतिसे भी आगे बढ़ जानेवाले द्रुतगतिवाले घोड़े हों, घरके भीतर चन्द्रमाके समान मुखवाली स्त्री देख रही हो और बाहर (स्वागतके लिए) राजाओंकी ठसाठस भीड़

लगी हो, ऐसे समृद्धिशाली यदि हो गये तो क्या हुआ यदि श्री रामचन्द्रके रंगमें न रँगे।

राज सुरेस पचासक को, विधि के कर को जो पटो लिखि पाए।
पूत सुपूत, पुनीत प्रिया, निज सुंदरता रति को मद नाए॥
संपति सिद्ध सबै 'तुलसी' मन की मनसा चितवैं चित लाए।
जानकीजीवन जाने बिना जग ऐसेउ जीव न जीव कहाए॥४५॥

शब्दार्थ—सुरेश = इन्द्र। पटो = पट्टा, प्रमाण-पत्र। मद-नाए = अभिमानसे चूर्ण किये। मनसा = इच्छा।

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि यदि ब्रह्माके हाथके लिखे हुए प्रमाण-पत्रद्वारा पचासों इन्द्रके समान राज्य पाया हो, पुत्र सपूत हो, अपनी सुन्दरतासे रतिके (सुन्दरताके) अभिमानको नीचा दिखानेवाली पवित्र स्त्री हो, सब सम्पत्तियाँ तथा सिद्धियाँ मन लगाकर उसकी इच्छाकी प्रतीक्षा करती हों, किन्तु श्रीरामचन्द्रजीको जाने बिना संसारमें ऐसे लोग भी जीव नहीं कहे जा सकते अर्थात् इतने भाग्यशाली मनुष्य भी मृतकके समान हैं।

कृसगात ललात जो रोटिन को, घरवात घरै खुरपा खरिया।
तिन सोने के मेरु से ढेरु लहे, मन तौ न भरो घर पै भरिया॥
'तुलसी', दुख दूनो दसा दुहुँ देखि, कियो मुख दारिद को करिया।
तजि आस भो दास रघुप्पति को, दसरत्थ को दानि दया-दरिया॥४६॥

शब्दार्थ—कृसगात = दुर्बल शरीर। घरबात = घरकी सम्पत्ति। खरिया = घास बाँधनेकी जाली। करिया = काला। दरिया (फा०) = समुद्र।

भावार्थ—जो दुर्बल शरीरवाले रोटियोंके लिए तरस रहे थे, जिनके घरकी सम्पत्ति खुर्पा और घास बाँधनेकी जालीमात्र थी, उन्हें यदि सोनेका पहाड़ मिल गया जिससे उनका घर तो भर गया किन्तु मन तो भरा नहीं अर्थात् सन्तोष नहीं हुआ। तुलसीदास कहते हैं कि दोनों दशाओंमें दुःख ही दुःख देखकर मैंने दरिद्रताका मुँह काला कर दिया और सब आशाओंको छोड़कर मैं दशरथके दानी पुत्र दयाके समुद्र श्रीरामजीका दास बन गया।

को भरिहै हरि के रितये, रितवै पुनि को हरि जौ भरिहै।
उथपै तेहि को जेहि राम थपै? थपिहै तेहि को हरि जो टरिहै॥
'तुलसी' यह जानि हिये अपने सपने नहिं कालहु तें डरिहै।
कुमया कछु हानि न औरन की जोपै जानकीनाथ मया करिहै॥४७॥

शब्दार्थ—रितये = खाली करनेपर। उथपै = उखाड़ सकता है। थपै = स्थापित करते हैं। कुमया = क्रोध। मया = कृपा।

भावार्थ—जिसे रामजी खाली कर दें, उसे कौन भर सकता है और जिसे रामजी भर दें उसे कौन खाली कर सकता है। रामजीके बसाये हुएको कौन उजाड़ सकता है और उनके उजाड़े हुएको कौन बसा सकता है। तुलसीदास कहते हैं कि हृदयमें यह जानकर स्वप्नमें भी मैं कालसे नहीं डरूँगा। यदि श्रीरामचन्द्रजी कृपा करेंगे तो औरोंके क्रोध करनेसे कुछ भी हानि नहीं हो सकती।

ब्याल कराल, महाबिष, पावक, मत्तगयंदहु के रद तोरे।
साँसति संकि चली, डरपे हुते किंकर, ते करनी मुख मोरे॥

नेकु विषाद नहीं प्रहलादहि, कारन केहरि केवल हो रे।
कौन की त्रास करै 'तुलसी', जो पै राखिहै राम तो मारिहै को रे ॥४८॥

शब्दार्थ—व्याल = सर्प। रद = दाँत। संकि = सशंकित होकर। हुते = थे। केहरि = सिंह, नृसिंह भगवान। को = कौन।

भावार्थ—हिरण्यकशिपुने प्रह्लादको मारनेके लिए भयंकर साँप भेजे (लेकिन वे भाग गये), हलाहल विष भेजा (किन्तु वह अमृत हो गया), अग्निको भेजा (किन्तु वह शीतल हो गया), मतवाले हाथियोंको भेजा (किन्तु परमात्माने उनके भी दांत तोड़ दिये)। कष्ट भी डरकर भाग गया, भयभीत हुए सेवकोंने भी हिरण्यकशिपुका काम करनेसे मुँह मोड़ लिया। प्रह्लादको जरा भी कष्ट नहीं हुआ इसके कारण केवल नृसिंह भगवान थे। तुलसीदासजी कहते हैं कि तू किसका भय करता है यदि रामचन्द्रजी रक्षा करेंगे तो मारनेवाला कौन है?

कृपा जिनकी कछु काज नहीं, न अकाज कछू जिनके मुख मोरे।
करैं तिनकी परवाहि ते, जो बिनु पूँछ बिषान फिरैं दिन दौरे॥
'तुलसी' जेहि के रघुनाथ-से नाथ, समर्थ सु सेवत रीझत थोरे।
कहा भव-भीर परी तेहि धौं, बिचरै धरनी तिन सों तिन तोरे ॥४९॥

शब्दार्थ—अकाज = हानि। बिषान = सींग। तिन तोरे = तृण तोड़कर।

भावार्थ—जिनकी कृपा होनेसे कुछ भी काम नहीं होता और न जिनके मुख मोड़नेसे कोई हानि ही होती है, उनकी वे ही लोग परवाह कर सकते हैं जो बिना सींग पूँछके पशुकी

तरह इधर उधर दौड़ते रहते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि थोड़ी ही सेवासे प्रसन्न होनेवाले श्रीरामजी जिसके स्वामी हैं उसपर सांसारिक कष्ट किस प्रकार आ सकते हैं। वह तो सांसारिक कष्टोंसे नाता तोड़कर पृथिवीपर निर्भय होकर विचरण करता है।

कानन, भूधर, बारि, बयारि, महाविष, व्याधि, दवा, अरि घेरे।
संकट कोटि जहाँ 'तुलसी' सुत मातु पिता हित बंधु न नेरे॥
राखिहैं राम कृपालु तहाँ, हनुमान-से सेवक हैं जेहि केरे।
नाक, रसातल, भूतल में रघुनायक एक सहायक मेरे॥५०॥

शब्दार्थ—कानन = वन। भूधर = पहाड़। नेरे = निकट। नाक = स्वर्ग। रसातल = पाताल।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि जहाँ वन, पहाड़, जल, हवा, हलाहल विष, रोग, दावाग्नि और शत्रुओंसे घिरे हुए करोड़ों संकट हों और माता, पिता, हितैषी, मित्र और भाई कोई भी पास न हो, वहाँ मेरी रक्षा कृपालु श्रीरामचन्द्रजी करेंगे जिनके हनुमान-सरीखे सेवक हैं। स्वर्गमें, पातालमें और पृथिवीपर केवल एक रामजी ही मेरे सहायक हैं।

जौं जमराज रजायसु तें मोहिं लै चलिहैं भट बांधि नटैया।
तात न मात न स्वामि सखा सुत बंधु बिसाल बिपत्ति बँटैया॥
सांसति घोर, पुकारत आरत, कौन सुनै चहुँ ओर डँटैया।
एक कृपालु वहाँ 'तुलसी' दसरत्थ को नन्दन बंदि-कटैया॥५१॥

शब्दार्थ—रजायसु = आज्ञा। नटैया = गर्दन। आरत = दीन दुखी। डँटैया = फटकारनेवाले।

भावार्थ—जब यमकी आज्ञासे उनके दूत मेरी गर्दन पकड़कर ले चलेंगे तब उस संकटमें हाथ बँटानेवाला पिता, माता, स्वामी, मित्र, पुत्र या भाई कोई न होगा। घोर संकटसे दुखी होकर चिल्लानेपर मेरी दुःखभरी आवाजपर कौन ध्यान देगा? चारो ओर फटकारनेवाले ही रहेंगे। तुलसीदास कहते हैं कि उस कष्टके बन्धनको काटनेवाले दशरथके पुत्र कृपालु श्रीरामचन्द्रजी ही हैं।

जहाँ जम-जातना, घोर-नदी, भट कोटि जलच्चर दंत-टेवैया।
जहँ धार भयंकर वार न पार, न बोहित, नाव न नीक खेवैया॥
'तुलसी' जहँ मातु पिता न सखा, नहि कोउ कहूँ अवलम्ब देवैया।
तहाँ बिनु कारन राम कृपालु, बिसाल भुजा गहि काढ़ि लेवैया॥५२॥

शब्दार्थ—टेवैया = टेनेवाले, तेज करनेवाले। बोहित = जहाज। गहि = पकड़कर।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि जहाँ यमराजके करोड़ों दूत कष्ट पहुँचानेवाले हैं, जहाँ तेज दाँतवाले जल-जन्तुओंसे भरी हुई वैतरणी नदी है जिसकी भयङ्कर धाराका वार-पार नहीं है, न जहाज है, न नौका है और न अच्छा खेनेवाला ही है। जहाँ माता, पिता, मित्र कोई भी सहारा देनेवाला नहीं है, वहाँ बिना कारण ही अपनी लम्बी भुजाओंसे पकड़कर निकाल लेनेवाले कृपालु श्री रामचन्द्रजी ही हैं।

जहाँ हित, स्वामि, न संग सखा, बनिता, सुत, बंधु न, बापु न मैया।
काय गिरा मन के जन के अपराध सबै छल छांड़ि छमैया॥

'तुलसी' तेहि काल कृपालु विना दूजो कौन है दारुन दुःख-दमैया।
जहाँ सब संकट, दुर्घट सोच तहाँ मेरो साहिब राखै रमैया ॥५३॥

शब्दार्थ—वनिता = स्त्री। काय = शरीर। गिरा = वाणी। छमैया = क्षमा करनेवाले। दमैया = दमन करनेवाला। रमैया = सर्वत्र रमनेवाले।

भावार्थ—जहाँ हित करनेवाला, स्वामी, साथका मित्र, स्त्री, पुत्र, भाई, बाप माँ कोई नहीं है, तुलसीदास कहते हैं कि वहाँ भक्तोंके मन-वचन-कर्मसे किये हुए अपराधोंको छल छोड़कर क्षमा करनेवाला और कठिन दुःखको दूर करनेवाला कृपालु श्रीरामजी-के सिवा दूसरा कौन है? जहाँपर संकट ही संकट और सोच ही सोच हैं, वहाँपर मेरे स्वामी श्री रामजी रक्षा करनेवाले हैं।

तापस को बरदायक देव, सबै पुनि बैर बढ़ावत बाढ़े।
थोरेहि कोप कृपा पुनि थोरेहि, बैठिकै जोरत तोरत ठाढ़े॥
ठोंकि बजाय लखे गजराज, कहाँ लौं कहौं केहि सों रद काढ़े।
आरत के हित नाथ अनाथ के राम सहाय सही दिन गाढ़े ॥५४॥

शब्दार्थ—बाढ़े = बढ़नेपर। रद काढ़े = दाँत निकालना, विनती करना। दिन गाढ़े = बुरे समयमें।

भावार्थ—देवतागण तपस्वियोंको वर देनेवाले हैं और फिर उनकी उन्नति होनेपर उनसे शत्रुता करने लगते हैं। थोड़ेमें ही क्रोध करते हैं और फिर थोड़ेमें ही कृपा करते हैं। वे क्षणभरमें ही प्रीति जोड़ते हैं और दूसरे ही क्षण उसे तोड़ देते हैं। गज-राजने ठोंक-ठठाकर (भलीभांति परीक्षा करके) देवताओंको देख लिया, कहाँतक कहूँ उसने किसके सामने दाँत नहीं निकाला।

दुखियोंके हितैषी तथा अनाथोंके नाथ और दुर्दिन पड़नेपर सच्चे सहायक केवल एक रामजी ही हैं।

जप, जोग, विराग महामख-साधन, दान, दया, दम कोटि करै।
मुनि, सिद्ध, सुरेस, गनेस, महेस-से सेवत जन्म अनेक मरै॥
निगमागम ज्ञान पुरान पढ़ै, तपसानल में जुग-पुंज जरै।
मन सों पन रोपि कहै 'तुलसी' रघुनाथ बिना दुख कौन हरै॥५५॥

शब्दार्थ—मख = यज्ञ। निगमागम = वेद-शास्त्र। पुंज = समूह। पन रोपि = प्रण करके।

भावार्थ—चाहे कोई जप, योग, वैराग्य, महायज्ञकी साधना, दान, दया, इन्द्रिय-दमन आदि करोड़ों उपाय करे और मुनि, सिद्ध, इन्द्र, गणेश, शिव जैसे देवताओंकी सेवा करते-करते अनेकों जन्म बिता दे, वेद-शास्त्रका ज्ञान प्राप्त कर ले, पुराणोंको पढ़ डाले और अनेकों युग तपस्याकी आगमें जलता रहे, किन्तु तुलसीदासजी अपने मनसे प्रतिज्ञा करके (जोर देकर) कहते हैं कि श्री रामजीके बिना दुःखोंको हरनेवाला दूसरा कोई नहीं है।

विशेष

१—'योग'—अष्टांग योग; यम, नियम, आसन, प्रत्याहार, प्राणायाम, धारणा, ध्यान और समाधि।

२—'दम'—षट् सम्पत्ति; सम (वासना-त्याग), दम (इन्द्रिय-विषयोंको रोकना), उपरति (विषयोंसे पीठ देना), तितिक्षा (शीत-उष्णको सहना), श्रद्धा (गुरु वेदान्त वाक्यमें विश्वास), समाधान (एकाग्र चित्त होना)।

पातक पीन, कुदारिद दीन, मलीन धरे कथरी करवा है।
लोक कहै विधि हू न लिख्यो, सपने हूँ नहीं अपने वर वाहै॥
राम को किंकर सो 'तुलसी' समुझेहि भलो कहिबो न रवा है।
ऐसे को ऐसो भयो कबहूँ न, भजे बिन बानर के चरवाहै॥५६॥

शब्दार्थ—पीन = मोटा, पुष्ट। करवा = मिट्टीका वर्त्तन। वर = बल। रवा (फा०) = उचित।

भावार्थ—अत्यन्त पापी, दरिद्रतासे दीन मैला कुचैला, फटे पुराने कपड़े और मिट्टीका वर्त्तन धारण किये हुए आदमीको देखकर लोग कहते हैं कि ब्रह्माने भी इसके भाग्यमें सुख नहीं लिखा, इसकी भुजाओंमें स्वप्नमें भी बल नहीं है। तुलसीदास कहते हैं कि ऐसे मनुष्य भी यदि रामजीके दास हो जायँ तो उनकी दशा समझने योग्य हो जायगी, इसे कहनेकी जरूरत नहीं है। बन्दरोंको सन्मार्गपर लानेवाले रामजीके भजनके सिवा ऐसे अभागे कभी भाग्यशाली नहीं हो सकते।

मातु पिता जग जाय तज्यो विधिहू न लिखी कछु भाल भलाई।
नीच, निरादर-भाजन, कादर, कूकर टूकन लागि ललाई॥
राम-सुभाउ सुन्यो 'तुलसी' प्रभुसों कह्यो बारक पेट खलाई।
स्वारथ को परमारथ को रघुनाथ सो साहब खोरि न लाई॥५७॥

शब्दार्थ—जाय = उत्पन्न होकर। लागि = वास्ते। बारक = एकबार। खोरि = दोष।

भावार्थ—(तुलसीदासजी इस छन्दमें अपने लिए कहते हैं) माता, पिताने मुझे संसारमें उत्पन्न करके छोड़ दिया, ब्रह्माने भी मेरे ललाटमें कोई अच्छी बात नहीं लिखी। मैं नीच, निरादरका

पात्र तथा कायर था और कुत्तोंके टुकड़ेके लिए भी (चारों ओर) ललाता फिरता था। किन्तु जब मैंने रामजीका स्वभाव सुना तब उनसे एकबार पेट खलाकर अपना दुःख कहा। रामजीके समान स्वामीने लौकिक और पारलौकिक सुख पहुँचानेमें कोई कमी नहीं की।

पाप हरे, परिताप हरे, तन पूजि भो हीतल सीतलताई।
हंस कियो बक तें बलि जाउँ, कहाँ लौं कहौं करुना अधिकाई॥
काल बिलोकि कहै 'तुलसी' मन में प्रभु की परतीति अघाई।
जन्म जहाँ तहँ रावरे सों निबहै भरि देह सनेह सगाई॥५८॥

शब्दार्थ—परिताप = दुःख। हीतल = हृदय-तल। भरि देह = जिन्दगीभर। सगाई = सम्बन्ध।

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि हे रामजी आपने मेरे पापों और दुःखोंको हर लिया जिससे मेरा शरीर पूज्य हो गया और हृदय शीतल हो गया। आपने मुझे बगुलेसे हंस बना दिया; बलिहारी! आपकी करुणाको मैं अधिक कहाँतक कहूँ। मैं अपने समयका उलट-फेर देखकर कहता हूँ कि मेरा प्रभुजीपर पूरा विश्वास है। बस, अब तो मेरी यही अभिलाषा है कि मेरा जहाँ कहीं भी जन्म हो जन्मभर आपके साथ स्नेह-सम्बन्ध निभता रहे।

लोग कहैं अरु हौं हूँ कहौं 'जन खोटो खरो रघुनायक ही को'।
रावरी राम बड़ी लघुता, जस मेरो भयो सुखदायक ही को॥
कै यह हानि सहौ बलि जाउँ कि मोहूँ करौ निज लायक ही को।
आनि हिए हित जानि करौ ज्यों हौं ध्यान धरौं धनुसायक ही को॥५९॥

शब्दार्थ—हौं हूँ=मैं भी। खोटो खरो=बुरा भला। ही=हृदय। कै=या तो।

भावार्थ—लोग कहते हैं और मैं भी कहता हूँ कि मैं भला बुरा जैसा भी हूँ रामजीका ही सेवक हूँ। हे रामजी, इसमें आपकी बड़ी बदनामी है; किन्तु मेरा यश (आपका सेवक होनेका) मेरे हृदयको सुख देनेवाला हुआ। मैं बलि जाता हूँ या तो आप इस बदनामीको सहन कीजिये और या मुझे अपना योग्य सेवक बनाइये। अपने हृदयमें यह विचारकर और मेरा भला जानकर ऐसा कीजिए जिससे मैं आपके धनुषधारी रूपका ध्यान कर सकूँ।

आपु हौं आपु को नीक कै जानत, रावरो राम! भरायो गढ़ायो।
कीर ज्यौं नाम रटै 'तुलसी' सो कहै जग जानकीनाथ पढ़ायो॥
सोई है खेद जो बेद कहै, न घटै जन्न जो रघुबीर बढ़ायो।
हौं तो सदा खरको असवार, तिहारोई नाम गयंद चढ़ायो॥६०॥

शब्दार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि मैं अपनेको स्वयं ही अच्छी तरहसे जानता हूँ कि मैं आपहीका बनाया हुआ हूँ। संसार यह कहता है कि तोतेकी तरह (तुलसीदास) जो राम नाम रटा करता है वह रामजीका ही पढ़ाया हुआ है। किन्तु इसके हृदयमें रामजीके प्रति प्रेम नहीं है। मुझे इसी बातका खेद है। वेद कहता है कि रामजी जिसको बढ़ाते हैं, वह कभी घटता नहीं। मैं तो सदासे गधेपर चढ़नेवाला था, आपहीके नामने मुझे हाथीपर चढ़ाया अर्थात् प्रतिष्ठित बनाया।

कवित्त

छार तें सँवारि कै पहार हू तें भारो कियो,
गारो भयो पंच में पुनीत पच्छ पाइ कै।
हौं तौ जैसो तब तैसो अब, अधमाई कै कै,
पेट भरौं राम रावरोइ गुन गाइ कै॥
आपने निवाजे की पै कीजै लाज, महाराज!
मेरी ओर हेरि कै न बैठिए रिसाइ कै।
पालि कै कृपालु ब्याल-बाल को न मारिए,
औ काटिए न, नाथ बिषहू को रूख लाइकै॥६१॥

शब्दार्थ—छार=धूल। गारो=वजनदार, गौरव। ब्याल-बाल=साँपका बच्चा, पोआ।

भावार्थ—हे रामचन्द्रजी, आपने मुझ धूलके समान तुच्छको सँवारकर पहाड़से भी भारी बना दिया। मैं आपका पवित्र पक्ष पाकर पंचोंमें वजनदार हो गया। मैं तो जैसा पहले था वैसा ही अब भी हूँ और नीचता करते रहनेपर भी आपका गुण गा-गाकर अपना पेट भरता फिरता हूँ। हे महाराज, किन्तु आप तो अपने कृपालु स्वभावकी लज्जा रखिए, मेरी नीचताकी ओर देखकर क्रुद्ध होकर न बैठ जाइये। हे कृपालु नाथ, साँपके पोएको पालकर नहीं मारना चाहिए और विषका पेड़ लगाकर उसे भी न काटना चाहिए।

बेद न पुरान गान जानौं न बिग्यान ग्यान,
ध्यान, धारना, समाधि, साधन-प्रबीनता।

नाहिंन विराग, जोग, जाग, भाग 'तुलसी' के,
दया-दीन-दूबरो हौं, पाप ही की पीनता ॥
लोभ-मोह-काम-कोह-दोप-कोष मोंसो कौन ?
कलिहू जो सीखि लई मेरियै मलीनता ।
एक ही भरोसो राम रावरो कहावत हौं,
रावरे दयालु दीनबंधु मेरी दीनता ॥६२॥

शब्दार्थ—पीनता = पुष्टता। कोह = क्रोध। कोष = खजाना, भंडार। दीनता = गरीबी।

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि हे रामजी न तो मैं वेद और पुराणोंको पढ़ना ही जानता हूँ, न मुझे विज्ञानका ही ज्ञान है; ध्यान, धारणा और समाधि आदि साधनोंमें भी मैं निपुण नहीं हूँ। मेरे भाग्यमें वैराग्य, योग और यज्ञ करना भी नहीं लिखा है, दया तथा दानमें दुर्बल हूँ केवल पापकी ही पुष्टि है अर्थात पाप ही खूब किया है। मेरे समान काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि दोषोंका भंडार कौन है ? कलियुगने भी मुझसे ही पाप करना सीखा है। हे रामचन्द्रजी मुझे बस यही एक भरोसा है कि मैं आपका कहलाता हूँ। आप दयालु हैं दीनोंके बन्धु हैं इसलिए मेरी दीनतापर अवश्यमेव ध्यान देंगे।

(११) रावरो कहावौं गुन गावौं राम रावरोई,
रोटी द्वै हौं पावौं राम रावरी ही कानि हौं।
जानत जहान, मन मेरे हू गुमान बड़ो,
मान्यो मैं न दूसरो, न मानत न मानिहौं ॥

कवित्त

छार तें सँवारि कै पहार हू तें भारो कियो,
गारो भयो पंच में पुनीत पच्छ पाइ कै।
हौं तौ जैसो तब तैसो अब, अधमाई कै कै,
पेट भरौं राम रावरोइ गुन गाइ कै॥
आपने निवाजे की पै कीजै लाज, महाराज!
मेरी ओर हेरि कै न बैठिए रिसाइ कै।
पालि कै कृपालु ब्याल-बाल को न मारिए,
औ काटिए न, नाथ विषहू को रुख लाइकै॥६१॥

शब्दार्थ—छार = धूल। गारो = वजनदार, गौरव। ब्याल-बाल = साँपका बच्चा, पोआ।

भावार्थ—हे रामचन्द्रजी, आपने मुझ धूलके समान तुच्छको सँवारकर पहाड़से भी भारी बना दिया। मैं आपका पवित्र पक्ष पाकर पंचोंमें वजनदार हो गया। मैं तो जैसा पहले था वैसा ही अब भी हूँ और नीचता करते रहनेपर भी आपका गुण गा-गाकर अपना पेट भरता फिरता हूँ। हे महाराज, किन्तु आप तो अपने कृपालु स्वभावकी लज्जा रखिए, मेरी नीचताकी ओर देखकर क्रुद्ध होकर न बैठ जाइये। हे कृपालु नाथ, साँपके पोएको पालकर नहीं मारना चाहिए और विषका पेड़ लगाकर उसे भी न काटना चाहिए।

बेद न पुरान गान जानौं न विज्ञान ज्ञान,
ध्यान, धारना, समाधि, साधन-प्रबीनता।

नाहिंन विराग, जोग, जाग, भाग 'तुलसी' के,
दया-दीन-दूवरो हौं, पाप ही की पीनता ॥
लोभ-मोह-काम-कोह-दोष-कोष मोंसो कौन ?
कलिहू जो सीखि लई मेरियै मलीनता ।
एक ही भरोसो राम रावरो कहावत हौं,
रावरे दयालु दीनबंधु मेरी दीनता ॥६२॥

शब्दार्थ—पीनता = पुष्टता । कोह = क्रोध । कोष = खजाना, भंडार । दीनता = गरीबी ।

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि हे रामजी न तो मैं वेद और पुराणोंको पढ़ना ही जानता हूँ, न मुझे विज्ञानका ही ज्ञान है; ध्यान, धारणा और समाधि आदि साधनोंमें भी मैं निपुण नहीं हूँ। मेरे भाग्यमें वैराग्य, योग और यज्ञ करना भी नहीं लिखा है, दया तथा दानमें दुर्बल हूँ केवल पापकी ही पुष्टि है अर्थात पाप ही खूब किया है। मेरे समान काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि दोषोंका भंडार कौन है ? कलियुगने भी मुझसे ही पाप करना सीखा है। हे रामचन्द्रजी मुझे बस यही एक भरोसा है कि मैं आपका कहलाता हूँ। आप दयालु हैं दीनोंके वन्धु हैं इसलिए मेरी दीनतापर अवश्यमेव ध्यान देंगे।

रावरो कहावौं गुन गावौं राम रावरोई,
रोटी द्वै हौं पावौं राम रावरी ही कानि हौं ।
जानत जहान, मन मेरे हू गुमान वड़ो,
मान्यो मैं न दूसरो, न मानत न मानिहौं ॥

पाँच की प्रतीति न भरोसो मोहिं आपनोई,
तुम अपनायो हौं तबै हौं परि जानि हौं।
गढ़ि गुढ़ि, छोलि छालि कुंद की सी भाई बातैं,
जैसी मुख कहौं तैसी जीय जब आनिहौं ॥६३॥

शब्दार्थ—कानि = लज्जा । जहान = दुनिया । गुमान = घमंड । पाँच = पंचदेव, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, गणेश, सूर्य ।

भावार्थ—हे रामचन्द्रजी, मैं आपका कहलाता हूँ और आपहीका गुण गाता हूँ; आपहीकी लज्जासे मैं दो रोटियाँ भी पाता हूँ। इस बातको संसार जानता है और मेरे मनमें भी इस बातका बड़ा घमंड है कि मैंने आपके सिवा दूसरे किसीको भी न माना, न मानता हूँ और न मानूँगा। मुझे पंचदेवोंपर विश्वास नहीं है, केवल आपहीका भरोसा है। किन्तु आपने मुझे अपना लिया, यह मैं तभी समझूँगा जब गढ़-गुढ़कर तथा छोल-छालकर कुन्दके समान स्वच्छ बातें—जैसी कि मैं मुखसे कहा करता हूँ, मेरे हृदयमें आप ला देंगे।

बचन बिकार, करतबउ खुआर, मन,
बिगत-बिचार, कलिमल को निधानु है।
राम को कहाइ, नाम बेचि बेचि खाइ, सेवा
संगति न जाइ पाछिले को उपखानु है॥
तेहू 'तुलसी' को लोग भलो भलो कहैं ताको
दूसरो न हेतु, एक नीके कै निदानु है।
लोकरीति बिदित बिलोकियत जहाँ तहाँ,
स्वामी के सनेह स्वान हू को सनमानु है ॥६४॥

शब्दार्थ—खुआर (ख्वार)=खराब। कलिमल=कलिके पाप। उपखानु=कहावत। निदानु=कारण। स्वान=कुत्ता।

भावार्थ—जिसके वचनमें विकार है, कर्म बुरे हैं और मन विचार-रहित तथा कलियुगके पापोंसे भरा हुआ है, जो रामका दास कहलाता है और रामजीका ही नाम बेचकर खाता है किन्तु सत्संग या सेवा-कार्यके निकट पिछली कहावतके अनुसार नहीं जाता, उस तुलसीको भी लोग बहुत अच्छा कहते हैं। इसका कोई दूसरा कारण नहीं है, इसका निश्चित कारण यही है, संसारमें यह रीति प्रसिद्ध है, जहाँ-तहाँ देखनेमें भी आती है कि कुत्तेका भी सम्मान स्वामीके स्नेह रखनेपर ही होता है।

कवित्त

स्वारथको साज न समाज परमारथ को,
मोसों दगाबाज दूसरो न जगजाल है।
कै न आयौं, करौं न करौंगो करतूति भली,
लिखी न बिरंचि हू भलाई भूलि भाल है॥
रावरी सपथ, राम! नाम ही की गति मेरे,
इहाँ झूठो झूठो सो तिलोक तिहूँ काल है।
'तुलसी' को भलो पै तुम्हारे ही किये कृपालु,
कीजै न बिलंब, बलि, पानी-भरी खाल है॥६५॥

शब्दार्थ—स्वारथको साज=सांसारिक सुखके सामान। भाल=ललाट। गति=पहुँच, भरोसा। पानी-भरी खाल=पानीसे भरी हुई मसक, नश्वर शरीर।

भावार्थ—मेरे पास न तो सांसारिक सुखके सामान हैं और न परमार्थके साधन ही हैं। इस भवजालमें मुझ सरीखा धोखेबाज दूसरा कोई नहीं है। न तो मैंने पहले ही अच्छे कर्म किये हैं, न इसी समय कर रहा हूँ, न भविष्यमें ही करूँगा। ब्रह्माने भी भूलकर मेरे ललाटमें भलाई करना नहीं लिखा है। हे रामजी, मैं आपकी शपथ करके कहता हूँ कि मुझे तो बस आपके नामका ही भरोसा है। क्योंकि यहाँ जो झूठा है वह तीनो लोक और तीनो कालमें झूठा है, उसका विश्वास कोई नहीं कर सकता। हे कृपालु, तुलसीदासका भला तो आपहीके करनेपर होगा। आप देर न कीजिए, बलि जाता हूँ, यह शरीर पानीसे भरी हुई खालके समान है जो सड़कर नष्ट हो जानेवाला है।

विशेष

१—'स्वारथको साज'—सांसारिक सुखके आठ अंग हैं। यथा—

सुगन्धं वनिता वस्त्रं गीतं ताम्बूल भोजनम्।
भूषणं वाहनंचेति भाग्याष्टकमुदीरितम्॥ —भगवद्गुण दर्पण।

अर्थात्—सुगन्ध (इत्र आदि) सुन्दरी स्त्री, सुन्दर वस्त्र, गाना-बजाना, पान, उत्तम भोजन, आभूषण और गज-रथादि वाहन (सवारी) ये आठ सौभाग्यके चिह्न हैं।

२—'परमारथको समाज'—तीर्थ, व्रत, यज्ञ, जप, तप, ज्ञान, योग, वैराग्य, शान्ति, सन्तोष आदि परमार्थके साधन हैं।

कवित्त

राग को न साज, न बिराग जोग जाग जिय,
काया नहिं छाँड़ि देत ठाटिबो कुठाट को।

मनोराज करत अकाज भयो आजु लगि,
चाहै चारु चीर पै लहै न टूक टाट को ।।
भयो करतार बड़े कूर को कृपालु, पायो,
नाम-प्रेम-पारस हौं लालची बराट को ।
तुलसी बनी है राम रावरे बनाए, ना तौ,
धोबी कैसो कूकर न घर को न घाट को ।।६६।।

शब्दार्थ—राग = लौकिक सुख। साज = सामान। चारु = सुन्दर। बराट = कौड़ी।

भावार्थ—मेरे पास न तो सांसारिक सुखके साधन हैं और न पारलौकिक सुखके साधन वैराग्य, योग, यज्ञ आदि ही हृदयमें हैं; यह शरीर बुरे ठाटोंसे ठटना भी नहीं छोड़ता। अबतक मनोराज्य करते अकाज ही हुआ है क्योंकि मैं चाहता तो हूँ सुन्दर वस्त्र किन्तु मिलता टाटका टुकड़ा भी नहीं। रामचन्द्रजी मुझ-जैसे भारी दुष्टपर कृपालु हुए, और मुझ कौड़ियोंके लालचीको रामनाम-प्रेम रूपी पारस पत्थर मिला। हे रामचन्द्रजी, आपहीके बनानेसे मेरी (सब बिगड़ी) बन गयी है नहीं तो धोबीके कुत्तेकी तरह मैं न तो घरका ही हूँ और न घाटका।

विशेष

१—'जोग'—अष्टांग योग; यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि।

ऊँचो मन, ऊँची रुचि, भाग नीचो निपट ही,
लोकरीति-लायक न, लंगर लबारु है ।

स्वारथ अगम, परमारथ की कहा चली,
पेट की कठिन, जग जीव को जवारु है ॥
चाकरी न आकरी न खेती न बनिज भीख,
जानत न कूर कछु किसब कबारु है ।
'तुलसी' की बाजी राखी राम ही के नाम, नतु
भेंट पितरन कों न मूड़ हू में बारु है ॥६७॥

शब्दार्थ—निपट = अत्यन्त, बिलकुल । लंगर = कुमार्गी । लबारु = झूठा । जवारु = जवाल, बोझ । आकरी = खानका काम । किसब = कारीगरी । कबारु = व्यवसाय, पेशा ।

भावार्थ—मन ऊँचा है, रुचि भी ऊँची है किन्तु भाग्य अत्यन्त खोटा है; मैं कुमार्गी और झूठा हूँ इसलिए सांसारिक कामोंके योग्य भी नहीं हूँ । मेरे लिए सांसारिक सुख पाना ही कठिन है, पारलौकिक सुखको कौन कहे; मेरे लिए पेट पालना कठिन हो रहा है, मैं संसारके लोगोंके लिए भार हो रहा हूँ । न मैं नौकरी कर सकता हूँ, न खानका काम कर सकता हूँ, न खेतीका काम कर सकता हूँ, न वाणिज्य कर सकता हूँ और न भीख ही माँग सकता हूँ । मैं ऐसा क्रूर हूँ कि किसी तरहकी कारीगरी या पेशा नहीं कर सकता । तुलसीदासजी कहते हैं कि रामजीके नामने ही मेरी प्रतिष्ठा रखी है नहीं तो पितरोंको भेंट-में देनेके लिए मेरे सिरमें बाल भी नहीं हैं ।

अपत उतार, अपकार को अगार, जग,
जाकी छाँह छुए सहमत ब्याध बाघ को ।

पातक-पुहुमि पालिबे को सहसानन सों,
कानन कपट को पयोधि अपराध को ॥
'तुलसी'से बामको भो दाहिनो दयानिधान,
सुनत सिहात सब सिद्ध साधु साधको ।
राम-नाम ललित ललाम कियो लाखनि को
बड़ो कूर कायर कपूत कौड़ी आध को ॥६८॥

शब्दार्थ—अपत = पतित। उतार = नीच। पुहुमि = पृथिवी। सहसानन = हजार मुखवाले शेषनाग। ललित = सुन्दर।

भावार्थ—जो पतित, नीच और बुराइयोंका घर है, जिसकी परछाहीं छूनेसे हिंसा करनेवाला व्याध भी सहम जाता है। जो पापरूपी पृथिवीका पालन करनेके लिए शेषनागके समान है, जो कपटका वन अर्थात् महान कपटी है और अपराधोंका समुद्र है ऐसे तुलसीदासके समान कुटिलपर दयालु श्रीरामजी अनुकूल हुए जिसको सुनकर सिद्ध, साधु और साधक भी सिहाते हैं कि हाय ऐसा सौभाग्य मुझे क्यों नहीं प्राप्त हुआ। मुझ सरीखे अत्यन्त निर्दय, कायर, कुपुत्र और आधी कौड़ीके मूल्यवालेको रामचन्द्रजीके नामने लाखों रुपयेका सुन्दर रत्न बना दिया।

सब-अंग-हीन, सब-साधन-विहीन मन
बचन मलीन, हीन कुल करतूति हौं।
बुधि-बल-हीन, भाव-भगति-बिहीन, हीन
गुन, ज्ञानहीन, हीन-भागहू बिभूति हौं ॥
'तुलसी' गरीब की गई-बहोर रामनाम,
जाहि जपि जीह रामहू को बैठो धूति हौं।

प्रीति रामनाम सों, प्रतीति रामनाम की,
प्रसाद रामनाम के पसारि पाँय सूतिहौं ॥६९॥

शब्दार्थ—भागहू = भाग्यसे भी। जीह = जीभ। घूति = छल। प्रसाद = कृपा। सूतिहौं = सोऊँगा।

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि मैं योगके आठो अंगों से और (मुक्तिके) सब साधनोंसे रहित हूँ; मन और वचनसे भी मलीन हूँ और कुलके कर्मोंसे भी रहित हूँ। मैं बुद्धि और बलसे रहित हूँ, भक्ति-भावसे हीन हूँ, गुण, ज्ञान, भाग्य और वैभवसे भी हीन हूँ। रामका नाम गरीबोंकी बिगड़ी हुईको बनानेवाला है, जिसको जीभसे जपकर मैंने रामजीको भी छल लिया। मुझे राम-नामसे ही प्रेम है, राम-नामका ही विश्वास है और राम-नामकी ही कृपासे मैं पैर पसारकर अर्थात् निश्चिन्त होकर सोऊँगा।

मेरे जान जब तें हौं जीव ह्वै जनम्यो जग,
तब तें बेसाह्यो दाम लोभ कोह काम को।
मन तिनहीं की सेवा, तिनहीं सों भाव नीको,
बचन बनाइ कहौं-'हौं गुलाम राम को॥
नाथ हू न अपनायो, लोक झूठी ह्वै परी, पै
प्रभु हू तें प्रबल प्रताप प्रभु नाम को।
अपनी भलाई भलो कीजै तो भलाई, न तौ
'तुलसी' को खुलैगो खजानो खोटे दाम को ॥७०॥

शब्दार्थ—बेसाह्यो = मोल लिया हुआ।

भावार्थ—मेरी समझसे जबसे मैं जीव बनकर संसारमें उत्पन्न हुआ, तभीसे लोभ, क्रोध और कामने मुझे दाम देकर मोल ले लिया है। मैं मनसे उन्हींकी सेवा करता हूँ, उन्हींसे मेरा पूर्ण प्रेम भी है; मैं बातें बनाकर कहता हूँ कि मैं रामजीका सेवक हूँ'। रामजीने भी मुझे नहीं अपनाया और संसारमें भी झूठी ख्याति हो गयी; किन्तु स्वामीसे भी अधिक महिमा उनके नामकी है। इसलिए हे स्वामी, आप अपनी भलाईके लिए मेरा भला कीजिये; इसीमें भलाई है, नहीं तो तुलसीदासके खोटे दामका खजाना खुल जायगा अर्थात् पोल खुल जायगी।

जोग न विराग जप जाग तप त्याग व्रत,
तीरथ न धर्म जानौं वेद विधि किमि है।
'तुलसी सो पोच न भयो है, नहिं ह्वै है कहूँ,
सोचैं सब याके अघ कैसे प्रभु छमि है॥
मेरे तो न डरु रघुवीर सुनौ साँची कहौं,
खल अनखैहैं तुम्हैं, सज्जन न गमिहै।
भले सुकृती के संग मोहिं तुला तौलिए तौ,
नामके प्रसाद भार मेरी ओर नमि है॥ ७१॥

शब्दार्थ—किमि = कैसा। पोच = नीच। अनखैहैं = नाराज होंगे। गमिहै = गम खायँगे। तुला = तराजू।

भावार्थ—मैं योग, वैराग्य, जप, यज्ञ, तप, त्याग, व्रत आदि कुछ भी नहीं जानता। न तो मैं तीर्थ और धर्म ही जानता हूँ और न मैं यही जानता हूँ कि वेदके नियम कैसे हैं। तुलसीदास-के समान नीच न तो कोई हुआ है और न कहीं कोई होगा ही।

इसलिए सबलोग सोचते हैं कि प्रभुजी इसके पापोंको कैसे क्षमा करेंगे। हे रघुबीर सुनिए, मैं सत्य कहता हूँ कि मुझे तो अपने पापोंके लिए कुछ भी डर नहीं है। यदि आप मेरे अपराधोंको क्षमा करेंगे तो दुष्टलोग नाराज होंगे और सज्जनलोग इसकी परवा न करेंगे। किन्तु यदि आप मुझे किसी पुण्यात्माके साथ तराजूपर तौलेंगे तो राम-नामकी कृपासे पलड़ा मेरी ही ओर झुकेगा।

जाति के, सुजाति के, कुजाति के पेटागि-बस,
खाए टूक सबके, बिदित बात दुनी सो।
मानस बचन काय किए पाप सतिभाय,
राम को कहाय दास दगाबाज पुनी सो॥
रामनाम के प्रभाव पाउ महिमा प्रताप,
'तुलसी' से जग मानियत महामुनी सो।
अति ही अभागो अनुरागत न रामपद,
मूढ़ एतो बड़ो अचरज देख सुनी सो॥७२॥

शब्दार्थ—पेटागि = पेटकी आग, भूख। दुनी = दुनिया। पाउ = पाया। महामुनि = महर्षि बाल्मीकि।

भावार्थ—पेटकी आग बुझानेके लिए मैंने जाति, सुजाति, कुजाति सबके टुकड़े खाये हैं, यह बात समूचा संसार जानता है। मैंने स्वभावसे ही मन, वचन और कर्मसे पाप किये हैं; मैं रामजीका सेवक कहाकर भी दगाबाज बना रहा। फिर भी रामनामके प्रभावसे मुझे महिमा और प्रताप प्राप्त हुआ और लोग महर्षि वाल्मीकिकी तरह मानते हैं। मैं बहुत बड़ा अभागा

हूँ इसीसे इतना वड़ा आश्चर्य देख सुनकर भी रामजीके चरणोंमें प्रेम नहीं करता।

जायो कुल मंगन, वधायो न वजायो सुनि,
भयो परिताप पाप जननी जनक को।
वारे तें ललात बिललात द्वार द्वार दीन,
जानत हौं चारि फल चारि ही चनक को॥
तुलसी सो साहिव समर्थ को सुसेवक है,
सुनत सिहात सोच विधि हू गनक को।
नाम, राम! रावरो सयानो किधौं वावरो,
जो करत गिरी तें गरु तृन तें तनक को॥७२॥

शब्दार्थ—जायो = पैदा हुआ। मंगन = भिखमंगा। परिताप = दुःख। जननी जनक = माता-पिता। वारे तें = लड़कपनसे। चनक = चना। जनक = ज्योतिषी।

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि मैं मंगन कुलमें पैदा हुआ, मेरे जन्मका हाल सुनकर माता-पिताको कष्ट हुआ, उन्होंने समझा कि यह पापका ही फल है; इसीसे उन्होंने वधाई भी नहीं वजवायी। यह दीन वचपनसे ही लालायित होकर द्वार द्वार बिललाता फिरा। मैं चार दाने चनेको ही चारो फल अर्थात् अर्थ धर्म काम मोक्ष समझता था। वही तुलसीदास समर्थ स्वामी रामजीका सेवक है यह सुनकर ब्रह्माके समान ज्योतिषी भी सिहाते हैं और उनके दिलमें मेरी उन्नति देखकर शोक है। हे रामचन्द्रजी, आपका नाम चतुर है अथवा पागल? जो तृणके समान हलकी चीजको भी पर्वतके समान भारी बना देता है।

वेद हू पुरान कही, लोकहू विलोकियत,
रामनाम ही सों रीझे सकल भलाई है।
कासी हू मरत उपदेसत महेस सोई,
साधना अनेक चितई न चित लाई है॥
छाँछी को ललात जे ते रामनाम के प्रसाद,
खात खुनसात सौंधे दूध की मलाई है।
रामराज सुनियत राजनीति की अवधि,
नाम, राम ! रावरो तो चाम की चलाई है ॥७४॥

शब्दार्थ—छाँछी = मट्ठा। खुनसात = अप्रसन्न होता है। चामकी चलाई है = चमड़ेका सिक्का चलाया है।

भावार्थ—वेद और पुराणोंमें भी कहा गया है तथा संसारमें भी देखा जाता है कि रामजीके नाममें रीझनेसे भलाई है। काशीमें भी मरते समय शिवजी उसी रामनामका उपदेश देते हैं; साधनाएँ तो अनेक प्रकारकी हैं पर उन्होंने किसी ओर चित्त लगाकर नहीं देखा। जो पहले मट्ठे के लिए तरस रहा था वह आज रामनामकी कृपासे दूधकी सोंधी मलाई खानेमें भी अप्रसन्न होता है। हे रामचन्द्रजी, मैंने सुना था कि आपके राज्यमें राजनीतिकी सीमा है अर्थात् अत्यधिक न्याय होता है, किन्तु आपके नामने तो चमड़ेका सिक्का चला दिया है अर्थात् नीचोंको भी पूज्य बना दिया है।

विशेष

'उपदेसत महेस'—अध्यात्ममें शिवजीने स्वयं कहा है:—

अहो भवन्नाम गृणन्कृतार्थो
वसामि काश्यामनिशंभवान्या ।
मुमूर्षमाणस्य विमुक्तयेहं
दिशामि मंत्रं तव रामनाम ॥

सोच संकटनि सोच संकट परत, जर
जरत, प्रभाव नाम ललित ललाम को ।
बूड़ियौ तरति, बिगारीयौ सुधरति बात,
होत देखि दाहिनो सुभाव विधि बाम को ॥
भागत अभाग, अनुरागत विराग, भाग
जागत, आलसि 'तुलसी' हू से निकाम को ।
धाई धारि फिरि कै गोहारि हितकारी होति,
आई मीचु मिटति जपत रामनाम को ॥७५॥

शब्दार्थ—निकाम = निकम्मा । धारि = झुंड, सेना ।

भावार्थ—अत्यन्त सुन्दर राम-नामके प्रभावसे शोक-संकट भी शोक संकटमें पड़ जाते हैं और ज्वर जल जाता है । डूबा हुआ भी तर जाता है, बिगड़ी हुई बात भी बन जाती है और प्रतिकूल ब्रह्माके स्वभावको भी अनुकूल होते देखकर दुर्भाग्य भाग जाता है, वैराग्य प्रेम करने लगता है और आलसी तुलसीदास सरीखे निकम्मेका भी भाग्य जग जाता है । राम-नामके जपनेसे शत्रुओंका समूह भी दौड़कर रक्षक और हितैषी बन जाता है तथा (सिरपर) आयी हुई मृत्यु भी नष्ट हो जाती है ।

औंधरो, अधम, जड़ जाजरो जरा जवन,
सूकरके सावक ढका ढकेल्यो मग मैं ।

गिरो हिये हहरि, 'हराम हो हराम हन्यो'
हाय हाय करत परीगो काल-फँग मैं ॥
तुलसी बिसोक ह्वै त्रिलोक पति-लोक गयो
नामके प्रताप, बात बिदित है जग मैं ।
सोई राम नाम जो सनेह सों जपत जन
ताकी महिमा क्यों कही है जाति अगमैं ॥७६॥

शब्दार्थ—जाजरो जरा = वृद्धावस्थासे जर्जरित । जवन = यवन । सावक = बच्चा । फँग = फन्दा ।

भावार्थ—यवन अन्धा, नीच, मूर्ख और वृद्धावस्थासे जर्जरित था, रास्तेमें सुअरके बच्चेने उसे धक्का देकर ढकेल दिया । वह हृदयमें हार मानकर गिर पड़ा और 'हराम हो हराम हन्यो' (हराम होकर हरामने मारा) कहकर हाय हाय करता हुआ कालके फन्देमें चला गया । तुलसीदासजी कहते हैं कि वह (यवन) शोक-रहित होकर (नामके प्रतापसे 'हराम' शब्दमें रामका नाम उच्चारण करनेके कारण) बैकुंठ लोकमें चला गया, यह बात संसारमें प्रकट है । उसी राम-नामको जो मनुष्य स्नेहपूर्वक जपता है उसकी महिमा किस प्रकार कही जा सकती है ? वह अपार है ।

जाप की न, तप खप कियो न तमाइ जोग,
जाग न बिराग त्याग तीरथ न तन को ।
भाई को भरोसो न खरोसो बैर बैरीहूँ सों,
बल आपनो न हितू जननी न जनको ॥
लोक को न डर, परलोक को न सोच,
देव सेवा न सहाय, गर्व धाम को न धन को ।

राम ही के नाम तें जो होइ सोई नीको लागै,
ऐसोई सुभाव कछु, तुलसी के मन को ॥७७॥

शब्दार्थ—खप = खपकर, कष्ट सहकर। तमाइ = लोभ। गर्व = घमंड।

भावार्थ—न तो मैंने जप ही किया, न कष्ट सहकर तपस्या ही की, न योगद्वारा ही कुछ प्राप्त होनेका लोभ है, न इस शरीर-से यज्ञ, वैराग्य, त्याग या तीर्थ ही किया। न तो मुझे भाईका भरोसा है, न किसी शत्रुसे ही अच्छी तरह शत्रुता है, न मुझे अपना बल है, न हितकारी माता-पिताका ही है। न मुझे लोकका डर है, न परलोककी ही चिन्ता है; न मुझे देवताओंकी सेवाका भरोसा है, न घर और धनका ही गर्व है। केवल रामजीके नामसे ही जो कुछ हो जाता है वही मुझे अच्छा लगता है; तुलसीदासजी कहते हैं कि मेरे मनका कुछ ऐसा ही स्वभाव हो गया है।

ईस न, गनेस न, दिनेस न, धनेस न,
सुरेस सुर गौरि गिरापति नहिं जपने।
तुम्हरेई नामको भरोसो भव तरिबे को,
बैठे उठे, जागत बागत सोए सपने॥
तुलसी है बावरो सो रावरोई, रावरी सौं,
रावरेऊ जानि जिय कीजिए जु अपने।
जानकी-रमन! मेरे रावरे बदन फेरे,
ठाउँ न समाउँ कहाँ, सकल निरपने॥७८॥

शब्दार्थ—ईस = शिवजी। दिनेस = सूर्य। धनेस = कुबेर। वागत = घूमते फिरते। बदन = मुख।

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि मुझे शिव, गणेश, सूर्य, कुबेर, इन्द्र, पार्वती, ब्रह्मा आदि किसी देवताका जप नहीं करना है। मुझे उठते-बैठते जागते-सोते, घूमते-फिरते तथा स्वप्नमें भवसागर पार करनेके लिए केवल आपके ही नामका भरोसा है। मैं आपकी शपथ खाकर कहता हूँ कि मैं आपहीके पीछे पागल हूँ; आप भी अपने दिलमें यह विश्वास करके मुझे अपनाइये। हे रामचन्द्रजी, आपके मुख फेर लेनेपर मेरे लिए कहीं स्थान नहीं है, मैं कहाँ जाऊँगा, सब विराने (पराये) ही तो हैं।

जाहिर जहानमें जमानो एक भाँति भयो,
बेंचिए विबुध-धेनु रासभी बेसाहिए।
ऐसेऊ कराल कलिकाल में कृपालु तेरे
नाम के प्रताप न त्रिताप तन दाहिए॥
तुलसी तिहारो मन बचन करम, तेहि
नाते नेह-नेम निज ओर तें निबाहिए।
रंक के निवाज रघुराज राजा राजनि के,
उमरि दराज महाराज तेरी चाहिए॥७९॥

शब्दार्थ—विबुध-धेनु = कामधेनु। रासभी = गदही। दाहिए = जलाइये। उमरि = उम्र। दराज = लम्बी, दीर्घ।

भावार्थ—संसारमें प्रसिद्ध है कि समय बहुत बुरा आ गया है, लोग कामधेनु बेचकर गदही खरीदते हैं। हे कृपालु रामजी, ऐसे घोर कलिकालमें भी आपके नामके प्रतापसे तीनो ताप

(दैहिक, दैविक, भौतिक) शरीरको नहीं जला सकते। तुलसीदास मन-वचन-कर्मसे आपका दास है; आप इसी नातेसे स्नेह-का नियम अपनी ओरसे निवाहिये। हे दीनदयालु, राजाओंके राजा, महाराज रामजी, आपकी उम्र बड़ी हो, बस यही मैं चाहता हूँ।

स्वारथ सयानप, प्रपंच परमारथ,
कहायो राम रावरो हौं, जानत जहानु है।
नामके प्रताप, बाप! आजु लौं निवाही नीके,
आगेको गोसाईं स्वामी सबल सुजानु है॥
कलि की कुचालि देखि दिन दिन दूनी देव!
पाहरूई चोर हेरि, हिय हहरानु है।
तुलसी की बलि, बार बार ही सँभार कीबी,
जद्यपि कृपानिधान सदा सावधानु है॥८०॥

शब्दार्थ—सयानप = चतुराई। लौं = तक। हेरि = देखकर।

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते कि संसार जानता है कि मैं स्वार्थ सिद्ध करनेमें बड़ा सयाना हूँ और परमार्थके कामोंमें झूठा प्रपंच करता हूँ, फिर भी मैं आपका ही दास कहलाता हूँ। हे परम-पिता! आपके नामके प्रतापने आजतक तो अच्छी तरह निबाहा, आगे निबाहनेके लिए भी आप ही समर्थ और चतुर स्वामी हैं। हे नाथ, कलिकालकी बुरी चालोंको दिनोदिन दूनी होते देखकर तथा पहरेदारको ही चोर देखकर मेरा हृदय हहर गया है। मैं आपकी बलि जाता हूँ, यद्यपि हे कृपानिधान आप सदा सावधान हैं तथापि आप मेरा सम्भार कीजिये।

दिन दिन दूनो देखि दारिद दुकाल दुख,
दुरित दुराज, सुख सुकृत सकोचु है।
माँगे पैंत पावत प्रचारि पातकी प्रचंड,
काल की करालता भलेको होत पोचु है॥
आपने तौ एक अवलंब, अंब डिम्भ ज्यों,
समर्थ सीतानाथ सब संकट-बिमोचु है।
तुलसी की साहसी सराहिए कृपालु राम !
नामके भरोसे परिनाम को निसोचु है॥८१॥

शब्दार्थ—दुरित = पाप । दुराज = बुरा राज्य । पैंत = दाव । पातकी = पापी। पोचु = नीच। डिम्भ = बच्चा । बिमोचु = नष्ट करनेवाले ।

भावार्थ—दरिद्रता, अकाल, दुःख, पाप और कुराजको दिन-पर दिन द्विगुणित होते देखकर सुख और पुण्य संकुचित होते जा रहे हैं। समयकी भयंकरतासे महान पापी लोग ललकारकर मुँह माँगा दाव पाते हैं और अच्छे लोगोंकी बुराई होती है। तुलसीदासजी कहते हैं कि जिस प्रकार बच्चेको केवल मात्र माँका भरोसा रहता है उसी प्रकार अपनेको तो सब संकटोंको दूर करनेवाले, समर्थ श्रीरामचन्द्रजीका भरोसा है। हे कृपालु श्रीरामजी, आपको मेरे साहसकी सराहना करनी चाहिए क्योंकि मैं आपके नामके भरोसे परिणामकी कुछ भी चिन्ता नहीं करता ।

मोह-मद-मात्यो, रात्यो कुमति-कुनारि सों,
बिसारि वेद लोक-लाज, आँकरो अचेतु है।

भावै सो करत, मुँह आवै सो कहत, कछु
काहू की सहत नाहिं, सरकस हेतु है ॥
तुलसी अधिक अधमाई हू अजामिल तें,
ताहू में सहाय कलि कपट-निकेतु है ।
जैबे को अनेक टेक, एक टेक ह्वैबे की, जो
पेट-प्रिय-पूत-हित रामनाम लेतु है ॥८२॥

शब्दार्थ—मद = शराब । मात्यो = मतवाला । रत्यो = आसक्त । आँकरो = टेढ़ा, गहरा । निकेतु = घर ।

भावार्थ—(यहाँपर तुलसीदासजीने अपनी और अजामिल-की तुलना की है) । अजामिल शराबके नशेमें चूर रहता था और मैं मोहमें फँसा हुआ हूँ; वह कुलटा स्त्रियोंमें आसक्त था, मैं कुबुद्धिमें अनुरक्त हूँ । उसने वेद-मार्गको छोड़ दिया था और मैं लोक-लज्जाको भुलाये बैठा हूँ । मैं भी गहरा अज्ञानी हूँ । जो अच्छा लगता है वही करता हूँ और मुँहमें जो बात आती है वही कहता हूँ, किसीकी जरासी बात भी सह नहीं सकता; इसका प्रधान कारण है रामजीका भरोसा । तुलसीदासजी कहते हैं कि मुझमें अजामिलसे भी अधिक नीचता है; उसमें भी कपटका घर कलि मेरा सहायक है । मेरे लिए नष्ट होनेके तो बहुत कारण हैं किन्तु भवसागरसे पार होनेका भी एक कारण है, वह यह कि मरते समय अजामिलने तो अपने प्रिय पुत्रका नाम लिया था और मैं अपने प्यारे पेट रूपी पुत्रके लिए रामनाम लेता हूँ ।

जागिए न सोइए, बिगोइए जनम जाय,
दुख रोग रोइए, कलेस कोह काम को ।

राजा, रंक, रागी औ विरागी, भूरि भागी ये,
अभागी जीव जरत, प्रभाव कलि बाम को ॥
तुलसी कवंध कैसो धाइबो विचारु अंध!
धुंध देखियत जग, सोच परिनाम को।
सोइबो जो राम के सनेह की समाधि-सुख,
जागिबो जो जीह जपै नीके रामनाम को ॥८३॥

शब्दार्थ—जाय = व्यर्थ। रागी = वासनाओंमें लिप्त। भूरि = बहुत। कवंध = धड़।

भावार्थ—इस संसारमें न तो लोग जागते ही हैं और न सोते ही हैं, व्यर्थ ही जिन्दगी खराब करते हैं और दुःख, रोगसे रोते हैं; क्रोध और कामका कष्ट सहते हैं। राजा, रंक, भोगी, योगी, अत्यन्त भाग्यवान और अभागे सब जीव जल रहे हैं, टेढ़े कलियुगका यही प्रभाव है। तुलसीदासजी कहते हैं कि रे अन्धा! विचार कर, यह कवन्धके दौड़नेके समान है; अज्ञानताके कारण संसार तुझे धुँधला दिखायी पड़ता है, तू परिणामकी चिन्ता कर (कि इसका क्या फल होगा)। सोना तो वह है यदि रामचन्द्रजीके स्नेहकी समाधिरूपी सुखमें रहे और जागना वह है यदि जीभ-रामके नामका अच्छी तरह जप करे।

बरन-धरम गयो, आस्रम निवास तज्यो,
त्रासन चकित सो परावनो परो सो है।
करम उपासना, कुबासना बिनास्यो ज्ञान,
बचन, बिराग बेष जगत हरो सो है॥

गोरख जगायो जोग, भगति भगायो लोग,
निगम नियोग तें सो केलि ही छरो सो है।
काय मन वचन सुभाय तुलसी है जाहि,
रामनाम को भरोसो, ताहि को भरोसो है॥८४॥

शब्दार्थ—बरन = चारो वर्ण। परावनो परोसो है = भगदड़ सी मच गयी है। निगम = वेद।

भावार्थ—चारो वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) का धर्म नष्ट हो गया है, लोगोंने चारो आश्रमों (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वाणप्रस्थ और संन्यास) में रहना छोड़ दिया है, अधर्मके डरसे लोगोंमें भगदड़सी मच गयी है। बुरी वासनाओंने कर्म और उपासनको नष्ट कर दिया है, ज्ञानपूर्ण वचन और वैराग्य-वेषने संसारको अपहरण-सा कर लिया है। गोरखने योग जगाकर लोगोंकी भक्तिके भावको दूर कर दिया और वेदोंकी आज्ञाओंको खेलहीमें छल-सा लिया है। तुलसीदासजी कहते हैं कि शरीर, मन और वचनसे जिसे स्वभावसे ही श्रीरामजीका भरोसा है उसीको (सच्चा) भरोसा है।

(सवैया)

बेद पुरान बिहाइ सुपंथ कुमारग कोटि कुचाल चली है।
काल कराल, नृपाल कृपालन राजसमाज बड़ोई छली है॥
बर्न-बिभाग न आस्रम-धर्म, दुनी दुख-दोष-दरिद्र-दली है।
स्वारथ को परमारथ को कलि राम को नाम-प्रताप बली है॥८५॥

शब्दार्थ—बिहाइ = छोड़कर। दली है = नाश किया है।

भावार्थ—(कलिमें) लोगोंने बेदों और पुराणोंमें बतलाये हुए सुमार्गको छोड़कर कुमार्ग और बुरे कर्मोंको ग्रहण कर लिया है। समय भयंकर है, यदि राजा कृपालु हैं तो उनके कर्मचारी बड़े धूर्त्त हैं। न वर्ण विभाग रह गया है, न आश्रम-धर्म; दुःख, दोष और दरिद्रताने संसारको नष्ट कर दिया है। कलियुगमें स्वार्थ तथा परमार्थकी प्राप्तिके लिए श्रीरामजीके नामका प्रताप ही बलवान है।

न मिटै भवसंकट दुर्घट है, तप तीरथ जन्म अनेक अटो।
कलि में न बिराग न ज्ञान कहूँ, सब लागत फोकट झूँठ-जटो॥
नट ज्यों जनि पेट-कुपेटक कोटिक चेटक कौतुक ठाट ठटो।
'तुलसी' जो सदा सुख चाहिय तौ रसना निसिबासर राम रटो॥८६॥

शब्दार्थ—अटो = घूमो। फोकट = निस्सार। जटो = जड़ा हुआ। नट = बाजीगर। कुपेटक = बुरी पिटारी। चेटक = जादू।

भावार्थ—चाहे कितनी ही तपस्या करो, तीर्थोंमें अनेक जन्मोंतक घूमो, पर संसारका संकट नहीं मिट सकता। अर्थात् जन्म-मरणका कष्ट बना ही रहता है क्योंकि संसारका संकट बड़ा ही दुर्घट है। कलियुगमें न तो कहीं वैराग्य है और न ज्ञान है, सब कुछ निस्सार और झूठसे भरा हुआ प्रतीत होता है। बाजीगरकी तरह पेट-रूपी बुरी पिटारीसे मन्त्रोंके बल करोड़ों तमाशेका सामान न सजाओ। तुलसीदासजी कहते हैं कि यदि सदैव सुख चाहते हो तो जिह्वाद्वारा रातदिन रामनाम जपा करो।

दम दुर्गम, दान दया, मख-कर्म, सुधर्म अधीन सबै धन को।
तप तीरथ साधन जोग बिराग सों होइ नहीं दृढ़ता तन को॥

कलिकाल कराल में, राम कृपालु, यहै अवलम्ब बड़ो मन को ।
'तुलसी' सब संजमहीन सबै इक नाम अधार सदा जन को ॥८७॥

शब्दार्थ—दम = इन्द्रियोंको रोकना । मख = यज्ञ ।

भावार्थ—कलियुगमें इन्द्रियोंका रोकना कठिन है; दान, दया, यज्ञ-कर्म, सुन्दर धर्म-कार्य सब धनके अधीन हैं । तप, तीर्थ, साधन, योग और वैराग्य भी नहीं हो सकते क्योंकि यह सब करनेके लिए शरीरकी दृढ़ता होनी चाहिये । इस भयंकर कलियुगमें मनको इसी बातका बहुत बड़ा सहारा है कि रामचन्द्रजी कृपालु हैं । तुलसीदासजी कहते हैं कि सबलोग सभी संयमोंसे रहित हैं, भक्तके लिए सदैव केवल रामनाम ही आधार है ।

पाइ सुदेह विमोह-नदी-तरनी न लही, करनी न कछू की ।
रामकथा बरनी न बनाइ, सुनी न कथा प्रहलाद न ध्रू की ॥
अब जोर जरा जरि गात गयो, मनमानि गलानि कुबानि न मूकी ।
नीके कै ठीक दई 'तुलसी' अवलंब बड़ी उर आखर दू की ॥८८॥

शब्दार्थ—तरनी = नाव । लही = पायी । जरा = वृद्धावस्था । गात = शरीर । मूकी = छोड़ी ।

भावार्थ—सुन्दर शरीर पाकर मोह-रूपी नदीको पार करनेके लिए नाव न पायी और न कुछ अच्छे कर्म ही किये । रामचन्द्र-जीके गुणानुवादका वर्णन भी अच्छी तरहसे नहीं किया और न प्रहलाद, ध्रुव आदिकी (पुनीत) कथाएँ ही सुनीं । अब वृद्धावस्थाके जोरसे शरीर क्षीण हो गया है फिर भी मनमें ग्लानि मानकर बुरी आदतोंको नहीं छोड़ा । तुलसीदासजी

कहते हैं कि मैंने अच्छी तरहसे निश्चय कर लिया है कि मुझे 'रा' और 'म' इन्हीं दो अक्षरोंका बहुत बड़ा भरोसा है।

राम बिहाइ 'मरा' जपते बिगरी सुधरी कबि-कोकिल हू की।
नामहिं तें गज की, गनिका की, अजामिल की चलिगै चल-चूकी ॥
नाम-प्रताप बड़े कुसमाज बजाइ रही पति पांडु-बधू की।
ताको भलो अजहूँ 'तुलसी' जेहि प्रीति प्रतीति है आखर दू की ॥८९॥

शब्दार्थ—कबि-कोकिल = बाल्मीकि। चल-चूकी = अपराध। पांडु-बधू = द्रौपदी।

भावार्थ—राम शब्दके स्थानपर 'मरा' जपते हुए बाल्मीकि-की बिगड़ी हुई बन गयी। रामनामके ही प्रभावसे गज, गणिका और अजामिलका पातक दूर हो गया। नामके प्रतापसे ही (कौरवोंके) बहुत बड़े बुरे समाजमें द्रौपदीकी मर्यादा डंकेकी चोट बच गयी। तुलसीदासजी कहते हैं कि अब भी जिसका प्रेम और विश्वास दो अक्षरोंमें है उसकी भलाई (आज भी) होती है।

नाम अजामिल से खल तारन, तारन बारन बार-बधू को।
नाम हरे प्रहलाद-बिषाद, पिताभय साँसति-सागर सूको ॥
नाम सों प्रीति प्रतीति बिहीन गिल्यौ कलिकाल कराल न चूको।
राखिहैं राम सों जासु हिये 'तुलसी' हुलसै बल आखर दू को ॥९०॥

शब्दार्थ—बारन = हाथी। बार-बधू = वेश्या। सूको = सूख गया। गिल्यौ = निगल गया।

भावार्थ—रामनामने अजामिलके समान दुष्टको मुक्त कर

दिया, गज और वेश्याका उद्धार किया। रामनामने प्रह्लादका दुःख दूर किया और पिता (हिरण्यकशिपु) के भय और दुःख-सागरको सुखा दिया। रामनाममें प्रेम और विश्वास न रखनेवालोंको भयंकर कलिकाल निगल गया—चूका नहीं। तुलसीदासजी कहते हैं कि जिसके हृदयमें रामनामके दो अक्षरोंका बल उमँगता है, उसकी रक्षा रामजी करेंगे।

जीव जहानमें जायो जहाँ सो तहाँ 'तुलसी' तिहुँ दाह दहो है।
दोस न काहू, कियो अपनो, सपनेहु नहीं सुख-लेस लहो है॥
राम के नाम तें होउ सो होउ, न सोउ हिये, रसना ही कहो है।
कियो न कछू, करिबो न कछू, कहिबो न कछू मरिबोई रहो है॥९१॥

शब्दार्थ—जायो = उत्पन्न हुआ। तिहुँ दाह = तीनो ताप।

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि संसारमें जीव ज्यों ही उत्पन्न हुआ त्यों ही तीनों तापोंसे जलने लगता है इसमें दूसरेका दोष नहीं है, अपने किये कर्मोंका ही फल है कि स्वप्नमें भी रंचमात्र सुख नहीं मिलता। अब रामनामसे चाहे जो हो जाय, किन्तु उस नामको भी मैं केवल जीभसे ही कहता हूँ, हृदयसे नहीं। न तो मैंने (अबतक) कुछ किया है न कुछ करना ही है और न कुछ कहना ही है केवल मरना ही शेष रह गया है।

जीजै न ठाउँ, न आपन गाउँ, सुरालय हू को न संबल मेरे।
नाम रटो जमवास क्यों जाउँ को आइ सकै जम-किंकर नेरे॥
तुम्हरो सब भाँति, तुम्हारिय सौं, तुमही बलि हौ मोकों ठाहर हेरे।
बैरष बाँह बसाइए पै, 'तुलसी' घरु ब्याध अजामिल खेरे॥९२॥

शब्दार्थ—संबल = कलेवा। किंकर = दास। नेरे = निकट। हेरे = देखने से। बैरष = झंडा। खेरे = गाँव।

भावार्थ—मेरे लिए न तो जीनेका स्थान है, न अपना कोई गाँव है; देवलोकमें जानेके लिए भी मेरे पास कलेवा या राह खर्च नहीं है। हाँ, नाम रटता हूँ इसलिए नरकमें कैसे जाऊँगा? कौन यम-दूत मेरे पास आ सकता है? तुलसीदासजी कहते हैं कि मैं बलि जाता हूँ, आपकी शपथ करके कहता हूँ कि मुझे सब तरहसे आपहीका भरोसा है, देखनेपर मेरे लिए आपहीकी शरण है। आप मुझे अपनी बाँहका झंडा देकर व्याध और अजामिल-के ही गाँवमें बसाइये।

का कियो जोग अजामिल जू, गनिका कबहीं मति पेम पगाई?
व्याध को साधुपनो कहिए, अपराध अगाधनि मैं ही जनाई॥
करुनाकर की करुना करुनाहित, नाम-सुहेत जो देत दगाई।
काहे को खीझिय रीझिय पै, तुलसीहु सों है बलि सोई सगाई॥९४॥

शब्दार्थ—दगाई = दगा, धोखा। सगाई = नाता।

भावार्थ—अजामिलने कौनसा योगसाधन किया था, गणिका-ने ही अपनी बुद्धि आपके प्रेममें कब लगायी थी? व्याधकी साधुताका क्या कहना, उसने तो साधुताको अपने अगणित अपराधोंसे ही सूचित कर दिया है। श्रीरामजीकी कृपा तो कृपाके लिए है अर्थात् अकारण कृपा करते हैं; जो लोग नाम लेनेके कारण दया चाहते हैं वे उन्हें धोखा देते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि हे रामजी, मैं आपकी बलि जाता हूँ, मेरे साथ भी आपका वही नाता है अर्थात् मैं भी अपनेको दयापात्र समझ-कर आपकी दया चाहता हूँ, इसलिए आप नाराज क्यों होते हैं? आपको तो मुझपर प्रसन्न होना चाहिए।

जे मद-मार विकार भरे ते अपार बिचार समीप न जाहीं।
है अभिमान तऊ मन में जन भाषिहै दूसरे दीन न पाहीं ॥
जौ कछु बात बनाइ कहौं 'तुलसी' तुम तें तुम हौ उर माहीं।
जानकी-जीवन जानत हौ हम हैं तुम्हरे, तुममें, सक नाही ॥९४॥

शब्दार्थ—मार = कामदेव। तऊ = तो भी।

भावार्थ—जो मद और काम-विकारसे भरे हुए हैं वे आचार-विचारके समीप नहीं जाते। तो भी उनके मनमें घमंड है कि वे दूसरोंसे नम्रतापूर्वक न बोलेंगे। तुलसीदासजी कहते हैं कि हे रामजी, यदि मैं आपसे कोई बात बनाकर कहूँ तो आप मेरे हृदयमें हैं (बनावट छिप नहीं सकती)। आप जानते हैं कि मैं आपका हूँ और मेरे हृदयमें आपके प्रति जरा भी शक नहीं है।

दानव देव अहीस महीस महामुनि तापस सिद्ध समाजी।
जग जाचक, दानि दुतीय नहीं तुमही सबकी सब राखत बाजी॥
एते बड़े तुलसीस तऊ सबरी के दिए बिनु भूख न भाजी।
राम गरीबनेवाज ! भए हौ गरीबनेवाज गरीब-नेवाजी ॥९५॥

शब्दार्थ—अहीस = शेष। महीस = राजा। सब राखत बाजी = सब पूरा करते हो।

भावार्थ—राक्षस, देवता, शेष, राजा, बड़े-बड़े मुनि, तपस्वी, सिद्ध और समाजके लोग (यहाँतक कि) सारा संसार ही माँगनेवाला है, आपके सिवा दूसरा कोई दानी नहीं है। आप ही सबलोगोंके सब कामोंको पूरा करते हैं। तुलसीदासके स्वामी श्रीरामजी इतने बड़े हैं फिर भी शबरीके दिये हुए बेरोंके बिना

उनकी भूख नहीं गयी। हे दीनोंपर दयाकरनेवाले श्रीरामजी ! आप दीनोंपर दया करनेके कारण ही दीनदयालु हुए हैं।

१४ कबित्त

किसवी, किसान-कुल, बनिक, भिखारी, भाट,
चाकर, चपल, नट, चोर, चार, चेटकी।
पेट को पढ़त, गुन गढ़त, चढ़त गिरि,
अटत गहन-बन अहन अखेटकी॥
ऊँचे नीचे करम धरम अधरम करि,
पेट ही को पचत बेचत बेटा बेटकी।
'तुलसी' बुझाइ एक राम-घनस्याम ही तें,
आगि बड़वागितें बड़ी है आगि पेटकी॥९६॥

शब्दार्थ—किसवी = मजदूर। चार = दूत। चेटकी = बाजीगर। अटत = घूमते हैं। अहन = दिनभर। अखेटकी = शिकारी।

भावार्थ—मजदूर, किसानवंश, बनिये, भिखमंगे, भाट, नौकर चंचल नट, चोर, दूत और बाजीगर पेटके लिए विद्या पढ़ते हैं अर्थात् अनेक तरहके उपाय करते हैं, पहाड़ोंपर चढ़ते हैं और सघन वनमें घूमते हैं तथा दिनभर शिकार करते फिरते हैं। पेटहीके लिए अच्छे और बुरे कर्म तथा धर्म अधर्म करके मरते हैं और बेटा-बेटीतक बेचते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि पेटकी यह आग केवल श्रीरामचन्द्रजीसे ही बुझ सकती है, यह आग बड़वानलसे भी बड़ी है।

खेती न किसान को, भिखारी को न भीख, बलि,
वनिक को बनिज न चाकर को चाकरी।
जीविका-विहीन लोग सीद्यमान, सोचबस,
कहैं एक एकन सों 'कहाँ जाई का करी?'
वेदहू पुरान कही, लोकहू बिलोकियत,
साँकरे सबै पै राम रावरे कृपा करी।
दारिद-दसानन दबाई दुनी, दीनबन्धु!
दुरित-दहन देखि 'तुलसी' हहा करी॥ ९७॥

शब्दार्थ—सीद्यमान = दुखी। दुरित = पाप।

भावार्थ—इस समय न तो किसानोंको खेतीसे प्राप्ति है, न भिखमंगोंको भीख मिलती है, न वनियोंको व्यापारसे कुछ मिलता है और न नौकरोंको नौकरी ही मिलती है। जीविकासे रहित होकर लोग शोकातुर और दुखी हैं और एक दूसरेसे कहते हैं कि कहाँ जायँ, क्या करें। वेद और पुराणोंने भी कहा है और संसारमें भी देखा जाता है कि संकट पड़नेपर सबपर आपने ही कृपा की है। हे दीनबन्धु! दरिद्रतारूपी रावणने इस दुनियाको दबा रखा है, इसलिए तुलसीदास आपको पापनाशक समझकर आपसे प्रार्थना करता है।

कुल, करतूति, भूति, कीरति, सुरूप, गुन,
जौबन जरत जुर, परै न कछू कही।
राजकाज कुपथ, कुसाज भोग रोग ही के,
वेद-बुध बिद्या पाइ बिबस बलकही॥

गति तुलसीस की लखै न कोऊ जो करत,
पब्बइ तें छार, छारै पब्बइ पलक ही।
कासों कीजै रोष ? दोष दीजै काहि ? पाहि राम !
कियो कलिकाल कुलि खलल खलक ही ॥९८॥

शब्दार्थ—भूति = ऐश्वर्य। बलकही = बकते हैं। पब्बइ = पहाड़। खलल = बाधा। खलक = दुनिया।

भावार्थ—यौवन रूपी ज्वरमें वंश, अच्छे कर्म, ऐश्वर्य, कीर्त्ति, सुन्दरता और गुण आदि जल रहे हैं, कुछ कहा नहीं जाता। राजकार्य कुपथ्य है और भोग आदि इस रोगको बढ़ाने-वाले बुरे सामान हैं; वेदके पंडित विद्या पाकर विवश हो बकते हैं। रामचन्द्रजीकी गतिको कोई नहीं समझता कि वह क्या करते हैं; वह पलभरमें पर्वतसे राख और राखसे पर्वत बना देते हैं। किसपर क्रोध किया जाय और किसको दोष दिया जाय ? हे रामजी ! मेरी रक्षा कीजिये क्योंकि कलियुगने सारी दुनियामें खलबली मचा दी है।

बबुर बहेरे को बनाय बाग लाइयत,
रूँधिबे को सोइ सुरतरु काटियतु है।
गारी देत नीच हरिचन्दहू दधीचिहू को,
आपने चना चबाइ हाथ चाटियतु है॥
आप महापातकी हँसत हरिहरहू को,
आपु है अभागी, भूरिभागी डाटियतु है।
कलि को कलुष, मन मलिन किये महत,
मसक की पाँसुरी पयोधि पाटियतु है॥ ९९॥

शब्दार्थ—हरि = विष्णु। हर = शिवजी। मसक = मच्छर। पाँसुरी = पसली। पयोधि = समुद्र। पाटियतु है = भर देता है, पूरा कर देता है।

भावार्थ—कलिके लोग बबूर और बहेड़ेका बाग रचकर लगाते हैं और उसे रूँधनेके लिए कल्पवृक्षको काटते हैं। वे नीच हरिश्चन्द्र और दधीचि सरीखे लोगोंको गाली देते हैं और स्वयं चना चबाकर हाथ चाटते हैं अर्थात् कंजूसीकी हद कर देते हैं स्वयं तो अत्यन्त पापी हैं किन्तु विष्णु और शिवपर हँसते हैं; अपने तो अभागे हैं पर भाग्यशालियोंको डाँट बतलाते हैं। कलियुगके पापोंने लोगोंके मनको अत्यन्त मलिन कर दिया है और वे मच्छरकी पसलियोंसे समुद्रको पाटना चाहते हैं।

सुनिए कराल कलिकाल भूमिपाल तुम !
जाहि घालो चाहिए कहौ धौं राखै ताहिको ?
हौं तौ दीन दूबरो, बिगारो ढारो रावरो न,
मैं हूँ तैं हूँ ताहि को सकल जग जाहिको ॥
काम-कोह लाइकै देखाइयत आँखि मोहिं,
एते मान अकस कीबे को आपु आहि को ?
साहिब सुजान जिन स्वानहू को पच्छ कियो,
रामबोला नाम, हौं गुलाम राम साहिको ॥१००॥

शब्दार्थ—घालो = नष्ट, बर्बाद। लाइकै = लगाकर। अकस = विरोध। आहि = हो।

भावार्थ—हे भयंकर कलिकाल सुनो, तुम राजा हो; जिसको तुम नष्ट करना चाहो उसकी रक्षा कौन कर सकता है ? मैं तो

दीन और दुर्बल हूँ, मैंने तुम्हारा कुछ बनाया बिगाड़ा नहीं है। मैं और तुम दोनों ही उस रामजीके अधीन हैं जिसका समूचा संसार है। तुम काम, क्रोधादिको मेरे पीछे लगाकर मुझे आँखें दिखाते हो; तुम मुझसे इतना मान और वैर करनेवाले कौन हो? मेरे स्वामी चतुर हैं जिन्होंने कुत्तेका भी पक्ष लिया था, मेरा नाम रामबोला है और मैं राम बादशाहका गुलाम हूँ।

सवैया

साँची कहौं कलिकाल कराल मैं, ढारो बिगारो तिहारो कहा है?
काम को, कोह को, लोभ को, मोह को, मोहिं सों आनि प्रपंच रहा है॥
हौ जगनायक लायक आजु, पै मेरियौ टेव कुटेव महा है।
जानकीनाथ बिना 'तुलसी' जग दूसरे सों करिहौं न हहा है॥१०१॥

शब्दार्थ—मेरियौ = मेरी भी। टेव = आदत।

भावार्थ—हे भयंकर कलियुग, मैं सत्य कहता हूँ कि मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है कि तुम मुझपर काम, क्रोध, लोभ और मोहका जाल फैलाते हो। तुम इस समय संसारके स्वामी होने योग्य हो, पर मेरी भी एक आदत बहुत बुरी है कि मैं श्रीरामचन्द्रजीको छोड़कर दूसरे किसीसे प्रार्थना नहीं करूँगा।

भागीरथी जलपान करौं अरु नाम द्वै राम के लेत नितैहौं।
मोको न लेनो न देनो कछू कलि! भूलि न रावरी ओर चितैहौं॥
जानिकै जोर करौ परिनाम, तुम्है पछितैहौ पै मैं न भितैहौं।
भाखन ज्यों उगिल्यो उरगारि, हौं त्योंही तिहारे हिये न हितैहौं॥१०२॥

शब्दार्थ—भितैहौं = भयभीत होऊँगा। उरगारि = गरुड़। हौं = मैं।

भावार्थ—मैं नित्य गंगाजल पीता हूँ और सीता तथा रामके दो नाम लेता हूँ। हे कलियुग, मुझे किसीसे कुछ लेना देना नहीं है; मैं भूलकर भी तुम्हारी ओर न देखूँगा। तुम अन्तिम परिणाम समझकर मुझपर जबर्दस्ती न करो। अन्तमें तुम्हीं पछताओगे किन्तु मैं न डरूँगा। जिस प्रकार गरुड़ने (निगले हुए ब्राह्मणको) उगल दिया था (पचा नहीं सके थे) उसी प्रकार मैं भी तुम्हारे पेटमें न पचूँगा।

विशेष

'ब्राह्मन ज्यों उगिल्यो उरगारि'—एक बार गरुण धोखेसे किसी ब्राह्मणको निगल गये थे। इससे उनके पेटमें ऐसी भयंकर ज्वाला पैदा हुई कि वह उस ज्वालाको सहन न कर सके और उन्हें उस ब्राह्मणको उगल देना पड़ा।

राजमराल के बालक पेलिकै, पालत लालत खूसर को।
सुचि सुंदर सालि सकेलि सुवारि कै बीज बटोरत ऊसर को॥
गुन-ग्यान-गुमान भभेरि बड़ो, कलपद्रुम काटत मूसर को।
कलिकाल बिचार-अचार हरो, नहिं सूझै कछू धमधूसर को॥१०३॥

शब्दार्थ—राजमराल = राजहंस। पेलिकै = हटाकर। खूसर = उल्लू। सालि = धान। सकेलि = एकत्र कर। सुवारि = जलाकर। भभेरि = मूर्ख। धमधूसर = स्थूल बुद्धि, गँवार।

भावार्थ—आजकल लोग राजहंसके बच्चोंको हटाकर उल्लूके बच्चोंको पालते और दुलारते हैं। पवित्र सुन्दर धानको एकत्र करके जला देते हैं और ऊसरके बीज बटोरते हैं। अपने गुण और ज्ञानका घमंड तो बहुत है किन्तु मूर्ख इतने बड़े हैं कि

मूसल बनानेके लिए कल्पवृक्षको काटते हैं। कलियुगने उनके आचार विचारको हर लिया है, उन बुद्धिहीनोंको कुछ नहीं सूझता।

कीबे कहा पढ़िबेको कहा फल बूझि न वेद को भेद बिचारै।
स्वारथ को परमारथ को कलि कामद राम को नाम बिसारै॥
बाद बिवाद बिपाद बढ़ाइ कै छाती पराई औ आपनी जारै।
चारिहु को, छहु को, नव को, दस आठ को पाठ कुकाठ ज्यों फारै१०४॥

शब्दार्थ—कामद = इच्छाओंको पूर्ण करनेवाला। चारिहु = चारो वेद। छहु = छः शास्त्र (सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, वेदान्त, मीमांसा)। नव = नौ व्याकरण (इन्द्र, चन्द्र, काव्यकृत्स्न, शाकटायन, पिशालि, पाणिनि, अमर, जैनेन्द्र, सरस्वती)। दस आठ = अठारह पुराण।

भावार्थ—क्या करना चाहिए और क्या पढ़ना चाहिए, इसका फल जानकर यदि वेदोंके भेदका विचार नहीं किया और कलियुगमें स्वार्थ तथा परमार्थको देनेवाले तथा सारी इच्छाओंको पूर्ण करनेवाले रामचन्द्रजीके नामको भुला दिया और वाद-विवादसे दुःख बढ़ाकर अपने तथा दूसरोंके हृदयको जलाया तो चारों वेदों, छहो शास्त्रों, नवों व्याकरणों और अठारहों पुराणोंका पढ़ना उसी प्रकार निष्फल हुआ जिस प्रकार खराब लकड़ीका फाड़ना।

आगम वेद पुरान बखानत, मारग कोटिन जाहिं न जाने।
जे मुनि ते पुनि आपुहि आपको ईस कहावत सिद्ध सयाने॥
धर्म सबै कलिकाल ग्रसे, जप जोग बिराग लै जीव पराने।
को करि सोच मरै 'तुलसी', हम जानकीनाथ के हाथ बिकाने॥१०५॥

शब्दार्थ—आगम = शास्त्र। बखानत = वर्णन करते हैं। पराने = भागे।

भावार्थ—वेद, शास्त्र और पुराण ईश्वरको प्राप्त करनेके करोड़ों मार्ग बतलाते हैं जोकि जाने नहीं जाते। जो मुनि हैं वे अपनेहीको ईश्वर, सिद्ध और ज्ञानी बतलाते हैं। कलियुग सब धर्मोंको ग्रसे बैठा है; जप, योग और वैराग्य अपने-अपने प्राण लेकर भाग खड़े हुए हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि चिन्ता करके कौन मरे, मैं तो श्रीरामचन्द्रजीके हाथों बिक गया हूँ।

धूत कहौ, अवधूत कहौ, रजपूत कहौ जोलहा कहौ कोऊ।
काहू की बेटी सों बेटा न ब्याहब, काहू की जाति बिगारौं न सोऊ॥
'तुलसी' सरनाम गुलाम है राम को, जाको रुचै सो कहौ कछु ओऊ।
माँगि कै खैबो मसीत के सोइबो, लैबे को एक न दैबे को दोऊ॥१०६॥

शब्दार्थ—धूत = धूर्त्त। अवधूत = महात्मा। मसीत = मसजिद, मन्दिर। लैबेको एक न दैबेको दोऊ = 'लेना एक न देना दो' या किसीसे कोई मतलब नहीं।

भावार्थ—चाहे कोई मुझे धूर्त्त कहे या महात्मा, राजपूत कहे या जुलाहा, मुझे किसीकी बेटीसे अपने बेटेका ब्याह नहीं करना है, न किसीकी जाति ही बिगाड़नी है। तुलसीदास तो प्रसिद्ध है रामजीके सेवकके नामसे, उसके लिए जिसकी जो इच्छा हो कहे। मुझे तो भीख माँगकर खाना है और मन्दिरमें सोना है; लेना एक न देना दो अर्थात् किसीसे कोई मतलब नहीं है।

कवित्त

मेरे जाति-पाँति न चहौं काहू की जाति-पाँति,
मेरे कोऊ काम को, न हौं काहू के काम को।
लोक परलोक रघुनाथ ही के हाथ सब,
भारी है भरोसो 'तुलसी' के एक नाम को॥
अति ही अयाने उपखानो नहिं बूझैं लोग,
साह ही को गोत गोत होत है गुलाम को।
साधु कै असाधु, कै भलो कै पोच, सोच कहा,
का काहू के द्वार परो? जो हौं सो हौं राम को॥१०७॥

शब्दार्थ—अयाने = मूर्ख। उपखानो = उपाख्यान, कहावत। साह = स्वामी।

भावार्थ—न मेरी जाति-पाँति है और न मैं किसीकी जाति-पाँति चाहता हूँ, न कोई मेरे कामका है और न मैं ही किसीके कामका हूँ। मेरा लोक परलोक सब श्रीरघुनाथजीके हाथमें है; तुलसीदासको तो एक रामनामका ही भारी भरोसा है। वे लोग बहुत बड़े मूर्ख हैं जो इस कहावतको नहीं समझते कि सेवकका गोत्र तो वही होता है जो स्वामीका। साधु हूँ या असाधु, भला हूँ या बुरा इसकी मुझे चिन्ता नहीं। क्या मैं किसीके द्वारपर पड़ा हूँ? मैं तो जो कुछ भी हूँ श्रीरामजीका हूँ।

कोऊ कहै करत कुसाज दगाबाज बड़ो,
कोऊ कहै राम को गुलाम खरो खूब है।
साधु जानैं महासाधु, खल जानैं महाखल
बानी झूठी साँची कोटि उठत हबूब है॥

कहत न काहू सों, न कहत काहू की कछु,
सब की सहत उर-अंतर न ऊब है।
तुलसी को भलो पोच हाथ रघुनाथ ही के,
राम की भगति भूमि मेरी मति दूब है ॥ १०८ ॥

शब्दार्थ—ब्बूब = पानीके बुलबुले । पोच = बुरा, नीच ।

भावार्थ—कोई कहता है कि तुलसीदास ढोंग करता है और बड़ा धोखेबाज है, कोई कहता है कि रामचन्द्रजीका बड़ा सच्चा सेवक है। साधुलोग मुझे अत्यन्त साधु समझते हैं और दुष्ट-लोग मुझे भारी दुष्ट समझते हैं। इस तरहकी झूठी-सच्ची करोड़ों बातें पानीके बुलबुलेकी तरह मेरे सम्बन्धमें उठती हैं। मैं किसीसे कुछ नहीं चाहता और न किसीके सम्बन्धमें कुछ कहता हूँ, सबकी बातें सहन करता हूँ किन्तु मेरे हृदयमें ऊब नहीं है। तुलसीदासका भला और बुरा रामचन्द्रजीके हाथमें है, रामजीकी भक्तिरूपी भूमिमें मेरी बुद्धि दूबके समान है।

जागैं जोगी जंगम, जती जमाती ध्यान धरैं,
डरैं उर भारी लोभ मोह कोह काम के।
जागैं राजा राजकाज, सेवक समाज साज,
सोचैं सुनि समाचार बड़े बैरी बाम के ॥
जागैं बुध विद्याहित पंडित चकित चित,
जागैं लोभी लालच धरनि धन धाम के।
जागैं भोगी भोग ही, बियोगी रोगी सोगबस,
सोवै सुख 'तुलसी' भरोसे एक राम के ॥ १०९ ॥

शब्दार्थ—जंगम = भ्रमण करनेवाले संन्यासी । जमाती = जमातवाले । बाम = दुष्ट ।

भावार्थ—योगी, जंगम, यति तथा जमाती ईश्वरका ध्यान करते हैं इसलिए जागते हैं; महाभयंकर लोभ, मोह, क्रोध और काम उनसे अपने हृदयमें डरते हैं। राजालोग राजकार्य तथा सेवकों और समाज-सेवाकी सामग्री जुटानेके लिए जागते हैं और अपने बड़े दुष्ट शत्रुका समाचार सुनकर उसके सम्बन्धमें सोचते हैं। बुद्धिमान पंडितलोग सावधान चित्तसे विद्याभ्यासके लिए जागते हैं और लोभीलोग पृथिवी, धन और मकानकी लालसासे जागते हैं। भोगीलोग भोगके लिए जागते हैं; वियोगी और रोगी शोकवश होकर जागते हैं। किन्तु तुलसीदास केवल रामजीके भरोसे सुखसे सोता है।

(छप्पय)

सम मातु, पितु, बंधु, सुजन, गुरु, पूज्य परम हित।
साहेब, सखा, सहाय, नेह नाते पुनीत चित॥
देस कोस कुल कर्म धर्म धन धाम धरनि गति।
जाति पाँति सब भाँति लागि रामहिं हमारि पति॥
परमारथ स्वारथ सुजस सुलभ राम तें सकल फल।
कह 'तुलसिदास' अब जब कबहुँ एक रामतें मोर भल॥११०॥

शब्दार्थ—सुजन = स्वजन, आत्मीय। हित = मित्र। कोस = खजाना। पति = प्रतिष्ठा। गति = मुक्ति।

भावार्थ—मेरे माता, पिता, भाई, स्वजन, पूज्य, गुरु, परम मित्र, स्वामी, सखा, सहायक हैं तथा पवित्र मनके जो कुछ नाते हैं ये सब रामचन्द्रजी ही हैं। देश, कोष, कुल, कर्म, धर्म, धन, घर, जमीन, मुक्ति, जाति-पाँति सब तरहसे रामचन्द्रजीके ही

हाथमें मेरी इज्जत है। स्वार्थ, परमार्थ, सुयश आदि सब फल रामजीके द्वारा ही सरलतासे प्राप्त होते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि अब तो जब कभी भी मेरा कल्याण होगा तब केवल रामजीके द्वारा ही।

महाराज बलि जाउँ राम सेवक-सुखदायक।
महाराज बलि जाउँ राम सुंदर सब लायक॥
महाराज बलि जाउँ राम सब संकट-मोचन।
महाराज बलि जाउँ राम राजीव-बिलोचन॥
बलि जाउँ राम करुनायतन प्रनतपाल पातकहरन।
बलि जाउँ राम कलि-भय-बिकल 'तुलसिदास' राखिय सरन॥१११॥

शब्दार्थ—राजीव-बिलोचन = कमलके समान नेत्रवाले श्रीरामजी। करुनायतन = करुणाके घर।

भावार्थ—हे सेवकोंको सुख देनेवाले महाराज रामचन्द्रजी, मैं आपकी बलि जाता हूँ। हे सुन्दर और सब कुछ करनेमें समर्थ महाराज रामजी, मैं आपकी बलि जाता हूँ। हे सब संकटोंको दूर करनेवाले श्रीरामजी, मैं आपकी बलि जाता हूँ। हे कमल-नेत्र श्रीरामजी, मैं आपकी बलि जाता हूँ। हे करुणाके घर भक्तोंका पालन करनेवाले और पापोंको हरनेवाले श्रीरामजी, मैं आपकी बलि जाता हूँ। हे राम, कलिके भयसे व्याकुल तुलसीदास-को अपनी शरणमें रखिये, आपकी बलि जाता हूँ।

जय ताड़का-सुबाहु-मथन, मारीच-मानहर।
मुनि-मख-रच्छन-दच्छ, सिलातारन, करुनाकर॥
नृपगन-बलमद सहित संभु-कोदण्ड-बिहंडन।

भावार्थ—योगी, जंगम, यति तथा जमाती ईश्वरका ध्यान करते हैं इसलिए जागते हैं; महाभयंकर लोभ, मोह, क्रोध और काम उनसे अपने हृदयमें डरते हैं। राजालोग राजकार्य तथा सेवकों और समाज-सेवाकी सामग्री जुटानेके लिए जागते हैं और अपने बड़े दुष्ट शत्रुका समाचार सुनकर उसके सम्बन्धमें सोचते हैं। बुद्धिमान पंडितलोग सावधान चित्तसे विद्याभ्यासके लिए जागते हैं और लोभीलोग पृथिवी, धन और मकानकी लालसासे जागते हैं। भोगीलोग भोगके लिए जागते हैं; वियोगी और रोगी शोकवश होकर जागते हैं। किन्तु तुलसीदास केवल रामजीके भरोसे सुखसे सोता है।

(छप्पय)

सम मातु, पितु, बंधु, सुजन, गुरु, पूज्य परम हित।
साहेब, सखा, सहाय, नेह नाते पुनीत चित॥
देस कोस कुल कर्म धर्म धन धाम धरनि गति।
जाति पाँति सब भाँति लागि रामहिं हमारि पति॥
परमारथ स्वारथ सुजस सुलभ राम तें सकल फल।
कह 'तुलसिदास' अब जब कबहुँ एक रामतें मोर भल॥११०॥

शब्दार्थ—सुजन = स्वजन, आत्मीय। हित = मित्र। कोस = खज़ाना। पति = प्रतिष्ठा। गति = मुक्ति।

भावार्थ—मेरे माता, पिता, भाई, स्वजन, पूज्य, गुरु, परम मित्र, स्वामी, सखा, सहायक हैं तथा पवित्र मनके जो कुछ नाते हैं वे सब रामचन्द्रजी ही हैं। देश, कोष, कुल, कर्म, धर्म, धन, घर, ज़मीन, मुक्ति, जाति-पाँति सब तरहसे रामचन्द्रजीके ही

हाथमें मेरी इज्जत है। स्वार्थ, परमार्थ, सुयश आदि सब फल रामजीके द्वारा ही सरलतासे प्राप्त होते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि अब तो जब कभी भी मेरा कल्याण होगा तब केवल रामजीके द्वारा ही।

महाराज बलि जाउँ राम सेवक-सुखदायक।
महाराज बलि जाउँ राम सुंदर सब लायक॥
महाराज बलि जाउँ राम सब संकट-मोचन।
महाराज बलि जाउँ राम राजीव-बिलोचन॥
बलि जाउँ राम करुनायतन प्रनतपाल पातकहरन।
बलि जाउँ राम कलि-भय-बिकल 'तुलसिदास' राखिय सरन॥१११॥

शब्दार्थ—राजीव-विलोचन = कमलके समान नेत्रवाले श्री रामजी। करुनायतन = करुणाके घर।

भावार्थ—हे सेवकोंको सुख देनेवाले महाराज रामचन्द्रजी, मैं आपकी बलि जाता हूँ। हे सुन्दर और सब कुछ करनेमें समर्थ महाराज रामजी, मैं आपकी बलि जाता हूँ। हे सब संकटोंको दूर करनेवाले श्रीरामजी, मैं आपकी बलि जाता हूँ। हे कमल-नेत्र श्रीरामजी, मैं आपकी बलि जाता हूँ। हे करुणाके घर भक्तोंका पालन करनेवाले और पापोंको हरनेवाले श्रीरामजी, मैं आपकी बलि जाता हूँ। हे राम, कलिके भयसे व्याकुल तुलसीदास-को अपनी शरणमें रखिये, आपकी बलि जाता हूँ।

जय ताड़का-सुबाहु-मथन, मारीच-मानहर।
मुनि-मख-रच्छन-दच्छ, सिलातारन करुनाकर॥
नृपगन-बलमद सहित संभु-कोदण्ड-बिहंडन।

जय कुठारधर-दर्पदलन, दिनकर कुल-मंडन ॥
जय जनकनगर-आनन्दप्रद, सुखसागर सुखमाभवन ।
कह 'तुलसिदास' सुर-मुकुटमनि, जयजयजय जानकिरवन॥११२॥

शब्दार्थ—मानहर = अभिमानको दूर करनेवाले। मख = यज्ञ। सिला = अहल्या। कोदंड = धनुष। विहंडन = तोड़नेवाले कुठारधर = परशुराम।

भावार्थ—ताड़का और सुबाहुको मारनेवाले, मारीचके अभिमानको हरनेवाले, विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षा करनेमें कुशल तथा अहल्याका उद्धार करनेकी कृपा करनेवाले श्रीरामजीकी जय हो। राजाओंके बलके घमंडके सहित शिवजीके धनुषको तोड़नेवाले, परशुरामके अभिमानको चूर्ण करनेवाले तथा सूर्यवंशको सुशोभित करनेवाले रामजीकी जय हो। जनकपुरको आनन्दित करनेवाले, सुखके समुद्र, शोभाके घर श्रीरामजीकी जय हो। तुलसीदासजी कहते हैं कि देवताओंके शिरोमणि जानकी-रमण श्रीरामजीकी जय हो जय हो जय हो।

जय जयंत-जयकर, अनन्त-सज्जन जन रंजन।
जय विराध-बध-बिदुष, बिबुध-मुनिगन-भयभंजन ॥
जय निसिचरी-बिरूप-करन रघुबंस-बिभूषन।
सुभट चतुर्दस-सहस-दलन त्रिसिरा खर दूषन ॥
जय दंडक-बन-पावन-करन 'तुलसिदास' संसय-समन।
जगबिदित जगतमनि जयति जय जय जय जय जानकिरवन॥११३॥

शब्दार्थ—जयंत = इन्द्रके पुत्रका नाम है। रंजन = प्रसन्न करनेवाले। बिबुध = देवता।

भावार्थ—जयन्तको जीतनेवाले, अगणित सज्जनोंको प्रसन्न करनेवाले श्रीरामजीकी जय हो। विराधका वध करनेमें निपुण, देवताओं और मुनियोंके भयको दूर करनेवाले श्रीरामजीकी जय हो। सूर्पणखाको (नाक-कान काटकर) बदशकल करनेवाले रघुकुलके भूषण श्रीरामजीकी जय हो। चौदह हजार अच्छे योद्धाओंके सहित त्रिशिरा, खर तथा दूषणको मारनेवाले श्रीरामजीकी जय हो। दंडकवनको पवित्र करनेवाले, तुलसीदासके सन्देहको नष्ट करनेवाले श्रीरामजीकी जय हो। संसारमें प्रसिद्ध जगत्-शिरोमणि श्रीरामजीकी जय हो।

जय मायामृग-मथन गीध-सवरी-उद्धारन।
जय कबंध-सूदन बिसाल-तरु-ताल-बिदारन॥
दवन बालि बलसालि, थपन सुग्रीव, संत-हित।
कपि-कराल-भट-भालु-कटक-पालन कृपालु चित॥
जय सिय-वियोग-दुख-हेतु-कृत-सेतु-बंध बारिधि-दमन।
दससीस-बिभीषन-अभयप्रद, जय जय जय जानकिरमन॥११४॥

शब्दार्थ—मायामृग = मारीच। थपन = स्थापित करनेवाले। बारिधि = समुद्र। दससीस = रावण।

भावार्थ—मारीचको मारनेवाले, गिद्ध और शबरीका उद्धार करनेवाले श्रीरामजीकी जय हो। कबन्धको मारनेवाले, विशाल सप्तताल वृक्षोंको विदीर्ण करनेवाले श्रीरामजीकी जय हो। बलशाली बालिको मारनेवाले, सुग्रीवको स्थापित करनेवाले, सज्जनोंके हितैषी श्रीरामजीकी जय हो। बन्दर और भालुओंके भयंकर योद्धाओंसे युक्त सेनाकी रक्षा करनेवाले दयालु चित्त

श्रीरामजीकी जय हो। सीता-वियोगके दुःखके कारण समुद्रपर पुल बाँधनेवाले, समुद्रके अभिमानको चूर करनेवाले श्रीरामजीकी जय हो। रावणके भयसे भयभीत विभीषणको अभयदान देनेवाले श्रीरामजीकी जय हो।

20) कनक-कुधर केदार, बीज सुंदर सुरमनि-बर।
सींचि कामधुक-धेनु सुधामय पय बिशुद्धतर॥
तीरथपति अंकुर-सरूप, जच्छेस रच्छ तेहि।
मरकतमय साखा, सुपत्र मंजरि सुलच्छि जेहि॥
कैवल्य सकल फल कल्पतरु, सुभ सुभाव सब सुख बरिस।
कह 'तुलसिदास' रघुबंसमनि तौ कि होहि तुव कर सरिस॥११५॥

शब्दार्थ—कुधर = पहाड़। केदार = क्यारी। सुरमनि = चन्द्रकान्त मणि। कामधुक = इच्छाओंको पूर्ण करनेवाली। तीरथपति = प्रयागराज। जच्छेश = यक्षेश। मरकत = नीलम। सुलच्छि = लक्ष्मी।

भावार्थ—यदि सुवर्णगिरि (सुमेरु पर्वत) रूपी क्यारीमें सुन्दर चन्द्रकान्त मणि रूपी बीज बोया जाय और उसे कामधेनु अपने अमृतके समान शुद्ध दूधसे सींचे और उससे प्रयाग रूपी अंकुर उत्पन्न हो जिसकी रक्षा कुबेर करें, नीलमणि रूपी शाखा और पत्ते तथा लक्ष्मीरूपी मंजरी उससे उत्पन्न हो; ऐसे मोक्ष आदि सब फलोंको देनेवाला और सब सुखकी वर्षा करनेवाला तथा सुन्दर स्वभाववाला कोई कल्पवृक्ष हो तो हे रामचन्द्रजी, क्या वह आपके हाथोंके समान हो सकता है?

जाग जो सुभट समर्थ पाइ रन रारि न मंडै।

जाय सो जती कहाय विषय-वासना न छंडै ॥
जाय धनिक बिनु दान, जाय निर्धन बिनु धर्महिं ।
जाय सो पंडित पढ़ि पुरान जो रत न सुकर्महिं ॥
सुत जाय मातु-पितु-भक्ति बिनु, तिय सो जाय जेहिपति न हित ।
सब जाय दास 'तुलसी' कहै जो न राम पद नेह नित ॥११६॥

शब्दार्थ—जाय = व्यर्थ । रन = रण। रारि = युद्ध । छंडै = छोड़ता । रत = लीन ।

भावार्थ—वह सामर्थ्यवान सुन्दर योद्धा व्यर्थ है जो युद्ध करनेका अवसर पाकर युद्ध न करे। वह योगी व्यर्थ है जो विषयवासनाओंको नहीं छोड़ता । दान न देनेवाला धनी व्यर्थ है और धर्म न करनेवाला निर्धन मनुष्य व्यर्थ है । वह पंडित व्यर्थ है जो पुराणोंको पढ़कर अच्छे कर्मोंमें लीन नहीं है। माता-पिता-की भक्तिके बिना पुत्र व्यर्थ है ! पतिकी भलाई न चाहनेवाली स्त्री व्यर्थ है । तुलसीदासजी कहते हैं कि यदि श्रीरामजीके चरणोंमें नित्य स्नेह न हो तो सब व्यर्थ है ।

को न क्रोध निरदह्यो, काम बस केहि नहिं कीन्हों ?
को न लोभ दृढ़फंद बाँधि त्रासन करि दीन्हों ?
कौन हृदय नहिं लाग कठिन अति नारि-नयन-सर ?
लोचनजुत नहिं अन्ध भयो श्री पाइ कौन नर ?
सुर-नागलोक महिमंडलहु को जु मोह कीन्हों जय न ?
कह 'तुलसिदास' सो ऊबरै जेहि राख राम राजिवनयन ॥११७॥

शब्दार्थ—निरदह्यो = जलाया । त्रासन = भयभीत । श्री = धन । नागलोक = पाताल ।

भावार्थ—क्रोधने किसे नहीं जलाया और कामने किसे वशमें नहीं किया? लोभने अपने दृढ़ फन्देमें बाँधकर किसे भयभीत नहीं किया? ऐसा कौनसा हृदय है जिसमें स्त्रियोंके अत्यन्त कठिन नेत्र-बाण नहीं लगे? कौन मनुष्य है जो लक्ष्मी पाकर आँखोंके रहते अन्धा नहीं हुआ? मोहने आकाश, पाताल और मर्त्यलोकमें किसपर विजय नहीं पायी? तुलसीदासजी कहते हैं कि इन सबसे वही बच सकता है जिसकी रक्षा कमलके समान नेत्रवाले श्रीरामजी करें।

(सवैया)

भौंह-कमान-सँधान-सुठान जे नारि-बिलोकनि बान तें बाँचे।
कोप-कृसानु-गुमान-अवाँ घट ज्यों जिनके मन आँच न आँचे॥
लोभ सबै नट के बस ह्वै कपि ज्यों जगमें बहु नाच न नाचे।
नीके हैं साधु सबै 'तुलसी' पै तेई रघुबीरके सेवक साँचे॥११८॥

शब्दार्थ—सुठान = भलीभाँति। कृसानु = अग्नि। गुमान = घमंड।

भावार्थ—जो स्त्रियोंके भौंह रूपी धनुषसे सँभलकर छोड़े हुए चितवन रूपी बाणोंसे बच गये, जिनका मन घड़ेकी भाँति आँवेमें क्रोधरूपी अग्निकी आँचसे तप्त नहीं हुआ, जिन्होंने अनेक प्रकारके लोभ रूपी नटके वशमें होकर बन्दरके समान संसारमें अनेक प्रकारके नाच नहीं नाचे, तुलसीदासजी कहते हैं कि वे ही साधु रामजीके सच्चे सेवक हैं, यों तो सभी साधु अच्छे हैं।

कवित्त

भेष सुबनाइ, सुचि बचन कहैं चुवाइ,
जाइ तौ न जरनि धरनि धन धाम की।
कोटिक उपाय करि लालि पालियत देह,
मुख कहियत गति राम ही के नाम की॥
प्रगटै उपासना, दुरावै दुरबासनाहिं,
मानस निवास-भूमि लोभ, मोह, काम की।
राग रोष ईरषा कपट कुटिलाई भरे,
'तुलसी' से भगत भगति चहैं रामकी॥११९॥

शब्दार्थ—चुवाइ = चिकनाकर। दुरावै = छिपाता है।

भावार्थ—सुन्दर वेष बनाकर रच-रचकर पवित्र बातें कहते हैं, फिर भी जमीन, धन और घरकी चिन्ता नहीं जाती। करोड़ों उपाय करके शरीरका लालन-पालन करते हैं और मुँहसे कहते हैं कि मुझे रामजीके नामका ही भरोसा है। वे लोग उपासनाको प्रकट करते हैं और बुरी वासनाओंको छिपाते हैं; उनका मन लोभ, मोह तथा कामका निवास-स्थान है। राग, रोष, ईर्ष्या, कपट और कुटिलतासे भरे हुए तुलसीदासके समान भक्त भी रामकी भक्ति चाहते हैं।

कालिह ही तरुन तन, कालिह ही धरनि धन,
कालिह ही जितौंगो रन, कहत कुचालि है।
कालिह ही साधौंगो काज, कालिह ही राजा समाज,
मसक ह्वै कहै 'भार मेरे मेरु हालि है'॥
'तुलसी' यही कुभाँति घने घर घालि आई,

घने घर घालति है, घने घर घालि है।
देखत सुनत समुझत हू न सूझै सोई,
कबहूँ कह्यो न 'कालहू को काल कालि' है ॥१२०॥

शब्दार्थ—कुचालि = कुचाली, बुरेलोग। मसक = मच्छर।

भावार्थ—बुरेलोग कहते हैं कि कल ही मेरा शरीर युवा हो जायगा, कल ही मैं जमीन और धनवाला हो जाऊँगा, कल ही मैं युद्धमें जीतूँगा। कल ही मैं कार्य सिद्ध करूँगा, कल ही राजाओं-की श्रेणीमें हो जाऊँगा; मच्छरके समान तुच्छ होते हुए भी वे कहते हैं कि मेरे भारसे पर्वत हिलेगा। तुलसीदासजी कहते हैं कि यही कुबुद्धि अनेकों घर नष्ट कर आयी, अनेकों घर बर्बाद कर रही है और बहुतसे घरोंको नष्ट करेगी। देखते सुनते और समझते हुए भी किसीको यह नहीं सूझता और कभी कोई यह नहीं कहता कि कल कालके लिए भी काल है अर्थात् यह निश्चय नहीं है कि कलतक यह शरीर अवश्य रहेगा।

भयो न तिकाल तिहूँलोक 'तुलसी' सो मंद,
निंदैं सब साधु, सुनि मानौं न सकोचु हौं।
जानत न जोग, हिय हानि मानौ जानकीस,
काहे को परेखो पातकी प्रपंची पोचु हौं॥
पेट भरिबे के, काज महाराज को कहायों,
महाराजहू कह्यो है 'प्रनत-बिमोचु हौं'।
निज अघजाल, कलिकाल की करालता,
बिलोकि होत व्याकुलता, करत सोई सोचु हौं॥१२१॥

शब्दार्थ—परेखो = उलाहना। पोचु = नीच। अघ-जाल = पाप-समूह।

भावार्थ—तीनोंकाल (भूत, वर्त्तमान, भविष्य) और तीनों लोकों (स्वर्ग, मर्त्य, पाताल) में तुलसीके समान मूर्ख कोई नहीं हुआ; साधुलोग मेरी निन्दा करते हैं किन्तु मैं लज्जित नहीं होता। हे रामजी, आप मुझे योग्य सेवक नहीं समझते इससे मुझे अपनानेमें अपनी हानि समझते हैं; ऐसी दशामें मैं आपको क्यों उलाहना दूँ क्योंकि मैं तो स्वयं पापी, प्रपंची और नीच हूँ। पेट भरनेके लिए मैं आपका सेवक कहलाता हूँ और महाराजने भी कहा है कि मैं अपने भक्तोंका दुःख दूर करता हूँ। लेकिन अपने पापोंके समूह और कलिकालकी भयंकरताको देखकर घबराता हूँ और इसी बातकी मैं चिन्ता भी करता हूँ।

धरम के सेतु जगमंगलके हेतु, भूमि-भार
हरिबो को अवतार लियो नर को।
नीति औ प्रतीति-प्रीति-पाल प्रभु चालि मान,
लोक-वेद राखिबे को पन रघुवर को॥
बानर बिभीषन की ओर के कनावड़े हैं,
सो प्रसंग सुने अंग जरै अनुचर को।
राखे रीति आपनी जो होइ सोई कीजै, बलि,
'तुलसी' तिहारो घरजायऊ है घर को ॥१२२॥

शब्दार्थ—सेतु = पुल, मर्यादा। पन = प्रतिज्ञा। कनावड़े = एहसानमन्द। घरजायऊ = घरका पैदा हुआ भी।

भावार्थ—रामजी धर्मकी मर्यादा हैं; उन्होंने संसारका कल्याण करनेके लिए तथा पृथ्वीका भार उतारनेके लिए मनुष्यका अवतार लिया। नीति, विश्वास और प्रेमका पालन करना प्रभु-

का स्वभाव है। लोक और वेदकी रक्षा करनेके लिए रामजीकी प्रतिज्ञा है। वह बन्दर(सुग्रीव, हनुमान आदि) तथा विभीषणके पक्षके लोगोंके एहसानमन्द हैं, यह प्रसंग सुनकर सेवक तुलसी दासका अंग-प्रत्यंग जलने लगता है। हे रामजी, अपनी रीतिकी रक्षा करते हुए जो कुछ हो सके वह कीजिये, आपकी बलि जावा हूँ, तुलसीदास आपके घरका घरमें पैदा हुआ सेवक है।

नाम महाराज के निबाह नीको कीजै उर,
सबही सोहात मैं न लोगनि सोहात हौं।
कीजै राम बार यहि मेरी ओर चखकोर,
ताहि लगि रंक ज्यों सनेह को ललात हौं॥
'तुलसी' बिलोकि कलिकाल की करालता,
कृपालु को सुभाव समुझत सकुचात हौं।
लोक एक भाँति को, तिलोकनाथ लोकबस,
आपनो न सोच, स्वामी सोच ही सुखात हौं॥१२३॥

शब्दार्थ—ताहि लगि = उसके लिए। सनेह = घी।

भावार्थ—महाराज रामजीके नामसे हृदयमें अच्छी तरह निर्वाह करनेसे सभी लोग अच्छे लगते हैं, किन्तु मैं लोगोंको अच्छा नहीं लगता। हे रामजी, इस बार मेरी ओर कृपा दृष्टि फेरिये। उस (कृपा दृष्टि) के लिए मैं उसी प्रकार लालायित हूँ जैसे निर्धन मनुष्य घीके लिए लालायित रहता है। तुलसीदास कहते हैं कि कलियुगकी भयंकरता देखकर और कृपालु श्रीरामजी-का स्वभाव समझकर मैं लज्जित होता हूँ। समूचा संसार एकही-सा है अर्थात् पापमें लीन है और तीनों लोकोंके स्वामी रामजी

संसारके अधीन है; मुझे अपने लिए चिन्ता नहीं है बल्कि स्वामीके लिए ही जो चिन्ता है उसीसे सूखा जा रहा हूँ।

तौ लौं लोभ, लोलुप ललात लालची लवार,
बार बार लालच धरनि धन धाम को।
तब लौं बियोग-रोग-सोग, भोग जातना को,
जुग सम लगत जीवन जाम-जाम को॥
तौ लौं दुख दारिद दहत अति नित तनु,
'तुलसी' है किंकर बिमोह कोह काम को।
सब दुख आपने निरापने सकल सुख,
जौ लौं जन भयो न बजाइ राजा राम को॥१२४॥

शब्दार्थ—लबार = झूठा। जाम = पहर। निरापने = पराया। बजाइ = डंकेकी चोट।

भावार्थ—मनुष्यमें तभीतक लोभ रहता है, और वह लोलुप, लालायित, लालची झूठा तथा जमीन, धन एवं घरका लालची रहता है, तभीतक वह वियोग और रोगका शोक सहता तथा कष्ट भोगता है, तभीतक वह जीवनके प्रत्येक पहरको युगके समान अनुभव करता है, तभीतक घोर दरिद्रता और दुःख शरीरको जलाते हैं, तभीतक वह मोह, क्रोध और कामका दास बना रहता है, तभीतक उसके लिए सब दुःख अपने और सब सुख पराये रहते हैं जबतक वह डंकेकी चोट महाराज श्रीरामजी-का भक्त नहीं हो जाता।

तब लौं मलीन हीन दीन, सुख सपने न,
जहाँ तहाँ दुखी जन भाजन कलेस को।

तब लौं उबेने पायँ फिरत पेटै खलाय,
बाये मुँह सहत पराभौ देस देस को ॥
तब लौं दयावनो, दुसह दुख दारिद को,
साथरी को सोइबो, ओढ़िबो झूने खेस को।
जब लौं न भजै जीह जानकी-जीवन राम,
राजन को राजा सो तौ साहेब महेस को ॥१२५॥

शब्दार्थ—उबेने = नंगे। पराभौ = अपमान। साथरी = चटाई। झूने = झीना। खेस = पुरानी रुईसे बना मोटा वस्त्र।

भावार्थ—मनुष्य तभीतक मलिन, हीन और गरीब रहता है, उसे स्वप्नमें भी सुख नहीं मिलता, इधर उधर दुखी और क्लेशका पात्र बना रहता है; तभीतक पेट खलाये मुँह फैलाये नंगे पैर देश देशमें अपमान सहता है, तभीतक वह दयाका पात्र रहता है और असह्य दुःख तथा दरिद्रताका सहन करता है, चटाईपर सोता और पुरानी रुईके बने मोटे कपड़े पहनता-ओढ़ता है, जबतक वह जीभसे राजाओंके राजा, शिवजीके स्वामी, सीतापति श्रीरामजीको नहीं भजता।

ईसन के ईस, महाराजन के महाराज,
देवन के देव, देव ! प्रानहू के प्रान हौ।
कालहू के काल, महाभूतन के महाभूत,
कर्महू के करम, निदान के निदान हौ ॥
निगम को अगम, सुगम 'तुलसी' हू से को,
एते मान सीलसिंधु करुनानिधान हौ।
महिमा अपार, काहू बोल को न वारापार,
बड़ी साहिबी में नाथ बड़े सावधान हौ ॥१२६॥

शब्दार्थ—निदान = कारण। निगम = वेद। अगम = जहाँ कोई न पहुँच सके।

भावार्थ—हे रामजी, आप ईशोंके भी ईश, महाराजोंके महाराज, देवताओंके भी देवता और प्राणोंके भी प्राण हैं। आप कालोंके भी काल, महाभूतों (पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश) के भी महाभूत, कर्मके भी कर्म और कारणके भी कारण (अर्थात् विश्व-ब्रह्मांडको उत्पन्न करनेवाले) हैं। आप वेदोंके लिए भी अगम्य हैं किन्तु आप इतने शीलमान और करुणानिधान हैं तुलसीदासके समान तुच्छ लोगोंके लिए भी सुगम हैं। आपकी महिमा अपार है, किसी भी बातका अन्त नहीं है। हे नाथ! आप अपने महान स्वामित्त्वमें बड़े सावधान हैं।

(सवैया)

आरतपाल कृपालु जो राम, जेही सुमिरे तेहि को तहँ ठाढ़े।
नाम-प्रताप महा महिमा, अँकरे किये खोटेउ, छोटेउ बाढ़े॥
सेवक एक तें एक अनेक भए 'तुलसी' तिहुँ ताप न डाढ़े।
प्रेम बदौं प्रह्लादहि को जिन पाहन तें परमेश्वर काढ़े॥१२७॥

शब्दार्थ—अँकरे = खरे, उत्तम। डाढ़े = जले हुए। बदौं = कहता हूँ।

भावार्थ—जो रामजी दुखियोंका पालन करनेवाले और कृपालु हैं, उनको जिस किसीने जहाँ कहीं स्मरण किया उसके लिए वह वहींपर खड़े मिले। आपके नामके प्रतापकी बहुत बड़ी महिमा है; नामके प्रतापने खोटोंको खरा और छोटेको बड़ा बना

तब लौं उबेने पायँ फिरत पेटै खलाय,
बाये मुँह सहत पराभौ देस देस को ॥
तब लौं दयावनो, दुसह दुख दारिद को,
साथरी को सोइबो, ओढ़िबो झूने खेस को ।
जब लौं न भजै जीह जानकी-जीवन राम,
राजन को राजा सो तौ साहेब महेस को ॥१२५॥

शब्दार्थ—उबेने = नंगे। पराभौ = अपमान। साथरी = चटाई। झूने = झीना। खेस = पुरानी रुईसे बना मोटा वस्त्र।

भावार्थ—मनुष्य तभीतक मलिन, हीन और गरीब रहता है, उसे स्वप्नमें भी सुख नहीं मिलता, इधर उधर दुखी और क्लेशका पात्र बना रहता है; तभीतक पेट खलाये मुँह फैलाये नंगे पैर देश देशमें अपमान सहता है, तभीतक वह दयाका पात्र रहता है और असह्य दुःख तथा दरिद्रताका सहन करता है, चटाईपर सोता और पुरानी रुईके बने मोटे कपड़े पहनता-ओढ़ता है, जबतक वह जीभसे राजाओंके राजा, शिवजीके स्वामी, सीतापति श्रीरामजीको नहीं भजता।

ईसन के ईस, महाराजन के महाराज,
देवन के देव, देव ! प्रानहू के प्रान हौ ।
कालहू के काल, महाभूतन के महाभूत,
कर्महू के करम, निदान के निदान हौ ॥
निगम को अगम, सुगम 'तुलसी' हू से को,
एते मान सीलसिंधु करुनानिधान हौ ।
महिमा अपार, काहू बोल को न वारापार,
बड़ी साहिबी में नाथ बड़े सावधान हौ ॥१२६॥

शव्दार्थ—निदान = कारण। निगम = वेद। अगम = जहाँ कोई न पहुँच सके।

भावार्थ—हे रामजी, आप ईशोंके भी ईश, महाराजोंके महाराज, देवताओंके भी देवता और प्राणोंके भी प्राण हैं। आप कालोंके भी काल, महाभूतों (पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश) के भी महाभूत, कर्मके भी कर्म और कारणके भी कारण (अर्थात् विश्व-ब्रह्मांडको उत्पन्न करनेवाले) हैं। आप वेदोंके लिए भी अगम्य हैं किन्तु आप इतने शीलमान और करुणानिधान हैं तुलसीदासके समान तुच्छ लोगोंके लिए भी सुगम हैं। आपकी महिमा अपार है, किसी भी वातका अन्त नहीं है। हे नाथ! आप अपने महान स्वामित्त्वमें वड़े सावधान हैं।

(सवैया)

आरतपाल कृपालु जो राम, जेही सुमिरे तेहि को तहँ ठाढ़े।
नाम-प्रताप महा महिमा, अँकरे किये खोटेउ, छोटेउ वाढ़े॥
सेवक एक तें एक अनेक भए 'तुलसी' तिहुँ ताप न डाढ़े।
प्रेम बदौं प्रहलादहि को जिन पाहन तें परमेश्वर काढ़े॥१२७॥

शव्दार्थ—अँकरे = खरे, उत्तम। डाढ़े = जले हुए। वदौं = कहता हूँ।

भावार्थ—जो रामजी दुखियोंका पालन करनेवाले और कृपालु हैं, उनको जिस किसीने जहाँ कहीं स्मरण किया उसके लिए वह वहींपर खड़े मिले। आपके नामके प्रतापकी वहुत वड़ी महिमा है; नामके प्रतापने खोटोंको खरा और छोटेको वड़ा वना

दिया। तुलसीदासजी कहते हैं कि एक-से-एक अच्छे भक्त न-जाने कितने हो गये जोकि तीनों तापों (दैहिक, दैविक, भौतिक) से नहीं जले। मैं तो प्रेम कहता हूँ प्रह्लादका जिसने पत्थरके खम्भेके भीतरसे परमात्माको प्रकट कर लिया।

काढ़ि कृपान, कृपा न कहूँ, पितु काल कराल बिलोकि न भागे।
'राम कहाँ?' 'सब ठाउँ हैं' 'खंभ में?' 'हाँ' सुनि हाँक नृकेहरि जागे॥
बैरी बिदारि भए बिकराल, कहे प्रहलादहि के अनुरागे।
प्रीति प्रतीति बढ़ी 'तुलसी' तब तें सब पाहन पूजन लागे॥१२८॥

शब्दार्थ—कृपान = तलवार। नृकेहरि = नृसिंह। बिदारि = विदीर्ण करके, फाड़कर।

भावार्थ—हिरण्यकशिपुने अपने पुत्र प्रह्लादको मारनेके लिए तलवार खींच ली। प्रह्लादके लिए कहीं भी कृपा न रही; परन्तु विकराल कालके समान पिताको देखकर प्रह्लाद भागे नहीं। हिरण्यकशिपुने पूछा, राम कहाँ हैं? प्रह्लादने कहा, सब जगह हैं। हिरण्यकशिपुने पूछा, इस खम्भे (जिसमें प्रह्लाद बँधे थे) में भी हैं? प्रह्लादने कहा, हाँ। प्रह्लादके मुखसे 'हाँ' सुनते ही नृसिंह भगवान खम्भा फाड़कर निकल पड़े और शत्रुको फाड़कर बहुत ही भयंकर रूप धारण किया। पश्चात् प्रह्लादके ही कहनेपर वह शान्त हुए। तुलसीदासजी कहते हैं कि तभीसे उनमें लोगों-का विश्वास तथा प्रेम बढ़ा और लोग पत्थरकी पूजा करने लगे।

अंतरजामिहु तें बड़ बाहरजामि हैं राम, जे नाम लिए तें।
धावत धेनु पन्हाइ लवाइ ज्यों बालक बोलनि कान किए तें॥

आपनी बूझि कहै 'तुलसी' कहिबे की न बावरी बात बिये तें ।
पैज परे प्रहलादहु को प्रगटे प्रभु पाहन तें न हिये तें ॥१२९॥

शब्दार्थ—अन्तरजामिहु = हृदयमें जानने योग्य निर्गुणब्रह्मसे भी । बाहरजामि = सगुण ब्रह्म । पन्हाइ = पेन्हाकर । लवाइ = लवारि, थोड़े दिनोंकी ब्याई हुई । बियेतें = दूसरेसे ।

भावार्थ—निर्गुण ब्रह्मसे भी सगुण ब्रह्म श्रीरामजी बड़े हैं जो नाम लेनेसे इस प्रकार दौड़ पड़ते हैं जैसे लवारि गाय अपने बच्चेकी बोली सुनते ही पेन्हाकर उसके पास चली आती है। तुलसीदास अपनी समझसे कहते हैं कि अपने पागलपनकी बात दूसरेसे कहने योग्य नहीं है । प्रह्लादकी प्रतिज्ञाको पूरी करनेके लिए भी भगवान पत्थरसे प्रकट हुए न कि हृदयसे ।

बालक बोलि दियो बलि काल को, कायर कोटि कुचाल चलाई ।
पापी है बाप, बड़े परिताप तें आपनी ओर तें खोरि न लाई ॥
भूरि दई बिषमूरि, भई प्रहलाद सुधाई सुधा की भलाई ।
रामकृपा 'तुलसी' जनको, जग होत भले को भलोई भलाई ॥१३०॥

शब्दार्थ—खोरि न लाई = कमी नहीं की, उठा नहीं रखा । भूरि = बहुत । सुधाई = सीधेपन ।

भावार्थ—कायर हिरण्यकशिपुने अपने पुत्र प्रह्लादको मारनेके लिए बहुतसे प्रयत्न किये और उसे बुलाकर कालको बलिदान कर दिया । प्रह्लादका बाप पापी था, उसने प्रह्लादको बड़े बड़े कष्ट देनेमें अपनी ओरसे कुछ भी उठा नहीं रखा । उसने बहुतसे भयंकर विष दिये; किन्तु प्रह्लादके सीधेपनके कारण वे विष अमृतकी भलाईके समान हो गये । तुलसीदास कहते हैं कि

रामजीकी कृपासे संसारमें अच्छे भक्तकी भलाई अच्छी तरहसे होती है।

कंस करी ब्रजवासिन पै करतूति कुभाँति, चली न चलाई।
पांडु के पूत सपूत, कुपूत सुजोधन भो कलि छोटो छलाई॥
कान्ह कृपालु बड़े नतपालु गए खल खेचर खीस खलाई।
ठीक प्रतीत कहै 'तुलसी' जग होइ भले को भलोई भलाई॥१२१॥

शब्दार्थ—खेचर = राक्षस। खीस = नष्ट। खलाई = दुष्टतासे।

भावार्थ—कंस ब्रजवासियोंके साथ बुरी तरह पेश आया, पर उसकी एक न चली। पांडव सपूत थे और दुर्योधन कपूत था और छल करनेमें कलियुगका छोटा भाई था। किन्तु कृपालु कृष्णजी बड़े ही शरणागत-रक्षक थे, इसलिए दुष्ट राक्षस अपनी दुष्टतासे नष्ट हो गये। तुलसीदासजी अपना दृढ़ विश्वास कहते हैं कि संसारमें अच्छे लोगोंकी अच्छी तरह भलाई होती है।

अवनीस अनेक भए अवनी जिनके डरतें सुर सोच सुखाहीं।
मानव-दानव-देव-सतावन रावन घाटि रच्यो जगमाहीं॥
ते मिलए धरि धूरि सुजोधन जे चलते बहु छत्र की छाँहीं,।
वेद-पुरान कहैं, जगजान गुमान गोबिंदहि भावत नाहीं॥१२२॥

शब्दार्थ—अवनीस = राजा। अवनी = पृथिवी। भावत नाहीं = अच्छा नहीं लगता।

भावार्थ—पृथिवीमें बहुतसे ऐसे राजा हुए जिनके भयसे देवतालोग भी शोकसे सूख जाते थे। मनुष्यों, राक्षसों और देवताओंको सतानेवाले रावणने संसारमें बड़ी नीचता की। जो दुर्योधन कई छत्रोंकी छायामें चलता था, भगवानने उसे भी धूलमें

मिला दिया। वेद और पुराण कहते हैं और संसार भी अच्छी तरह जानता है कि गोविन्दजीको किसीका घमंड अच्छा नहीं लगता।

जब नैनन प्रीति ठई ठग स्याम सों, स्यानी सखी हठि हौं बरजी।
नहिं जान्यो वियोग सो रोग है आगे झुकी तब हौं तेहिसों तरजी॥
अब देह भई पट नेह के घाले सों, ब्यौंत करै बिरहा दरजी।
ब्रजराज-कुमार बिना सुनु, भृंग! अनंग भयो जिय को गरजी॥१३३॥

शब्दार्थ—ठई = ठानी। बरजी = मना किया। झुकी = नाराज हुई। तरजी = फटकारा। अनंग = कामदेव। गरजी = इच्छुक।

प्रसंग—श्रीकृष्णके ब्रजसे मथुरा चले जानेपर गोपिकाएँ बहुत दुखी रहने लगीं। इससे उन्हें समझानेके लिए श्रीकृष्णने उद्धवको भेजा। वहाँ उद्धव उन्हें समझा ही रहे थे कि एक भौंरा उड़ता हुआ आकर राधिकाजीके पैरपर बैठ गया। फिर क्या था गोपिकाओंने उस भ्रमरको ही सम्बोधन कर उद्धवको उलाहना देना शुरू किया। इस विषयकी कविताएँ 'भ्रमरगीत' के नामसे विख्यात हैं। यह कविता तथा आगेकी दो कविताएँ उसी प्रसंगकी हैं।

भावार्थ—एक सखी उद्धवसे कहती है कि जब मेरे नेत्रोंने छलिया श्रीकृष्णसे प्रेम करनेकी ठान ली, तब मेरी चतुर सखीने जोर देकर मुझे मना किया। उस समय मुझे नहीं मालूम हुआ कि आगे वियोगका रोग भी है। इसीसे नाराज होकर मैंने अपनी सखीको फटकारा। अब प्रेम करनेसे मेरा शरीर वस्त्रके समान

दुबला पतला हो गया है, विरहरूपी दर्जी उसमें कतर-ब्योंत कर रहा है। हे भौंरे सुनो, कृष्णके बिना कामदेव हमारे प्राणोंका ग्राहक हो रहा है।

जोग-कथा पठई ब्रजको, सब सो सठ चेरी की चाल चलाकी।
ऊधो जू! क्यों न कहै कुबरी जो बरी नट-नागर हेरि हलाकी॥
जाहि लगै पर जानै सोई, 'तुलसी' सो सुहागिनि नंदलला की।
जानी है जानपनी हरि की अब बाँधियैगी कछु मोटि कलाकी॥१३४॥

शब्दार्थ—सठ चेरी = दुष्ट दासी, कुब्जा। बरी = वरण किया, व्याहा। नट-नागर = चतुर खेलाड़ी, श्रीकृष्ण। हेरि = देखकर। हलाकी = घातक। मोटि = गठरी।

भावार्थ—हे उद्धव! श्रीकृष्णने ब्रजके लिए योगका जो सन्देशा भेजा है वह सब दुष्टादासी कुब्जाकी चालाकीसे भरी चाल है। वह कुबड़ी ऐसा क्यों न करेगी जिसने चतुर खेलाड़ी और घातक श्रीकृष्णको देखकर उनके साथ व्याह कर लिया। परन्तु जिसपर बीतती है वही दूसरेका दुःख दर्द जानता है। वह तो श्रीकृष्णकी सौभाग्यवती है (वियोग-व्यथाको क्या समझेगी)। अब हमलोगोंने श्रीकृष्णके ज्ञानको समझ लिया (कि वह कुबड़ी पीठपर ही रीझते हैं) इसलिए हमलोग भी चतुराईसे अपनी पीठपर कुछ गठरी बाँध लेंगी (जिसमें श्रीकृष्ण कुबड़ी समझकर हमलोगोंपर रीझें)।

(कवित्त)

पठयो है छपद छबीले कान्ह कैहूँ कहूँ
खोजि कै खवास खासो कूबरी-सी बाल को।

ज्ञान को गढ़ैया, विनु गिरा को पढ़ैया, बार-
खाल को कढ़ैया, सो बढ़ैया उर साल को ॥
प्रीति को बधिक, रसरीति को अधिक, नीति-
निपुन, विवेक है, निदेस देसकाल को।
'तुलसी' कहे न बनै सहे ही बनैगी सब,
जोग भयो जोग को, बियोग नंदलाल को ॥१३५॥

शब्दार्थ—छपद = भौंरा। कैहूँ = किसी तरहसे। खवास = सेवक। खासो = अच्छा। बाल = बाला। बार-खालको कढ़ैया = बालकी खाल खींचनेवाला। साल = पीड़ा।

भावार्थ—छबीले श्रीकृष्णने किसी तरह कहींसे ढूँढ़कर कुबरी जैसी स्त्रीके अच्छे सेवकको भौंरा बनाकर भेजा है। वह भौंरा ज्ञानकी बातें गढ़नेवाला, बिना वाणीके ही बोलनेवाला, बालकी खाल खींचनेवाला और हृदयमें पीड़ाको बढ़ानेवाला है। वह प्रेमकी हत्या करनेवाला, शृंगार-रसके लिए हत्यारेसे भी बढ़कर, नीतिमें चतुर तथा ज्ञानी है। देश और कालके अनुसार ठीक ही है। तुलसीदासजी कहते हैं कि अब कुछ कहते नहीं बनता, सब सहना ही पड़ेगा। श्रीकृष्णके वियोगसे अब योगका अवसर आ ही गया।

हनूमान है कृपालु, लाड़िले लखन लाल,
भावते भरत कोजै सेवक सहाय जू।
बिनती करत दीन दूबरो दयावनो सो,
बिगरे तें आपु ही सुधारि लीजै भाय जू ॥
मेरी साहिबिनी सदा सीस पर बिलसति,

देवि ! क्यों न दास को दिखाइयत पाँय जू ।
खीझहू में रीझिबे की बानि, राम रीझत हैं,
रीझे ह्वैहैं राम की दुहाई रघुराय जू ॥१३६॥

शब्दार्थ—भावते = प्रिय । बिलसति = विशेष रूपसे सुशोभित है ।

भावार्थ—हे हनुमानजी, हे लाड़ले लखनलाल, हे प्रिय भरतजी, आपलोग कृपालु होकर इस सेवककी सहायता कीजिये। भैया ! यह दीन, दुर्बल और दयाका पात्र आपसे प्रार्थना करता है, बिगड़ी बातोंको आप ही सुधार लीजिये। हे मेरी स्वामिनी सीताजी, आप सदैव मेरे सिरपर विशेष रूपसे सुशोभित हैं। हे देवि ! आप इस दासको अपने चरणोंका दर्शन क्यों नहीं करातीं ? क्रोधमें भी रामजीकी प्रसन्न होनेकी आदत है। वह प्रसन्न होते ही हैं। मैं रामकी दुहाई देकर कहता हूँ कि वह प्रसन्न हुए होंगे।

(सवैया)

वेष बिराग को, राग भरो मनु, माय ! कहौं सतिभाय हौं तोसों ।
तेरे ही नाथ को नाम लै बेचिहौं पातकी पामर प्राननि पोसों ॥
एते बड़े अपराधी अघी कहूँ, तैं कहुँ अंब ! कि मेरो तू मोसों ।
स्वारथ को परमारथको परि पूरन भो फिरि घाटि न होसों ॥१३७॥

शब्दार्थ—पातकी = पापी । पामर = नीच । पोसों = पालता हूँ ।

भावार्थ—हे माता, मैं आपसे शुद्ध मनसे कहता हूँ कि मेरा वेष तो वैरागियोंका है, पर मेरा मन राग (सांसारिक सुखोंकी

आकांक्षा) से भरा हुआ है। मैं पापी और नीच आपहीके स्वामीका नाम बेचकर अपने प्राणोंकी रक्षा करता हूँ। हे माता, इतने बड़े अपराधी और पापीके लिए आप कह दीजिये कि 'तू मेरा है'। इतनेहीसे मुझे लौकिक और पारलौकिक सब सुख पूर्ण रूपसे प्राप्त हो जायँगे—फिर किसी बातकी कमी न रह जायगी।

(कवित्त)

जहाँ बालमीकि भए ब्याध ते मुनींद्र साधु,
'मरा-मरा' जपे सुनि सिष ऋषि सात की।
सीय को निवास लव-कुस को जनमथल,
'तुलसी' छुवत छाँह ताप गरै गात की॥
बिटप-महीप सुरसरित-समीप सोहैं
सीताबट पेखत पुनीत होत पातकी।
बारिपुर दिगपुर बीच बिलसति भूमि,
अंकित जो जानकी-चरन-जलजात की॥१३८॥

शब्दार्थ—सिष = शिक्षा। सीताबट = बरगदका वह वृक्ष जहाँ सीताजी रही थीं। पेखत = देखते ही। बारिपुर, दिगपुर = ये गाँवोंके नाम हैं। जलजात = कमल।

भावार्थ—जहाँपर सप्तर्षियोंकी शिक्षा सुनकर वाल्मीकि 'मरा-मरा' जपकर बहेलियेसे साधु होकर मुनियोंमें सर्वश्रेष्ठ हो गये, जो सीताजीका निवास-स्थान और लव-कुशका जन्मस्थल है, जिसकी छायाका स्पर्श करते ही शारीरिक कष्ट जल जाते हैं, जहाँ गंगाके तटपर वृक्षोंका राजा सीताबट सुशोभित है, जिसे

देखते ही पापीलोग पवित्र हो जाते हैं, वह स्थान (सीतामढ़ी) वारिपुर और दिगपुर (जिसे आजकल दीघी या दिघवट कहते हैं और जो गंगाके तटपर भीटी स्टेशनके पास है) के बीच सुशोभित है, जहाँपर सीताजीके चरण-कमल चिह्नित हैं।

मरकत बरन परन, फल मानिक से,
लसै जटाजूट जनु रूख बेष हरु है।
सुषमा को ढेरु, कैधौं सुकृत सुमेरु कैधौं
संपदा सकल मुद-मंगल को घरु है॥
सुरसरि निकट सोहावनी अवनि सोहै,
राम-रमनी को बट कलि कामतरु है॥१३९॥

शब्दार्थ—मरकत = नीलम। परन (पर्ण) = पत्ता। हरु = शिवजी। अभिमत = मनवांछित। काको = किसका। थरु = स्थान।

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि (सीतावटके) पत्ते नीलमके रंगके हैं और फल माणिकके समान (लाल) हैं; जटाएँ ऐसी सुशोभित हैं मानों वृक्षके वेषमें शिवजी हैं। वह वृक्ष शोभाकी ढेर है अथवा पुण्यका सुमेरु है या सारी सम्प्रदाओं तथा आनन्द-मंगलका घर है। प्रेम-पूर्वक इसकी सेवा करनेसे यह मनवांछित फल देता है। तुलसीदास कहते हैं कि विश्वास मानिये, यह स्थान किसका है। गंगातटकी सुहावनी भूमिपर सुशोभित सीतावट कलियुगमें कल्पवृक्ष है।

देवधुनी पास मुनिवास सी-निवास जहाँ,
प्राकृत हूँ बट बूट बसत पुरारि हैं।
जोग जप जाग को बिराग को पुनीत पीठ,

रागिन पै सीठि डीठि बाहरी निहारि हैं ।
'आयसु,' 'आदेस,' 'बाबा,' 'भलो भलो' 'भावसिद्ध',
'तुलसी' बिचारि जोगी कहत पुकारि हैं ।
राम भगतन को तौ कामतरु तें अधिक,
सिय-बट सेए करतल फल चारि हैं ॥१४०॥

शब्दार्थ—देवधुनी = गंगाजी। सी = सीताजी। बूट = वृक्ष। पुरारि = शिवजी। पीठ = स्थान। सीठि = निस्सार।

भावार्थ—जब कि साधारण वट-वृक्ष भी शिवजीका निवास-स्थान माना जाता है तो फिर जो वट वृक्ष गंगाके तटपर है (जिसके नीचे) मुनि (बाल्मीकि) निवास करते हैं और जहाँ सीताका निवास स्थान है (उसका क्या कहना है)। वह योग, जप, यज्ञ और वैराग्यके लिए पवित्र स्थान है किन्तु सांसारिक विषयोंके प्रेमी जो उसे बाहरी दृष्टिसे देखेंगे, उनके लिए वह निस्सार है। वहाँ रहनेवाले योगी आपसमें 'आयसु' 'आदेश' 'बाबा' 'भलो भलो' 'भावसिद्ध' आदि शिष्ट शब्दोंका व्यवहार करते हैं। भगवद्भक्तोंके लिए तो वह कल्पवृक्षसे भी अधिक है क्योंकि सीतावटकी सेवा करनेसे अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारो फल हाथमें हैं किन्तु कल्पवृक्ष अर्थ, धर्म और काम तीन ही फल देता है।

जहाँ बन पावनो, सुहावनो बिहंग-मृग,
देखि अति लागत अनंद खेत-खूँट-सो।
सीताराम-लखन-निवास, बास मुनिन को,
सिद्ध-साधु-साधक सबै बिबेक बूट सो ॥

झरना झरत झारि सीतल पुनीत बारि,
मंदाकिनी मंजुल महेस जटाजूट सो।
'तुलसी' जौ राम सों सनेह साँचो चाहिए,
तौ सेइए सनेह सों बिचित्र चित्रकूट सो ॥१४१॥

शब्दार्थ—विहंग = पक्षी ।

भावार्थ—(चित्रकूटमें) जहाँ पवित्र वन है, सुन्दर पक्षी और हरिण हैं, जिस स्थानको खेत-बारीके समान हरा-भरा देखकर हृदय आनन्दित होता है, जहाँ सीता, राम और लक्ष्मण रहते हैं जो मुनियोंका निवास-स्थान है, जो सिद्ध, साधु, साधक सबके लिए ज्ञानका वृक्ष है, जहाँ शीतल और पवित्र जलका झरना झरता है, जहाँ शिवजीकी जटासे निकली हुई मन्दाकिनी सुशोभित है, तुलसीदासजी कहते हैं कि यदि श्रीरामजीसे सच्चा स्नेह चाहते हो तो प्रेम-पूर्वक चित्रकूटका सेवन करो।

मोह-बन कलिमल-पल-पीन जानि जिय,
साधु जाय विप्रन के भय को नेवारि है।
दीन्हो है रजाइ राम, पाइ सो सहाइ लाल,
लखन समर्थ बीर हेरि हेरि मारिहै ॥
मंदाकिनी मंजुल कमान असि, बान जहाँ
बारि-धार, धरि धरि सुकर सुधारि है।
चित्रकूट अचल अहेरी बैठ्यो घात मानो,
पातक के ब्रात घोर सावज सँहारिहै ॥१४२॥

शब्दार्थ—पल = मांस । पीन = पुष्ट । नेवारिहै = टालेगा । सुकर = अपने हाथसे । सावज = सौंजा, शिकार ।

भावार्थ—मोहरूपी वनमें कलियुगके पापोंको हृष्ट-पुष्ट जानकर साधु, गाय और ब्राह्मणोंके भयको दूर करेगा। इसके लिए रामचन्द्रजीने आज्ञा दी है। वह समर्थ वीर लक्ष्मणजीकी सहायता पाकर पापोंको देख देखकर मारेगा। वहाँ चित्रकूट पर्वत शिकारीकी तरह घातमें बैठा है। वह मन्दकिनी रूपी धनुप और उसकी जलधारा रूपी वाणको धीरतापूर्वक धारण करके पापोंके समूह रूपी जंगली जानवरोंका शिकार करेगा।

अलंकार—रूपक।

(सवैया)

लागि दवारि पहार ठही, लहकी कपि लंक जथा खर-खौकी।
चारु चुवा चहुँ ओर चलैं, लपटैं झपटैं सो तमीचर तौंकी॥
क्यों कहि जाति महा सुषमा, उपमा तकि ताकत है कवि कौकी।
मानों लसो 'तुलसी' हनुमान-हिये जगजीति जराय की चौकी।१४३॥

शब्दार्थ—दवारि = आग। ठही = अच्छी तरह। खर-खौकी = तृण खानेवाली, आग। चुवा = चौपाये। तमीचर = राक्षस। तौंकी = तपकर। कौकी = कबकी, कितनी देरसे। जराय = जड़ाऊ।

भावार्थ—(इस सवैयामें गोस्वामीजीने अपने सामने चित्रकूटमें हनुमानधाराके समीप जो आग लगी थी उसका वर्णन किया है) पहाड़में दावाग्नि अच्छी तरहसे ऐसी लगी मानों हनुमानजीने लंकामें आग लगा दी है। चारों ओर सुन्दर जानवर इस प्रकार भाग रहे हैं मानों राक्षस (लंकामें) आगकी लपटोंसे झुलसकर भागे जा रहे हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि

उस समयकी महान शोभाका वर्णन कैसे किया जा सकता है। उसकी उपमाके लिए कवि बहुत देरसे हैरान है। वह ऐसी जान पड़ती है मानो संसारभरमें विजयी होनेके कारण हनुमानजीकी छातीपर जड़ाऊ चौकी सुशोभित है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

देव कहैं अपनी-अपना अवलोकन तीरथराज चलो रे।
देखि मिटैं अपराध अगाध, निमज्जत साधु समाज भलो रे॥
सोहै सितासित को मिलिबो, 'तुलसी' हुलसै हिय हेरि हलोरे।
मानो हरे तृन चारु चरैं बगरे सुरधेनु के धौल कलोरे॥१४४॥

शब्दार्थ—अपनी-अपना = परस्पर। निमज्जत = स्नान करता है। सितासित (सित + असित) सफेद और काला अर्थात् गंगा और यमुना। कलोरे = बछड़े।

भावार्थ—देवतालोग आपसमें कहते हैं कि तीर्थराज प्रयागको देखने चलो। तीर्थराजको देखनेसे अगाध पाप मिट जाते हैं। वहाँपर अच्छे साधुओंका समाज स्नान करता है। तुलसीदासजी कहते हैं कि वहाँ गंगा और यमुनाका मिलना बड़ा अच्छा लगता है, हिलोरोंको देखकर हृदय प्रसन्न हो जाता है। (यमुनाके ऊपर गंगाकी धारा ऐसी प्रतीत होती है) मानो फैले हुए कामधेनुके सफेद सफेद बछड़े हरी हरी घास चर रहे हैं।

देवनदी कहँ जो जन जान किए मनसा, कुल-कोटि उधारे।
देखि चले, झगरैं सुरनारि, सुरेस बनाइ बिमान सँवारे॥
पूजा को साज बिरंचि रचैं, 'तुलसी' जे महातम जाननहारे।
ओक की नींव परी हरिलोक बिलोकत गंग तरंग तिहारे॥१४५॥

शब्दार्थ—मानस = इच्छा। सुरनारि = देवताओंकी स्त्रियाँ। सुरेस = इन्द्र। विरंचि = ब्रह्मा। ओक = घर।

भावार्थ—गंगा-स्नानके लिए ज्यों ही कोई इच्छा करता है त्यों ही उसकी अगणित पीढ़ियाँ तर जाती हैं। ऐसे मनुष्यको स्नान करनेके लिए चलते देखकर देवांगनाएँ आपसमें झगड़ने लगती हैं और इन्द्र उस मनुष्यका दर्शन करनेके लिए विमान सजाने लगते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि गंगा माहात्म्यको जाननेवाले ब्रह्मा पूजाकी सामग्री जुटाने लगते हैं। हे गंगे, आपकी तरंगोंको देखते ही (देखनेवालेके लिए) स्वर्गमें मकानकी नींव पड़ जाती है।

ब्रह्म जो व्यापक वेद कहैं, गम नाहिं गिरा गुन-ज्ञान गुनी को।
जो करता भरता हरता सुर-साहिब, साहिब दीन दुनी को॥
सोइ भयो द्रवरूप सही जु है नाथ बिरंचि महेस मुनी को।
मानि प्रतीति सदा 'तुलसी' जल काहे न सेवत देवधुनी को॥१४९॥

शब्दार्थ—गम = पहुँच। गिरा = सरस्वती। द्रव = जल।

भावार्थ—जिस ब्रह्मको वेद सर्वव्यापी कहते हैं जिसके गुण और ज्ञानतक सरस्वती तथा गुणियोंकी भी पहुँच नहीं है, जो संसारका सृजन करनेवाला, भरण-पोषण करनेवाला तथा संहार करनेवाला है, देवताओंका स्वामी और धर्म तथा संसारका अधिपति है, जो ब्रह्मा, शिव और मुनियोंका नाथ है, वही ब्रह्म जलरूप हुआ है। तुलसीदासजी कहते हैं कि ऐसा विश्वास करके गंगाजीका सेवन क्यों नहीं करता?

उस समयकी महान शोभाका वर्णन कैसे किया जा सकता है। उसकी उपमाके लिए कवि बहुत देरसे हैरान है। वह ऐसी जान पड़ती है मानो संसारभरमें विजयी होनेके कारण हनु-मानजीकी छातीपर जड़ाऊ चौकी सुशोभित है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

देव कहैं अपनी-अपना अवलोकन तीरथराज चलो रे।
देखि मिटैं अपराध अगाध, निमज्जत साधु समाज भलो रे॥
सोहै सितासित को मिलिवो, 'तुलसी' हुलसै हिय हेरि हलोरे।
मानो हरे तृन चारु चरैं बगरे सुरधेनु के धौल कलोरे॥१४४॥

शब्दार्थ—अपनी-अपना = परस्पर। निमज्जत = स्नान करता है। सितासित (सित + असित) सफेद और काला अर्थात् गंगा और यमुना। कलोरे = बछड़े।

भावार्थ—देवतालोग आपसमें कहते हैं कि तीर्थराज प्रयाग-को देखने चलो। तीर्थराजको देखनेसे अगाध पाप मिट जाते हैं। वहाँपर अच्छे साधुओंका समाज स्नान करता है। तुलसी-दासजी कहते हैं कि वहाँ गंगा और यमुनाका मिलना बड़ा अच्छा लगता है, हिलोरोंको देखकर हृदय प्रसन्न हो जाता है। (यमुनाके ऊपर गंगाकी धारा ऐसी प्रतीत होती है) मानो फैले हुए कामधेनुके सफेद सफेद बछड़े हरी हरी घास चर रहे हैं।

देवनदी कहँ जो जन जान किए मनसा, कुल-कोटि उधारे।
देखि चले, झगरैं सुरनारि, सुरेस बनाइ विमान सँवारे॥
पूजा को साज विरंचि रचैं, 'तुलसी' जे महातम जाननहारे।
ओक की नींव परी हरिलोक विलोकत गंग तरंग तिहारे॥१४५॥

शब्दार्थ—मानस = इच्छा । सुरनारि = देवताओंकी स्त्रियाँ। सुरेस = इन्द्र । विरंचि = ब्रह्मा । ओक = घर ।

भावार्थ—गंगा-स्नानके लिए ज्यों ही कोई इच्छा करता है त्यों ही उसकी अगणित पीढ़ियाँ तर जाती हैं। ऐसे मनुष्यको स्नान करनेके लिए चलते देखकर देवांगनाएँ आपसमें झगड़ने लगती हैं और इन्द्र उस मनुष्यका दर्शन करनेके लिए विमान सजाने लगते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि गंगा माहात्म्यको जाननेवाले ब्रह्मा पूजाकी सामग्री जुटाने लगते हैं। हे गंगे, आपकी तरंगोंको देखते ही (देखनेवालेके लिए) स्वर्गमें मकानकी नींव पड़ जाती है।

ब्रह्म जो व्यापक वेद कहैं, गम नाहिं गिरा गुन-ज्ञान गुनी को ।
जो करता भरता हरता सुर-साहिब, साहिब दीन दुनी को ॥
सोइ भयो द्रवरूप सही जु है नाथ विरंचि महेस मुनी को ।
मानि प्रतीति सदा 'तुलसी' जल काहे न सेवत देवधुनी को ॥१४६॥

शब्दार्थ—गम = पहुँच । गिरा = सरस्वती । द्रव = जल ।

भावार्थ—जिस ब्रह्मको वेद सर्वव्यापी कहते हैं जिसके गुण और ज्ञानतक सरस्वती तथा गुणियोंकी भी पहुँच नहीं है, जो संसारका सृजन करनेवाला, भरण-पोषण करनेवाला तथा संहार करनेवाला है, देवताओंका स्वामी और धर्म तथा संसारका अधिपति है, जो ब्रह्मा, शिव और मुनियोंका नाथ है, वही ब्रह्म जलरूप हुआ है। तुलसीदासजी कहते हैं कि ऐसा विश्वास करके गंगाजीका सेवन क्यों नहीं करता ?

बारि तिहारो निहारि मुरारि भए परसे पद पाप लहौंगो।
ईस ह्वै सीस धरौं पै डरौं, प्रभु की समता बड़ दोष दहौंगो॥
बरु बारहिं बार सरीर धरौं, रघुबीर को ह्वै तव तीर रहौंगो।
भागीरथी! बिनवौं करजोरि, बहोरि न खोरि लगै सो कहौंगो॥१४७॥

शब्दार्थ—बारि = जल। लहौंगो = पाऊँगा। ईस = शिवजी। खोरि = दोष।

भावार्थ—हे गंगे, आपका जल ब्रह्म स्वरूप है; विष्णुके चरणोंसे उत्पन्न होनेके कारण यदि मैं आपको अपने पैरोंसे स्पर्श करूँगा तो मैं पापी बनूँगा। शिवजीके समान मैं आपको सिरपर धारण करनेमें भी डरता हूँ क्योंकि प्रभुकी बराबरी करनेके भारी पापसे गल जाऊँगा। चाहे मुझे बारबार शरीर धारण करना पड़े पर मैं रामजीका होकर आपके तटपर रहूँगा। हे गंगे, मैं हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ कि मैं वही बात कहूँगा जिससे मुझे फिर दोष न लगे।

कवित्त

लालची ललात, बिललात द्वार-द्वार दीन,
बदन मलीन, मन मिटै न बिसूरना।
ताकत सराधकै बिवाह, कै उछाह कछू,
डोलै लोल बूझत सबद ढोल तूरना॥
प्यासेहू न पावै बारि, भूखे न चनक चारि,
चाहत अहारन पहार, दारि कूरना।
सोक को अगार दुख-भार-भरो तौ लौं जन,
जौ लौं देवी द्रवै न भवानी अन्नपूरना॥१४८॥

शब्दार्थ—बिसूरना = सोचसे सिसकना। लोल = चंचल। तूरना = तुरही।

भावार्थ—लालची मनुष्य लालायित और दीन होकर द्वार-द्वार विललाता फिरता है; उसका मुख उदास रहता है और मनसे चिन्ता दूर नहीं होती। वह देखता रहता है कि कहींपर श्राद्ध, विवाह या और कोई उत्सव तो नहीं हो रहा है; ढोल और तुरहीके शब्द सुनकर चंचल होकर घूमता हुआ पूछता फिरता है (कि यहाँ कोई उत्सव तो नहीं हो रहा है)। प्यासा रहनेपर भी उसे जल नहीं मिलता और भूख लगनेपर चार दाना चना नहीं मिलता। वह भोजनका पहाड़ चाहता है पर मिलता उसे दालका कूरा (ढेर) भी नहीं। ऐसा मनुष्य तभीतक शोकका घर और दुखके बोझसे लदा रहता है जबतक भवानी अन्नपूर्णा उसपर कृपा नहीं करतीं।

(छप्पय)

भस्म अंग, मर्दन-अनंग, संतत असंग हर।
सीस गंग गिरिजा अधंग, भूषन भुजंगवर॥
मुंडमाल, बिधु-बाल भाल, डमरू कपाल कर।
विबुध-बृंद-नवकुमुद-चंद, सुखकंद सूलधर॥
त्रिपुरारि त्रिलोचन दिग्-बसन, बिष-भोजन भव-भय-हरन।
कह 'तुलसिदास' सेवत सुलभ, सिव सिव सिव संकर सरन॥१४९॥

शब्दार्थ—मर्दन = नष्ट करनेवाले। अनंग = कामदेव। संतत = सदैव। हर = शिवजी। भुजंग = सर्प। बिधु-बाल = दूजके चन्द्रमा। दिग्बसन = नंगे।

भावार्थ—शिवजी शरीरमें भस्म लगाये हुए, कामदेवको नष्ट करनेवाले, सदैव निःसंगी सिरपर गंगाजीको और आधे अंगमें पार्वतीजीको धारण किये हुए सर्पराजको आभूषण बनाये हुए, नरमुंडकी माला पहने हुए, द्वितीयाके चन्द्रमाको ललाटपर धारण किये हुए, डमरू और खप्पर हाथमें लिये हुए देवताओंके समूह रूपी कुमुदको प्रफुल्लित करनेके लिए चन्द्रमाके समान हैं। वह सुखके मूल और त्रिसूलको धारण करनेवाले हैं। वह त्रिपुर दैत्यके शत्रु, तीन नेत्रवाले, नंगे रहनेवाले, विष पान करनेवाले और संसारके भयको दूर करनेवाले हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि वह सेवा करनेमें सुलभ हैं; मैं ऐसे कल्याणकारी शिवजीकी शरणमें हूँ।

गरल-असन, दिग्वसन, व्यसन-भंजन, जन-रंजन।
कुंद-इंदु-कर्पूर-गौर, सच्चिदानन्द-घन॥
विकट वेष, उर सेष, सीस सुरसरित सहज सुचि।
सिव, अकाम, अभिराम धाम, नित रामनाम रुचि॥
कंदर्प-दर्प-दुर्गम-दवन, उमारवन गुन भवन हर।
तुलसीस त्रिलोचन, त्रिगुन-पर, त्रिपुर-मथन, जय त्रिदसवर॥१५०॥

शब्दार्थ—गरल = विष। असन = भोजन। व्यसन = बुरी आदत। कंदर्प = कामदेव। दर्प = अभिमान। त्रिगुन-पर = तीनों गुणों (सत्त्व, रज, तम) से परे। त्रिदसवर = देवताओंमें श्रेष्ठ।

भावार्थ—विष खानेवाले, दिगम्बर (नंगे), व्यसनोंको नष्ट करनेवाले, भक्तोंको प्रसन्न करनेवाले, कुन्द पुष्प, चन्द्रमा एवं

कपूरके समान गौर, सत्, चित् तथा आनन्दके समूह, विकट वेषवाले, छातीपर सर्पको धारण करनेवाले, सिरपर स्वभावसे ही पवित्र गंगाको धारण करनेवाले, कल्याणकारी, इच्छा-रहित, आनन्दके घर, राम-नाममें नित्य प्रेम रखनेवाले, कामदेवके कठिन अभिमानको चूर्ण करनेवाले, पार्वतीके पति, गुणोंके घर, तुलसीके स्वामी, तीन नेत्रवाले, सत्त्व, रज, तम तीनों गुणोंसे परे, त्रिपुरको मारनेवाले देवताओंमें श्रेष्ठ शिवजीकी जय हो।

अर्ध-अंग अंगना, नाम जोगीस जोगपति।
विषय असन, दिगवसन, नाम बिस्वेस बिस्वगति॥
कर कपाल, सिर माल ब्याल, विष भूति बिभूषन।
नाम सुद्ध, अविरुद्ध, अमर, अनवद्य, अदूषन॥
बिकराल भूत-बैताल-प्रिय, भीम नाम भव-भय-दमन।
सब बिधि समर्थ, महिमा अकथ, 'तुलसिदास' संसय-समन॥१५१॥

शब्दार्थ—अंगना = स्त्री। बिस्वगति = संसारका उद्धार करनेवाले। अनवद्य = प्रशंसनीय। अदूषन = दोष-रहित। भीम = भयंकर।

भावार्थ—शिवजीके अर्द्धांगमें स्त्री विराजमान है, पर उनका नाम योगीश और योगपति है। वह भाँग धतूरा आदि-विषम पदार्थोंका भोजन करते हैं और नंगे रहते हैं फिर भी उनका नाम विश्वेश्वर और संसार-उद्धारक है। वह हाथमें ख़प्पर, सिरपर सर्पोंकी माला तथा विष और भस्मका आभूषण धारण किये हुए हैं, फिर भी उनका नाम शुद्ध है। उनका कोई विरोधी नहीं है। वह अमर, प्रशंसनीय और दोष-रहित हैं। भयंकर भूत

और वैताल उनको प्रिय हैं, उनका नाम भयंकर है फिर भी वह संसार-भयको दूर करनेवाले हैं। वह हर तरहसे सामर्थ्यवान हैं, उनकी महिमा अपरम्पार है और वह तुलसीदासके संशयको हरनेवाले हैं।

भूतनाथ भयहरन, भीम भय भवन भूमिधर।
भानुमंत, भगवंत, भूति भूपन भुजंग वर॥
भव्य, भाव-वल्लभ, भवेस भव-भार-विभंजन।
भूरि-भोग, भैरव, कुजोग-गंजन, जनरंजन॥
भारती-वदन विष-अदन सिव, ससि-पतंग-पावक नयन।
कह 'तुलसिदास' किन भजसि मन, भद्रसदन मर्दन-मयन॥१५२॥

शब्दार्थ—भानुमंत = प्रकाशमान। भव्य = सुन्दर, पवित्र। वल्लभ = प्रिय। भूरि = बहुत। कुजोग-गंजन = दुर्भाग्यको मिटानेवाले। भारती = सरस्वती। पतंग = सूर्य। भद्रसदन = कल्याणके घर।

भावार्थ—शिवजी भूतोंके स्वामी, भयको दूर करनेवाले, भयंकर, भयके घर, पृथिवीको धारण करनेवाले, प्रकाशमान, ऐश्वर्यवान, विभूति तथा सर्पका आभूषण धारण करनेवाले हैं। वह पवित्र भावोंके प्रेमी हैं, संसारके स्वामी और संसारके भारको उतारनेवाले हैं। वह अनेक भोगोंको भोगनेवाले, भैरव, दुर्भाग्यको मिटानेवाले तथा भक्तोंको प्रसन्न करनेवाले हैं। शिवजीके मुखमें सरस्वती निवास करती हैं, वह विष खानेवाले हैं, चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि उनके नेत्र हैं। तुलसीदासजी

कहते हैं कि हे मन, ऐसे कल्याणके घर, कामदेवको नष्ट करनेवाले शिवजीका भजन क्यों नहीं करता ?

(सवैया)

नाँगो फिरै, कहै माँगनो देखि 'न खाँगो कछू, जनि माँगिए थोरो'।
राँकनि नाकप रीझि करै, 'तुलसी' जग जो जुरै जाचक जोरो ॥
'नाक सँवारत आयो हौं नाकहि, नाहिं पिनाकिहिं नेकु निहोरो'।
ब्रह्म कहै 'गिरिजा! सिखवौ, पति रावरो दानि है बावरो भोरो ॥१५३॥

शब्दार्थ—खाँगो = कमी। राँकनि = भिखारियों। नाकप = इन्द्र। नाक = स्वर्ग। पिनाकिहिं = शिवजीको। नेकु = जरा भी।

भावार्थ—ब्रह्माजी पार्वतीजीसे कहते हैं कि आपके पति पागल, भोलेभाले और दानी हैं उन्हें समझाइये। वह नंगे होकर घूमते हैं और भिखमंगोंको देखकर कहते हैं कि मेरे पास किसी वस्तुकी कमी नहीं है, थोड़ा न माँगो। संसारमें जितने माँगनेवाले मिलते हैं, सबको एकत्र करते हैं और उनपर प्रसन्न होकर उन्हें इन्द्रके समान बना देते हैं। स्वर्ग बनाते बनाते मेरी नाकमें दम आ गया है, पर शिवजी इसका जरा भी एहसान नहीं मानते।

विष-पावक व्याल कराल जरे, सरनागत तौ तिहुँ ताप न डाढ़े।
भूत बैताल सखा, भव नाम, दलै पल में भव के भय गाढ़े ॥
तुलसीस दरिद्र सिरोमनि सो सुमिरे दुख दारिद होहिं न ठाढ़े।
भौनमें भाँग, धतूरोई आँगन, नाँगे के आगे हैं माँगने बाढ़े ॥१५४॥

शब्दार्थ—डाढ़े = दग्ध। भव = शिवजीका नाम। भव = संसार।

भावार्थ—शिवजीके कंठमें हलाहल विष, नेत्रोंमें अग्नि

और गलेमें भयानक सर्प हैं, फिर भी उनकी शरणमें आये हुए लोग दैहिक, दैविक, भौतिक तीनों तापोंसे दग्ध नहीं होते। भूत और वैताल उनके सखा हैं, उनका नाम भव है और वह पल भरमें संसारके कठिन भयका नाश कर देते हैं। तुलसीके स्वामी (देखनेमें) दरिद्रोंके शिरोमणि हैं, किन्तु उनका स्मरण करनेसे दुःख और दारिद्र्य नहीं टिकते। उनके घरमें भाँग और आँगनमें धतूरा है, फिर भी उस नंगेके सामने मंगनोंकी संख्या बढ़ी रहती है।

सीस बसै बरदा, बरदानि, चढ्यौ बरदा, घरन्यौ बरदा है।
धाम धतूरो विभूति को कूरो, निवास तहाँ सब लै मरे दाहै॥
व्याली कपाली है ख्याली, चहूँ दिसि भाँग की टाटिनको परदा है।
राँक-सिरोमनि काकिनि भाग विलोकत लोकप को करदा है॥१५५॥

शब्दार्थ—बरदा = गंगाजी, बैल, वर देनेवाली। घरन्यौ = गृहिणी भी। सब (शव) = मुर्दा। ख्याली = कौतुकी। काकिनि = कौड़ी। करदा = धूल, तुच्छ।

भावार्थ—शिवजीके सिरपर गंगाजी हैं, वह वरदान देनेवाले हैं, बैलकी सवारी करते हैं, उनकी स्त्री पार्वती भी वरदायिनी हैं। उनके घरमें धतूरे और भस्म की ढेर लगी हुई है, जहाँ मुर्दे जलाये जाते हैं वहींपर वह निवास करते हैं। वह सर्पों और खप्परोंको धारण करनेवाले तथा कौतुकी हैं, उनके चारों ओर भाँगकी टट्टियोंके परदे लगे हुए हैं। जो परम दरिद्र है, जिसके भाग्यमें कौड़ी लिखी है, शिवजीकी दृष्टि पड़ते ही उसके सामने लोकपाल क्या चीज हैं? वे भी उसके सामने तुच्छ हैं।

दानी जो चारि पदारथ को त्रिपुरारि तिहूँपुर में सिर-टीको।
भोरो भलो, भले भाय को भूखो भलेई कियो सुमिरे 'तुलसी' को॥
ता बिनु आस को दास भयो, कबहूँ न मिट्यो लघु लालच जीको।
साधो कहा करि साधन हैं जो पै राधो नहीं पति पारबतीको॥१५६॥

शब्दार्थ—टीको = तिलक, शिरोमणि। राधो = आराधना की।

भावार्थ—जो शिवजी अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारों पदार्थ देनेवाले हैं, तीनों लोकोंमें शिरोमणि हैं, अत्यन्त भोले-भाले और सच्ची भक्तिके चाहनेवाले हैं, जिन्होंने स्मरण करनेमात्रसे तुलसीदासकी भलाईहीकी, उन्हें छोड़कर तू आशाओंका दास हुआ और कभी भी तेरे दिलका लोभ जरा भी कम नहीं हुआ। तूने साधनासे क्या साध लिया यदि पार्वतीके पति शिवजीको आराधना नहीं की।

जात जरे सब लोक विलोकि त्रिलोचन सो विष लोकि लियो है।
पान कियो विष, भूषन भो, करुना-वरुनालय साँई हियो है॥
मेरोई फोरिबे जोग कपार, किधौं कछु काहू लखाय दियो है।
काहे न कान करौ बिनती 'तुलसी' कलिकाल बिहाल कियो है॥१५७॥

शब्दार्थ—लोकि लियो = ऊपर ही ऊपर ले लिया। वरुनालय = (वरुणका स्थान) समुद्र।

भावार्थ—सब लोकोंको हलाहल विषसे जलते हुए देखकर शिवजीने उस विषको ग्रहण कर लिया और पी गये जोकि उनके गलेका आभूषण हो गया। स्वामीका हृदय करुणाका समुद्र है। मेरा ही सिर फोड़ने योग्य है, अथवा किसीने आपको मेरा अपराध दिखा दिया है। तुलसीदासजी कहते हैं कि हे शिवजी,

आप मेरी प्रर्थनापर ध्यान क्यों नहीं देते ? कलियुगने मुझे बेचैन कर दिया है।

कविता

खायो कालकूट, भयो अजर अमर तनु,
भवन मसान, गथ गाँठरी गरद की।
डमरू कपाल कर, भूषन कराल व्याल,
बावरे बड़े की रीझ वाहन बरद की॥
'तुलसी' बिसाल गोरे गात बिलसति भूति,
मानो हिमगिरि चारु चाँदनी सरद की।
अर्थ धर्म काम मोक्ष बसत बिलोकनि में,
कासी करामाति जोगी जागत मरद की॥१५८॥

शब्दार्थ—गथ = सम्पत्ति। गरद = गर्दा, धूल, भस्म।

भावार्थ—शिवजीने हलाहल विष खा लिया इससे उनका शरीर अजर और अमर हो गया। उनका घर श्मशान है, भस्मकी गठरी ही उनकी सम्पत्ति है। उनके हाथमें डमरू और खप्पर है, भयंकर सर्प उनका आभूषण है। वह बड़े पागल हैं, यह रीझे भी तो बैलको अपना वाहन बनाया। तुलसीदासजी कहते हैं कि उनके गोरे और विशाल शरीरपर भस्म ऐसी शोभा देती है मानो हिमालय पर्वतपर सुन्दर शरद ऋतुकी चाँदनी छिटक रही हो। उनके दर्शनमात्रसे अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष प्राप्त हो जाते हैं। ऐसे योगी पुरुषकी करामात काशीमें जगमगा रही है।

पिंगल-जटा-कलाप माथे पै पुनीत आप,
पावक नैना, प्रताप भ्रू पर बरत है।
लोचन बिसाल लाल, सोहै बालचन्द्र भाल,
कंठ कालकूट, व्याल भूषन धरत है॥
सुंदर दिगंबर विभूति गात, भाँग खात,
रूरे सृंगी पूरे काल-कंटक हरत है।
देत न अघात, रीझि जात पात आक ही के,
भोलानाथ जोगी जब औढर ढरत है॥१५९॥

शब्दार्थ—पिंगल = पीला। कलाप = समूह। पुनीत आप = पवित्र जल, गंगाजी। रूरे = सुन्दर। सृंगी = शिवजीका बाजा। पूरे = बजाकर। औढर ढरत है = खूब प्रसन्न होते हैं।

भावार्थ—शिवजीके सिरपर पीली जटाओंके समूहके ऊपर गंगाजी हैं, नेत्रोंमें अग्नि हैं जिसका तेज भौंहोंपर जल रहा है। उनके विशाल नेत्र लाल हैं, ललाटपर द्वितीयाके चन्द्रमा सुशोभित हैं, कंठमें हलाहल विष और सर्पोंका आभूषण धारण किये हुए हैं। उनके सुन्दर और नंगे शरीरमें भस्म है, वह भाँग खाते हैं और शृंगी बाजा बजाकर काल और बाधाओंको दूर करते हैं। वह मदारके पत्तेसे ही प्रसन्न हो जाते हैं और जब योगी भोलानाथ खूब प्रसन्न होते हैं तब भक्त को देनेसे तृप्त नहीं होते।

देत संपदा समेत श्रीनिकेत जाचकनि,
भवन बिभूति, भाँग, वृषभ बहनु है।
नाम बामदेव, दाहिनो सदा, असंग रंग,
अर्ध अंग अंगना, अनंग को महनु है॥

'तुलसी' महेसको प्रभाव भाव ही सुगम,
निगम अगम हूँ को जानिबो गहनु है।
वेप तो भिखारि को भयंक रूप संकर,
दयालु दीनबंधु दानि दारिद-दहनु है ॥ १६० ॥

शब्दार्थ—श्रीनिकेत = लक्ष्मीका घर। वृषभ = बैल। वहनु = सवारी। असंग रंग = एकान्त प्रिय। महनु = मथनेवाले। भयंक = भय पैदा करनेवाले।

भावार्थ—शिवजीके घरमें भस्म और भाँग तथा बैलकी सवारी है, फिर भी वह याचकोंको सम्पत्तिके सहित लक्ष्मीका घर दे देते हैं। उनका नाम वामदेव है, पर वह अपने भक्तोंके सदा अनुकूल रहते हैं। वह एकान्त प्रिय हैं, परन्तु उनके बायें अंगमें पार्वतीजी हैं और कामदेवको मारनेवाले हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि शिवजीके प्रभावका जानना भक्तिसे ही सुगम है यद्यपि उसे जानना वेद और शास्त्रोंके लिए भी कठिन है। उनका वेष तो भिखारीका है, रूप भय पैदा करनेवाला है, परन्तु वह कल्याण करनेवाले, दयालु, दीनबन्धु, दानी और दरिद्रताको भस्म करनेवाले हैं।

अलंकार—विरोधाभास।

चाहै न अनंग-अरि एको अंग मांगन को,
देबोई पै जानिए सुभाव-सिद्ध बानि सो।
बारि-बुंद चारि त्रिपुरारि पर डारिए तो
देत फल चारि, लेत सेवा साँची मानि सो ॥
'तुलसी' भरोसो न भवेस भोरानाथ को तो

कोटिक कलेस करौ मरौ छार छानि सो।
दारिद्-दमन, दुख-दोष-दाह-दावानल,
दुनी न दयालु दूजो दानि सूलपानि सो ॥१६१॥

शब्दार्थ—एकौ अंग=(पूजाके १६ अंगमें) एक भी अंग।

भावार्थ—शिवजी माँगनेवालेसे षोडशोपचार पूजाके १६ अंगोंमें एक भी अंग नहीं चाहते, वह देना ही जानते हैं, यही उनका सहज स्वभाव है। शिवजीपर पानीकी चार बूँदें डालनेसे ही वह उसे सच्ची सेवा मान लेते हैं और उसे चारों फल दे देते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि यदि संसारके स्वामी भोलानाथ शिवजीका भरोसा नहीं है तो करोड़ों कष्ट क्यों न करो खाक ही छाननेमें मरना पड़ेगा। दरिद्रताका नाश करनेवाले, दुःख दोष और कष्टोंके लिए वड़वाग्निरूप शिवजीके समान संसारमें कोई नहीं है।

काहे को अनेक देवसेवत, जागै मसान,
खोवत अपान, सठ होत हठि प्रेत रे।
काहे को उपाय कोटि करत मरत धाय,
जाचत नरेस देस देस के, अचेत रे॥
'तुलसी' प्रतीति बिनु त्यागै तैं प्रयाग तनु,
धन ही के हेतु दान देत कुरु खेत रे।
पात द्वै धतूरे के दै, भोरे कै भवेस सों
सुरेस हू की संपदा सुभाय सों न लेत रे॥१६२॥

शब्दार्थ—अपान=अपनापन। सठ=दुष्ट। भोरेकै=भोलाभाला समझकर।

भावार्थ—रे मूर्ख, तू अनेक देवताओंकी सेवा क्यों करता है ? क्यों श्मशान जगाता है ? क्यों आत्माभिमान खोता है ? क्यों जबर्दस्ती प्रेत बनता है ? रे अचेत, तू क्यों करोड़ों उपाय करता है और दौड़ दौड़कर मरता है ? क्यों देश देशके राजाओंसे माँगता फिरता है ? तुलसीदासजी कहते हैं कि विश्वासके बिना प्रयागमें शरीर छोड़ता है और धन प्राप्त करनेके लिए ही कुरु-क्षेत्रमें दान देता है । शिवजीको धतूरेके दो पत्ते चढ़ाकर उन्हें भोलाभाला समझकर उनसे इन्द्रकी भी सम्पत्ति अनायास ही क्यों नहीं ले लेता ?

स्यंदन, गयंद, बाजिराजि, भले-भले भट,
धन-धाम निकर, करनि हू न पूजै कै ।
बनिता बिनीत, पूत पावन सोहावन औ
बिनय, बिबेक, बिद्या सुलभ, सरीर ज्वै ॥
इहाँ ऐसो सुख, परलोक सिवलोक ओक,
जाको फल 'तुलसी' सो सुनौ सावधान ह्वै ।
जानें, बिनु जानें, कै रिसानें, केलि कबहुँक,
सिवहिं चढ़ाए ह्वै हैं बेल के पतौवा द्वै ॥१६४॥

शब्दार्थ—स्यंदन = रथ । गयंद = हाथी । बाजिराजि = घोड़ोंकी पंक्ति । कै = कोई । ज्वै = जो कुछ । ओक = घर ।

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि रथ, हाथी, घोड़े, अच्छे अच्छे योद्धा, धन और घरका समूह, [illegible], नम्र स्त्री, सुन्दर और पवित्र पुत्र, नम्रता, ज्ञान, विद्या और शरीर जो इस लोकमें सुलभ है और परलोकमें शिवलोकके समान सुख

यह सब जिस कर्मका फल है उसे सावधान होकर सुनो। ये सब पानेवालेने जानकर अथवा बिना जाने, क्रोधमें या खेलमें कभी भी शिवजीपर बेलके दो पत्ते चढ़ाये होंगे।

रति-सी रवनि, सिंधु-मेखला-अवनिपति,
औनिप अनेक ठाढ़े हाथ जोरि हारि कै।
संपदा समाज देखि लाज सुरराज हू के,
सुख सब बिधि बिधि दीन्हें हैं सँवारि कै॥
इहाँ ऐसो सुख, सुरलोक सुरनाथ-पद,
जाको फल 'तुलसी' सो कहैगो बिचारि कै।
आक के पतौवा चारि, फूल कै धतूरे के द्वै,
दीन्हे ह्वैहैं बारक पुरारि पर डारि कै॥१६४॥

शब्दार्थ—रवनि = स्त्री। अवनिपति = राजा। औनिप = राजा। आक = मन्दार।

भावार्थ—रतिके समान सुन्दरी स्त्री हो, समुद्रके घेरेतक पृथिवीका राज्य हो, अनेक राजे हारकर हाथ जोड़े खड़े हों। सम्पत्तिका समूह देखकर इन्द्र भी लज्जित हों, ब्रह्माने हर प्रकारके सुखोंको सजाकर दिया हो। इस लोकमें इस तरहका सुख और देवलोकमें इन्द्रका पद जिस कर्मके करनेसे प्राप्त होता है, तुलसीदास उसे विचारकर कहेगा कि उस मनुष्यने शिवजीपर या तो मदारके चार पत्ते डाल दिये होंगे और या धतूरेके दो फूल।

अलंकार—परिवृत्त।

देवसरि सेवौं बामदेव गाउँ रावरे ही,
नाम राम ही के माँगि उदर भरत हौं।

दीबे जोग 'तुलसी' न लेत काहू को कछुक,
    लिखी न भलाई भाल, पोच न करत हौं ॥
एते पर हू जो कोऊ रावरो ह्वै जोर करै,
    ताको जोर, देव दीन-द्वारे गुदरत हौं ।
पाइकै उराहनो, उराहनो न दीजै मोहिं,
    काल-कला कासीनाथ कहे निबरत हौं ॥१६५॥

शब्दार्थ—गुदरत हौं = निवेदन करता हूँ। काल-कला = समयकी या कलिकालकी कलाएँ। निबरत हौं = छुटकारा पाता हूँ।

भावार्थ—हे शिवजी, आपके ही गाँव (काशी) में मैं गंगाजीका सेवन करता हूँ और रामके नामपर ही भीख माँगकर पेट भरता हूँ। न तो यह तुलसीदास किसीको कुछ देने ही योग्य है और न किसीका कुछ लेता ही है। मेरे भाग्यमें भलाई करना नहीं लिखा है किन्तु मैं कोई नीचता भी नहीं करता हूँ। इतनेपर भी यदि आपका कोई भक्त मुझपर अत्याचार करे तो मैं हे देव, दीन होकर आपके द्वारपर उसका अत्याचार निवेदन करता हूँ। उलाहना पाकर आप मुझे उलाहना न दीजिये। हे काशीनाथ, ये सब कलिकालकी चालबाजियाँ हैं, इतना कहकर मैं छुटकारा पाता हूँ।

चेरो राम राय को, सुजस सुनि तेरो हर !
    पाइँ तर आइ रह्यौं सुरसरि-तीर हौं।
बामदेव, राम को सुभाव सील जानियत,
    नातो नेह जानियत, रघुबीर भीर हौं ॥

अधिभूत-वेदन विषम होत, भूतनाथ !
'तुलसी' विकल, पाहि, पचत कुपीर हौं।
मारिए तो अनायास कासीबास खास फल,
ज्याइए तौ कृपाकरि निरुज सरीर हौं ॥१६६॥

शब्दार्थ—चेरो = सेवक। सुरसरि = गंगाजी। पचत = गलता हूँ।

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि हे शिवजी, मैं महाराज रामचन्द्रजीका सेवक हूँ और आपका सुयश सुनकर आपके चरणोंकी शरणमें गंगाजीके तटपर रहता हूँ। हे वामदेव, आप रामजीके शील-स्वभावको अपने हृदयमें समझकर उनका और मेरा प्रेम-सम्बन्ध जानते हैं अर्थात् मैं तो योग्य नहीं हूँ पर रामजीने अपने शील-स्वभावसे मेरे साथ प्रेमका नाता जोड़ रखा है। मैं रामजीके ही भरोसे हूँ। हे भूतनाथ, आधिभौतिक पीड़ा असह्य होती है, मैं इस बुरी पीड़ासे व्याकुल हूँ और गलता जा रहा हूँ मेरी रक्षा कीजिये। यदि मुझे मारियेगा तो अनायास ही मुझे काशीवासका प्रधान फल (मोक्ष) होगा और यदि जिलाइये तो कृपा करके मेरे शरीरको नीरोग रखिये।

जीबे की न लालसा दयालु महादेव ! मोहिं,
मालुम है तोहिं मरिबेई को रहतु हौं।
कामरिपु ! राम के गुलामनि को कामतरु,
अवलंब जगदंब सहित चहतु हौं॥
रोग भयो भूत सो कुसूत भयो 'तुलसी' को,
भूतनाथ पाहि पदपंकज गहतु हौं।

ज्याइए तौ जानकी-रमन जन जानि जिय,
मारिए तौ माँगी मीचु सूधियै कहतु हौं ॥१६७॥

शब्दार्थ—जगदंब = जगत्की माता पार्वती। कुसूत = असुविधा।

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि हे दयालु महादेवजी, मुझे जीवित रहनेकी इच्छा नहीं है। आपको मालूम है कि मैं मरनेहीके लिए काशीमें रहता हूँ। हे शिवजी, आप राम-भक्तोंके लिए कल्पवृक्षके समान हैं, मैं पार्वतीजीके सहित आपका सहारा चाहता हूँ। रोग मुझे भूतके समान कष्ट पहुँचा रहा है। मुझे असुविधा हो रही है। हे भूतनाथ, आपके चरण-कमलोंको पकड़ता हूँ। यदि आप मुझे जीवित रखें तो हृदयमें श्रीरामजीका भक्त समझकर जीवित रखें और यदि मुझे मारिये तो सीधी बात कहता हूँ कि मुँहमाँगी मृत्यु दीजिये।

भूतभव! भवत पिसाच-भूत-प्रेत-प्रिय,
आपनो समाज सिव! आपु नीके जानिए।
नाना बेष, बाहन, बिभूषन, बसन, बास,
खान-पान, बलि-पूजा-बिधि को बखानिए॥
रामके गुलामनि की रीति प्रीति सूधी सब,
सबसों सनेह सबही को सनमानिए।

भावार्थ—हे पंचमहाभूतोंके कारण स्वरूप शिवजी, आपको पिशाच, भूत और प्रेत प्रिय हैं, आप अपने समाजवालोंको अच्छी तरहसे जानते हैं। उनके अनेक वेष, सवारी, आभूषण, वस्त्र, निवास-स्थान, खानपान, बलि-पूजाकी विधियोंको कौन कह सकता है ? रामजीके सेवकोंकी रीति और प्रीति सब सीधी-सादी है, वह सबसे स्नेह और सबका सम्मान करते हैं। भूतनाथ शिवजीके सुधारनेसे ही तुलसीदासकी सुधरेगी। मेरे माँ-बाप और गुरु सब कुछ शिव-पार्वती ही हैं।

गौरीनाथ, भोलानाथ, भवत भवानीनाथ,
विस्वनाथ-पुर फिरी आन कलिकाल की।
संकर से नर, गिरिजा सी नारी कासीवासी,
वेद कही, सही ससिसेखर कृपाल को ॥
छमुख गनेस तें महेस के पियारे लोग,
बिकल बिलोकियत, नगरी बिहाल की।
पुरी-सुरबेलि केलि काटत किरात-कलि,
निठुर ! निहारिए उघारि डीठि भाल की ॥१६९॥

शब्दार्थ—आन = दुहाई। ससिसेखर = शिवजी। छमुख = कार्त्तिकेय। सुरबेलि = कल्पलता।

भावार्थ—हे शिवजी, आप पार्वतीके पति और भोलानाथ हैं। आपके नगरमें कलिकालकी दुहाई फिर रही है। वेदोंने ठीक ही कहा है कि शिवजीकी कृपासे काशीमें रहनेवाले पुरुष शंकरके समान हैं और स्त्रियाँ पार्वतीके समान हैं। कार्त्तिकेय और गणेशजीके समान शिवजीके प्यारे लोग व्याकुल

दिखायी पड़ रहे हैं, नगर व्याकुल है। कल्पलता रूपी नगरीको कलियुग रूपी किरात काट रहा है। हे निष्ठुर शिवजी, आप अपने ललाटका तीसरा नेत्र खोलकर देखिये अर्थात् भस्म कर डालिये।

ठाकुर महेस, ठकुराइनि उमा सी जहाँ,
लोक बेद हू बिदित महिमा ठहर की।
भट रुद्रगन, पूत गनपति सेनापति,
कलिकाल की कुचाल काहू तौ न हरकी॥
बीसी बिस्वनाथ की बिषाद बढ़ो बारानसी,
बूझिए न ऐसी गति संकर सहर की।
कैसे कहै 'तुलसी' बृषासुरके बरदानि!
बानि जानि सुधा तजि पियनि जहर की॥१७०॥

शब्दार्थ—ठहर = स्थान। हरकी = मना किया। बीसी = बीस वर्ष, बीसी तीन हैं, ब्रह्म बीसी, विष्णु बीसी और रुद्र बीसी; प्रत्येकका भोग २० वर्ष है।

भावार्थ—जहाँके स्वामी शिवजी और स्वामिनी पार्वतीजीके समान हैं, जिस स्थान (काशी) की महिमा लोक और वेदमें प्रकट है, जहाँ शिवजीके गण योद्धा हैं और शिवजीके पुत्र गणेशजी सेनापति हैं वहाँ भी कलिकालको कुचाल करनेसे किसीने मना नहीं किया। विश्वनाथजीकी बीसीमें काशीमें दुःख बढ़ गया; शिवजीके नगरकी ऐसी दशा हो गयी है कि कुछ न पूछिये। हे भस्मासुरको वर देनेवाले शिवजी, अमृत छोड़कर विष पीनेकी आपकी आदत जानकर तुलसीदास आपसे कैसे कुछ कहे क्योंकि आप तो विचित्र ही काम किया करते हैं।

लोक वेद हू विदित वारानसी की बड़ाई,
वासी नरनारि ईस-अंबिका-सरूप हैं।
कालनाथ कोतवाल, दंडकारि दंडपानि,
सभासद गनप से अमित अनूप हैं॥
तहाँऊ कुचालि कलिकाल की कुरीति, कैधौं
जानत न मूढ़, इहाँ भूतनाथ भूप हैं।
फलैं फूलैं फैलैं खल, सीदैं साधु पल पल,
खाती दीपमालिका, ठठाइयत सूप हैं॥१७१॥

शब्दार्थ—कालनाथ = कालभैरव। दंडकारि = दंड देनेवाले। सीदैं = कष्ट पाते हैं। ठठाइयत = पीटा करते हैं।

भावार्थ—काशीकी बड़ाई लोक और वेद दोनोंमें विदित है। यहाँ रहनेवाले स्त्री-पुरुष पार्वती और शिवके रूप हैं। कालभैरव यहाँके कोतवाल हैं, दंडपाणि भैरव दंड देनेवाले और गणेशजीके समान बहुतसे अनुपम सभासद हैं। वहाँ भी कुचाली कलियुग-का दुर्व्यवहार फैला हुआ है; शायद उस मूर्खको यह नहीं मालूम है कि यहाँके राजा शिवजी हैं। यहाँपर दुष्टलोग तो फूल फल रहे हैं और साधुलोग प्रतिक्षण कष्ट पा रहे हैं। घी खाती है दीपमालिका और पीटा जाता है सूप।

पंचकोस, पुन्यकोस, स्वारथ परारथ को,
जानि आप आपने सुपास वास दियो है।
नीच नरनारि न सँभारि सकैं आदर,
लहत फल कादर बिचारि जो न कियो है॥
वारी बारानसी बिनु कहे चक्रपानि चक्र,

मानि हितहानि सो मुरारि मन भियो है।
रोष में भरोसो एक, आसुतोष कहि जात,
विकल विलोकि लोक कालकूट पियो है ॥१७२॥

शब्दार्थ—परारथ = परमार्थ। वारी = जला दी। चक्रपानि = श्रीकृष्ण। आसुतोष = शीघ्र प्रसन्न होनेवाले, शिवजी।

भावार्थ—पंचकोसीके भीतरकी भूमिको पुण्यभूमि, तथा लौकिक-पारलौकिक सुखके लिए उत्तम स्थान जानकर यहांके रहनेवालोंको अपने बगलमें बसाया। परन्तु यहांके नीच स्त्री-पुरुष इस आदरको सँभाल नहीं सके। ये कायर विचारकर काम न करनेका फल पा रहे हैं। जिस समय भगवान श्रीकृष्णने आपसे पूछे बिना काशीको सुदर्शन चक्रसे जला दिया था उस समय मित्रतामें कमी पड़नेके भयसे श्रीकृष्ण भी मनमें डर गये थे (तो क्या कलियुग आपसे न डरेगा?) यदि आपने यहांके निवासियोंके अधर्मसे क्रुद्ध होकर महामारी फैलायी है तो भी मुझे एकमात्र आपका ही भरोसा है क्योंकि आप शीघ्र प्रसन्न होनेवाले कहे जाते हैं। आपने एकबार लोगोंको व्याकुल देखकर विष पी लिया था।

विशेष

'बारीबारानसी......मन भियो है,—एक बार काशीके राजा मिथ्या वासुदेवने द्वारकापर चढ़ाई की थी। श्रीकृष्णके चक्रने उस राजाको पराजित कर काशीको जला डाला। इसके लिए श्रीकृष्णने शिवजीसे क्षमा माँगी थी।

रचत विरंचि, हरि पालत, हरत हर,
तेरे ही प्रसाद जग, अगजग-पालिके।
तोहिं में विकास विस्व, तोहि में विलास सब,
तोहि में समात मातु भूमिधर-बालिके॥
दीजै अवलंब जगदंब न विलंब कीजै,
करुना-तरंगिनी कृपा-तरंग-मालिके।
रोष महामारी परितोष महतारी दुनी
देखिए दुखारी मुनि-मानस-मरालिके॥१७२॥

शब्दार्थ—अग = अचर। जग = चर। भूमिधर-बालिके = पहाड़की कन्या, पार्वती। तरंगिनी = नदी। मरालिके = हंसिनी।

भावार्थ—हे चर और अचरका पालन करनेवाली पार्वतीजी, आपकी कृपासे ब्रह्मा सृष्टिकी रचना करते हैं, विष्णु उसका पालन करते और शिव संहार करते हैं। हे हिमवानकी पुत्री पार्वतीजी, आपमें ही समूचे संसारका विकास है, आपहीसे इसका पालन होता है और हे माता, आपहीमें इसका लय भी होता है। हे करुणाकी नदी, कृपारूपी तरंगकी मालिके, जगदम्बे, सहारा दीजिये, देर न कीजिये। हे मुनियोंके हृदयरूपी मानसरोवरकी हंसिनी, यह महामारी क्रोधसे संसारको नष्ट कर रही है और आप उसे दुखी देखकर भी सन्तोष किये बैठी हैं।

अलंकार—परिकरांकुर।

निपट अनेरे अघ औगुन बसेरे नर-
नारि ये घनेरे जगदंब चेरी चेरे हैं।
दारिदी दुखारी देखि भूसुर भिखारी भीरु

लोभ मोह काम कोह कलिमल घेरे हैं ॥
लोकरीति राखी राम, साखी वामदेव जान,
जनकी विनति मानि, मातु! कहि मेरे हैं।
महामायी, महेसानि, महिमा की खानि, मोद-
मंगल की रासि, दास कासीवासी तेरे हैं ॥१७४॥

शब्दार्थ—निपट = बिलकुल। अनेरे = अन्यायी। घनेरे = बहुत। भूसुर = पृथिवीके देवता, ब्राह्मण। साखी = साक्षी। महेसानि = पार्वती।

भावार्थ—हे जगदम्बे, काशीके ये बहुतसे स्त्री-पुरुष बिलकुल अन्यायी, पाप और दुर्गुणोंके घर हैं, किन्तु हैं सब आपहीके दास-दासी। ये दरिद्री, दुखिया, ब्राह्मण और भिखारियोंको देखकर डर जाते हैं (कि कोई कुछ माँग न बैठे)। इन्हें लोभ, मोह, काम, क्रोध और कलिके पापने घेर रखा है। रामचन्द्रजी-ने सदैव लोककी मर्यादा रखी है जिसके साक्षी शिवजी हैं। इसलिए हे माता, इस दासकी प्रार्थना मानकर कह दीजिये कि काशीवासी मेरे हैं (इन्हें न सताओ)। हे महामाया महेशानी, आप महिमाकी खानि और आनन्द-मंगलकी राशि हैं और काशीके रहनेवाले आपहीके सेवक हैं।

लोगन के पाप कैधौं सिद्ध-सुर-साप, कैधौं
काल के प्रताप कासी तिहूँ ताप तई है।
ऊँचे, नीचे, बीचके, धनिक, रंक, राजा, राय,
हठनि बजाय, करि डीठि, पीठि दई है ॥
देवता निहोरे, महामारिन्ह सों कर जोरे,

भोरानाथ जानि भोरे आपनी सी ठई है।
करुनानिधान हनुमान वीर बलवान,
जस-रासि जहाँ-तहाँ तैं ही लूटि लई है ॥१७५॥

शब्दार्थ—तई है = तप्त किया है। हठनि बजाय = हठ करके। करि डीठि = देखते हुए। पीठि दई है = मुँह फेर लिया है। आपनीसी ठई है = अपने ही मनका किया है।

भावार्थ—लोगोंके पापसे अथवा सिद्ध और देवताओंके शापसे अथवा कलियुगके प्रतापसे काशी दैहिक, दैविक, भौतिक तीनों तापोंसे जल रही है। ऊँचे, नीचे, मध्यम श्रेणीके, धनी, गरीब, राजा, राय सबने हठ पूर्वक देखकर भी (धर्मसे) मुँह फेर लिया है। मैंने देवताओंसे प्रार्थना की, महामारियोंसे भी हाथ जोड़े (पर कुछ भी फल न हुआ)। भोलानाथको भोलाभाला समझकर अपने मनका ही किया है। हे करुणानिधान, बलवान वीर हनुमानजी, ऐसे समयमें आपने ही जहाँ तहाँ अपार यश प्राप्त किया है अर्थात् आपने ही ध्यान दिया है।

संकर-सहर सर, नर-नारि बारिचर,
बिकल सकल महामारी माँजा भई है।
उछरत उतरात हहरात मरि जात,
भभरि भगात जल-थल मीचुमई है॥
देव न दयालु, महिपाल न कृपालु-चित,
बारानसी बाढ़ति अनीति नित नई है।
पाहि रघुराज' पाहि कपिराज रामदूत,
राम हू की बिगरी तुही सुधारि लई है ॥१७६॥

शब्दार्थ—वारिचर = जलके जीव। माँजा = वर्षाके प्रारम्भिक जलका फेन, इसके खानेसे मछलियाँ मर जाती हैं। भभरि = डरकर। मीचुमयी = मृत्युमय।

भावार्थ—शंकरकी नगरी काशी मानो एक तालाब है और उसमें रहनेवाले स्त्री-पुरुष जल-जन्तु हैं। यह महामारी प्रारम्भिक वर्षाके फेनके समान हो रही है जिससे सब विकल हैं और उछलते, उतराते, हिम्मत हारते, मरते तथा भयभीत होकर भागते हैं, जल और स्थल दोनों ही उनके लिए मृत्युमय हो रहे हैं। देवतालोग दयालु नहीं हो रहे हैं और न राजाओंके चित्तमें ही दया उत्पन्न हो रही है। काशीमें नित्यप्रति नये नये अन्याय बढ़ रहे हैं। हे रामचन्द्रजी, रक्षा कीजिये। हे रामचन्द्रजीके दूत हनुमानजी, रक्षा कीजिये। आपने तो रामचन्द्रजीकी बिगड़ी हुईको बना लिया था (फिर यह काम कर डालना आपके लिए क्या चीज है)।

एक तो कराल कलिकाल सूल-मूल तामैं,
कोढ़ में की खाजु सी सनीचरी है मीन की।
बेद धर्म दूरि गए, भूमि चोर भूप भए,
साधु सीद्यमान, जानि रीति पाप-पीन की॥
दूबरे को दूसरो न द्वार राम दया धाम!
रावरी ही गति बल-बिभव बिहीन की।
लागैगी पै लाज वा बिराजमान बिरुदहिं,
महाराज आजु जौ न देत दादि दीन की॥१७७॥

शब्दार्थ—सनीचरी है मीनकी = मीन राशिमें शनिका योग बड़ा कष्टकर है। सीद्यमान = दुखी।

भावार्थ—एक तो भयंकर कलिकाल ही कष्टकी जड़ है उसमें भी मीन राशिपर शनिश्चरका आना कोढ़में खुजलीके समान (अत्यन्त कष्टदायक) हो गया है। वेद और धर्मसे लोग दूर हो गये हैं और राजालोग भूमि चुरानेवाले हो गये हैं। साधुलोग पापकी अधिकताको देखकर दुखी हो रहे हैं। हे दयाके घर रामजी, दुर्वलके लिए आपका द्वार छोड़कर दूसरा द्वार नहीं है। वल और वैभवसे रहित मनुष्यके लिए आपहीका भरोसा है। हे महाराज, यदि आज आप दीनोंकी सहायता न करेंगे तो आपके उस विश्वव्यापी यशको लज्जा मालूम होगी।

विशेष

'सनीचरी है मीनकी'—गोस्वामीजीके समयमें सम्वत् १६६९ से १६७१ तक यह योग था।

रामनाम मातु-पितु स्वामि, समरथ हितु,
आस रामनाम की, भरोसो रामनाम को।
प्रेम राम-नाम ही सों, नेम रामनाम ही को,
जानौं न मरम पद दाहिनो न बाम को॥
स्वारथ सकल, परमारथ को रामनाम,
रामनामहीन 'तुलसी' न काहू काम को।
राम की सपथ, सरवस मेरे रामनाम,
काम-धेनु कामतरु मो-से छीन छाम को॥१७८॥

शब्दार्थ—छीन छाम = अत्यन्त दुर्बल।

भावार्थ—रामनाम ही मेरे लिए माता-पिता, स्वामी और सामर्थ्यवान हितैषी है, मुझे रामनामकी ही आशा और भरोसा है। मेरा प्रेम रामनामसे ही है और रामनाम जपनेका ही मेरा नियम है। मैं अच्छे मार्ग और बुरे मार्गका भेद नहीं जानता। लौकिक और पारलौकिक सुखके लिए केवल रामनाम ही है। तुलसीदासजी कहते हैं कि रामनामसे रहित मनुष्य किसी कामका नहीं है। मैं रामकी शपथपूर्वक कहता हूँ कि रामनाम ही मेरा सर्वस्व है। मेरे समान अत्यन्त दुर्बलके लिए रामनाम ही कामधेनु और कल्पवृक्ष है।

(सवैया)

मारग मारि महीसुर मारि, कुमारग कोटिक कै धन लीयो।
संकर कोप सों पाप को दाम परीच्छित जाहिगो जारि कै हीयो॥
कासी मैं कंटक जेते भए ते गे पाइ अघाइ कै आपनो कीयो।
आजु कि कालिह परौं कि नरौं जड़ जाहिंगे चाटि दिवारि कोदीयो १७९

शब्दार्थ—मारग मारि = बटोहियोंको मारकर। परीच्छित (परीक्षित) = परीक्षा किया हुआ, निश्चित। गे = गये, नष्ट।

भावार्थ—यात्रियोंको लूटकर, ब्राह्मणोंको मारकर तथा करोड़ों बुरे मार्गोंसे अधर्मीलोग धन संचय करते हैं। शिवजीके कोपसे वह पापका धन हृदयको जलाकर नष्ट हो जायगा, यह परीक्षा की हुई बात है। काशीमें जितने बाधक हुए, वे अपने कियेका फल अच्छी तरह पाकर नष्ट हो गये। वे मूर्ख आज या

कल, परसों या नरसों, उसी तरह नष्ट हो जायँगे जैसे दीपावलीके दीपकको चाटकर फतिंगे नष्ट हो जाते हैं।

कुंकुम-रंग सुअंग जितो, मुख-चंद सों चंद सों होड़ परी है।
बोलत बोल समृद्धि चुवै, अवलोकत सोच विषाद हरी है॥
गौरी कि गंग विहंगिनि वेष, कि मंजुल मूरति मोद-भरी है।
पेखि सप्रेम पयान समै सब सोच-विमोचन छेमकरी है॥१८०॥

शब्दार्थ—कुंकुम-रंग = केसरिया रंग। सुअंग = चोंच। समृद्धि = वैभव। चुवै = टपकता है। गौरो कि गंग = पार्वतीजी हैं या गंगाजी हैं। मंजुल = मनोहर। मोद = प्रसन्नता। पयान = प्रयाण, यात्रा। विमोचन = नष्ट करनेवाला। पेखि = देखकर। छेमकरी = कल्याण करनेवाली, एक पक्षीका नाम।

भावार्थ—इस क्षेमकरी नामक पक्षीने अपनी चोंचके रंगसे केसरके रंगको भी जीत लिया है। इसके मुखचन्द्रसे सुन्दरतामें चन्द्रमासे होड़ (बाजी) लगी हुई है। इसके बोली बोलनेमें वैभव टपकता है और इसको देखते ही सोच और दुःख दूर हो जाते हैं। पक्षीके वेषमें यह पार्वती है या गंगा अथवा प्रसन्नतासे भरी हुई किसी अन्य देवीकी सुन्दर मूर्त्ति है। प्रस्थान करते समय इस क्षेमकरीका दर्शन करनेसे मनुष्यका सारा शोक नष्ट हो जाता है।

विशेष

कहते हैं कि किसी यात्राके समय क्षेमकरी पक्षीको देखकर गोस्वामीजीने इस छन्दकी रचना की थी। कुछ लोगोंका कहना है कि तुलसीदासजीने मरनेके कुछ समय पहले उक्त पक्षीको

देखकर इस छन्दकी रचना की थी। इस पक्षीका दर्शन बड़ा ही कल्याणकारी समझा जाता है।

कवित्त

मंगल की रासि, परमारथ की खानि जानि,
विरचि बनाई बिधि, केसव बसाई है।
प्रलय हू काल राखी सूलपानि सूल पर,
मीचु बस नीच सोऊ चहत खसाई है॥
छाँड़ि छितिपाल जो परीछित भए कृपालु,
भलो कियो खल को, निकाई सो बसाई है।
पाहि हनुमान! करुनानिधान राम पाहि!
कासी कामधेनु कलि कुहत कसाई है॥१८१॥

शब्दार्थ—बिरचि बनाई = विशेष रूपसे रचकर बनाया। केसव = विष्णु। चहत खसाई = नष्ट करना चाहता है। कुहत = मारता है।

भावार्थ—मंगलकी राशि और परमार्थकी खानि समझकर ब्रह्माने (इस काशीकी) रचना की है और विष्णुने इसे बसाया तथा शिवजीने प्रलयकालमें इसे त्रिसूलपर रखकर बचाया। ऐसी काशीको नीच कलिकाल मृत्युके वशमें होकर नष्ट करना चाहता है। राजा परीक्षितने कलियुगको जीवित छोड़कर उसपर जो कृपा की और उस दुष्टका भला किया, उस की हुई भलाईको उसने नष्ट कर दिया। हे हनुमानजी, रक्षा कीजिए। हे करुणानिधान रामजी, रक्षा कीजिए। कलियुगरूपी कसाई काशीरूपी कामधेनु-को मार रहा है।

विशेष

'छाँड़ै छितिपाल········सो बसाई है'—एक बार अर्जुनके पौत्र परीक्षितने देखा कि एक आदमी गायको मार रहा है। राजा परीक्षितके राज्यमें यह अद्भुत और अनहोनी बात थी। पता लगानेपर उन्हें मालूम हुआ कि गाय तो पृथिवी थी और वह मनुष्य कलियुग था। महाराज परीक्षितने कलियुगको बहुत फटकारा। इससे कलियुग भयभीत होकर गिड़गिड़ाने लगा। महाराज परीक्षितको दया आ गयी, इसलिए उन्होंने उसे रहनेके लिए सोना, चाँदी, मद आदि कुछ स्थान देकर छोड़ दिया। परिणाम यह हुआ कि अवसर पाकर कलियुगने परीक्षितपर ही पहला आक्रमण किया क्योंकि उनका मुकुट सोनेका था। उसके प्रभावसे परीक्षितने एक मरा हुआ सर्प उठाकर एक ध्यानस्थ ऋषिके गलेमें डाल दिया। जब ऋषिका ध्यान टूटा तब उन्होंने अपने गलेमें मरा हुआ साँप देखकर बड़ा क्रोध किया और अपने योग-बलसे जान लिया कि यह दुष्कर्म परीक्षितका है। फिर क्या था, महाराज परीक्षित उक्त ऋषिके शापसे क्षुद्र होकर सर्पद्वारा डँसे गये और मर गये। कलिने इस प्रकार उनकी कृपाका बदला दिया था।

बिरची बिरंचि की, बसति बिस्वनाथ की जो,
　　प्रानहूँ ते प्यारी पुरी केसव कृपाल की।
ज्योतिरूप-लिंगमई, अगनित लिंगमई,
　　मोक्ष-बितरनि बिदरनि जग-जाल की॥

देवी देव देव-सरि सिद्ध मुनिबर बास,
लोपति बिलोकत कुलिपि भोंड़े भाल की।
हा-हा करै 'तुलसी' दयानिधान राम! ऐसी
कासी की कदर्थना कराल कलिकाल की ॥१८२॥

शब्दार्थ—बितरनि = वितरण करनेवाली। बिदरनि = काटनेवाली। लोपति = लुप्त कर देती है। कुलिपि = दुर्भाग्यकी रेखा। कदर्थना = दुर्दशा। कराल = भयंकर।

भावार्थ—जो काशी ब्रह्माकी बनायी हुई है, जो विश्वनाथ-जीकी वस्ती है; जो कृपालु विष्णुको प्राणोंसे भी प्यारी है, जो द्वादश ज्योतिर्लिंगमयी और अगणित लिंगमयी है, जो मोक्षको बाँटनेवाली और भवजालको काटनेवाली है, जहाँ देवी, देवता, सिद्ध तथा श्रेष्ठ मुनियोंका निवास है, जो देखते ही अभागोंकी दुर्भाग्य-रेखाको लुप्त कर देती है, कलियुगने उस काशीकी भयंकर दुर्दशा की है। हे दयानिधान राम, यह तुलसीदास प्रार्थना करता है, रक्षा कीजिए।

आश्रम बरन कलि-बिवस बिकल भए,
निज निज मरजाद मोटरी-सी-डार दी।
संकर सरोष महामारि ही तें जानियत,
साहिब सरोष दुनी दिन-दिन दारदी॥
नारि-नर आरत पुकारत, सुनै न कोऊ,
काहू देवतनि मिलि मोटी मूठि मार दी।
'तुलसी' सभीत-पाल सुमिरे कृपालु राम,
समय सुकरुना सराहि सनकार दी॥१८३॥

शब्दार्थ—मोटरी = गठरी। दारदी = दरिद्री। मोटी मूठ मार दी = गहरा जादू कर दिया। सभीत-पाल = भयभीतका पालन करनेवाले। सराहि = प्रशंसा करके। सनकार दी = इशारा कर दिया।

भावार्थ—चारो आश्रम और चारो वर्ण कलिके वशमें रहने-के कारण व्याकुल हैं और उन्होंने अपनी अपनी मर्यादाको गठरीकी तरह दूर फेंक दिया है। महामारी होनेसे ही शिवजी को क्रुद्ध हुआ समझो और स्वामीके क्रुद्ध होनेसे दिनपर दिन संसार दरिद्र होता जाता है। स्त्री-पुरुष दुःखी होकर पुकार रहे हैं, कोई सुनता नहीं है, जान पड़ता है कुछ देवताओंने मिलकर गहरा जादू कर दिया है। तुलसीदासजी कहते हैं कि भयभीतके रक्षक कृपालु श्रीरामजीने स्मरण करनेसे अपनी करुणाकी सराहना करके ठीक मौकेपर उसे इशारा कर दिया। अर्थात् रामजीकी दयासे महामारी दूर हो गयी।

विशेष

१—'आस्रम'—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वाणप्रस्थ और संन्यास।
२—'बरन'—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र।

* इति *



शब्दार्थ—मोटरी = गठरी। दारदी = दरिद्री। मोटी मूठ मार दी = गहरा जादू कर दिया। सभीत-पाल = भयभीतका पालन करनेवाले। सराहि = प्रशंसा करके। सनकार दी = इशारा कर दिया।

भावार्थ—चारो आश्रम और चारो वर्ण कलिके वशमें रहनेके कारण व्याकुल हैं और उन्होंने अपनी अपनी मर्यादाको गठरीकी तरह दूर फेंक दिया है। महामारी होनेसे ही शिवजीको क्रुद्ध हुआ समझो और स्वामीके क्रुद्ध होनेसे दिनपर दिन संसार दरिद्र होता जाता है। स्त्री-पुरुष दुःखी होकर पुकार रहे हैं, कोई सुनता नहीं है, जान पड़ता है कुछ देवताओंने मिलकर गहरा जादू कर दिया है। तुलसीदासजी कहते हैं कि भयभीतके रक्षक कृपालु श्रीरामजीने स्मरण करनेसे अपनी करुणाकी सराहना करके ठीक मौकेपर उसे इशारा कर दिया। अर्थात् रामजीकी दयासे महामारी दूर हो गयी।

विशेष

१—'आस्रम'—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वाणप्रस्थ और संन्यास।
२—'बरन'—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र।

* इति *

